कार्यकारिणी :—

श्री वेदराज जी त्रयोदश	मंत्री.
श्री वीरेन्द्र कुमार जी द्वादश	उपमंत्री.
श्री रणवीर जी त्रयोदश.	सम्पादक "राजहंस"
श्री अशोक कुमार जी द्वादश.	उपसम्पादक "राजहंस"
श्री ब्रह्मदत्त जी उपस्नातक	मान्य सदस्य
श्री पुरुषोत्तम देव जी उपस्नातक	"
श्री धर्मवीर जी त्रयोदश.	"
श्री राजकुमार जी द्वादश	"
श्री शान्ति स्वरूप जी द्वादश	"

अनुक्रमणिका

राजहंस

श्रद्धाञ्जलि

(गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के भूतपूर्व आचार्य, तथा कुलपति श्री० प्रो० आचार्य रामदेव जी का १ दिसम्बर प्रातः ५½ बजे देहरादून में स्वर्गवास हो गया। हमारे गुरुकुल के मान्य कुलबन्धु श्री० चन्द्रकान्त जी (गुरुकुल महाविद्यालय सोनगढ़) ने दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।) —:

सं०)

श्री पूज्य आचार्य रामदेव जी की सेवा का अवसर भी हम न ले सके और वे त्यागी - शानशूर - तपस्वी ब्राह्मण आचार्य हम शिष्यों से शारीरिक रूप में जुदा हो गये। वास्तव, में तो वे अमर रहेंगे तब तक जब तक गुरुकुल प्रणाली का नवनीत विद्यमान है। एक भी सच्चा स्नातक विद्यमान है। उनका क्षण-भंगुर शरीर भले ही चला गया हो पर उनकी धर्मप्राण की स्पिरिट अब तक प्रज्वलित है। हम उनका वास्तव-सच्चे अर्थों में - उनकी स्पिरिट को अपने अन्दर जागृत कर सकेंगे। मुझे तो आचार्य जी का देहावसान हुआ हो यह लगता ही नहीं - वे गुरुकुल की

ज़मीन पर, पंजाब के शहरों में – उत्सवों में खड़े हुए – चलते हुए – बोलते हुए दीख रहे हैं। ईसाईयत के इतिहास में सॉल्फ़ पॉल या पीटर का जो स्थान रहा है, सम्भवतः वैदिक धर्म के इतिहास में [विशेषतः आर्यसमाज के] आचार्य जी का वही स्थान है। समस्त कुलबन्धुओं की तरफ़ से उनके चरणों में समर्पित की जाने वाली श्रद्धाञ्जलियों में मेरी इस तुच्छ श्रद्धाञ्जलि को आप भी स्थान दीजिये। अन्तःकरण में विराजमान अन्तर्यामी भगवान् से – हम पामर जीव चाहते हैं जिससे सच्चा मार्ग दीख सके; पर मुझे तो कोई बात कुछ सूझती नहीं! अपनी क्षुद्रता – लघुता ही दीखने लगती है। अनन्त अपार के समक्ष हम कितने स्वल्प हैं, तो भी उन्हीं भगवान् के अंश होने से कुछ हैं।

आचार्य जी के कहे जाने वाले पुत्र पं॰ यशपाल जी, बहिन दमयन्ती जी तथा अन्य सब को कहना चाहिए कि वे जितने दुःखी हुए हैं उससे कम हम कुलवासी भी नहीं हुए हैं। उनके साथ हमारी पूरी सहानुभूति है। सैंकड़ों पुत्र-पुत्रियों (मानस) के पिता के चले जाने पर हमारा क्या कर्तव्य है वह हम विचारें तो कुछ सच्चा आदर होगा। गुरुकुल प्रणाली के सच्चे महत्त्व को समझ कर

जिस समय घर घर में उसकी छाया ला सकेंगे तब श्री· आचार्य रामदेव जी का मिशन पूरा कर सकेंगे। ज्ञान २ ज्ञान दीपक को जगाये रखेंगे तब हम उनकी आत्मा को तृप्त कर सकेंगे।

जल उठी चिता !

श्री कुमार

[गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व आचार्य, कुलपति प्रो० रामदेव जी का ९ दिसम्बर ५।। बजे देहरादून में स्वर्गवास हो गया। हमारे कुशल कवि ने इस गीत में उनके जीवन और मरण दोनों के वास्तविक, सजग चित्र को करुण भाषा में प्रस्तुत किया है —
सं०]

धू-धू-धू-धू जल उठी चिता !

वह देख प्रतीची में सहसा जल उठी चिता जल उठी चिता !!

(१)

थी वही शक्ति की छवि मुँह पर,

उतना ही जीवन रहा बिखर,

हँसते हँसते तुम चले गये अस्ताचल में जैसे सविता !

धू-धू-धू-धू जल उठी चिता !

(2)

धू-धू-धू-धू- जल उठी चिता!

वे वेदों के सन्देश मधुर

वे ज्ञानान्वित उपदेश मधुर

किरणों से नभ में फैल रहे

अब स्पष्ट सराग हुई सरिता!

धू-धू-धू-धू- जल उठी चिता!

(3)

धू-धू-धू-धू- जल उठी चिता !

तुम प्रतिपल करते थे प्रकाश

अज्ञान-नाश, विद्याविकास

"तुम हो महान, तुम हो विशाल"

धरती कह उठती है चकिता !

धू-धू-धू-धू- जल उठी चिता !

(४)

धू-धू-धू-धू जल उठी चिता !

तुम सरल स्नेह के निर्झर थे

तुम पूज्य बन्धु, तुम सागर थे

मेरे क्या? सब के संरक्षक —

तुम दुनिया के थे एक पिता !

जल उठी चिता, जल उठी चिता !

(५)

धू-धू-धू-धू- जल उठी चिता!

अनथक रहते थे काम तुम्हें

अब नित्य मिला विश्राम तुम्हें

तुम फिर प्रभात में आओगे-

यह सोच रहा हूं रात बिता!

जल उठी चिता! जल उठी चिता!

(६)

धू- धू- धू- धू जल उठी चिता

मेरा आशा में रोना है।

रोते रोते ही सोना है॥

अश्रुमय अभिषिक्त कुसुम दल

चढ़ा रही है मेरी कविता!

जल उठी चिता, जल उठी चिता!
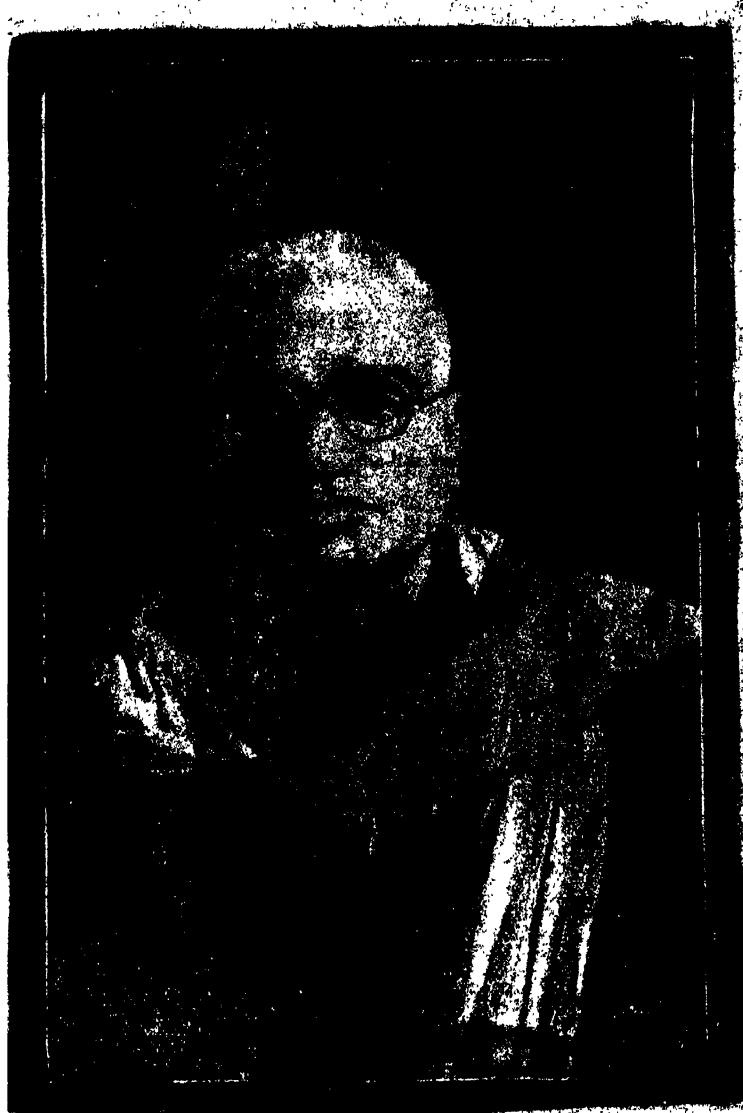
अयि ब्रह्मर्षि, उदार!
झुक जाता उर, जुड़ जाते कर, याद सरल वह प्यार!
अञ्जलि हो स्वीकार!
- श्री[illegible]

सन्देश

ब्रह्मचर्य का जीवन ऐसा ही पवित्र जीवन होता है जैसे निर्मल राजहंसों के पर। ब्रह्मचारियों में वह गुण विकास करने चाहियें जो कि एक साधारण व्यक्ति को, हंस, राजहंस तथा परमहंस के पद पर पहुँचाते हैं। जिस मनुष्य में न्याय और गम्भीरता हो वह हंस कहलाता है जिसमें ऊपर के दोनों गुणों के साथ विनय तथा गुणों का सौन्दर्य हो वह राजहंस की उपमा पाता है और जो हंस राजहंस के गुणों के साथ २ त्याग, निष्काम, परमात्म-प्रेम हो वह परमहंस की पदवी पाता है।

[illegible]

यह संसार सकल है मैला

राम नाम है पैला।

कहत कबीर नाम नहि छांडो

गिरत पडत चढि ऊँचो॥

यह सन्त वचन मुझे बहुत पसन्द है

[illegible]

— श्री पं. जगन्नाथ जी. प्रभाकर
गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ.

तुम हम से कहीं अधिक दुर्बल,
तुम पूरा न्याय न कर पाते
दुःख लखते ही घबड़ा जाते
फिर स्वयं सांत्वना देने को
नव आशा बन कर छा जाते
तुम दिल के हो इतने कोमल—

इस कर से आग लगा जाते,
उस कर से आग बुझा जाते
तुम कैसे न्यायाधीश कि खल
के अश्रु तुम्हें पिघला देते
तुम इतने भोले और सरल।

× ×

यह है कोई उपकार नहीं,
यह है कोई अपकार नहीं,
यह अद्दण्ड यह कोमलता
हम मानव को स्वीकार नहीं
हम चाह रहे हैं प्रलयानल।

× ×

कुछ महत्वपूर्ण खोज तथा परीक्षण

— श्री उमाशंकर वाजीकर जी. विद्यालंकार

कुछ अस्वस्थ होने के कारण मैंने कालिज से चार-पांच दिन की छुट्टी ले रक्खी थी। सुबह से कोहरा छाया हुआ था। कहीं बाहर निकलने का सुभीता न था। घड़ी में देखा तो दिन के दो बजे थे। सहसा कुछ याद आया। मैंने बाहर की ओर दृष्टि डाली। मालूम हुआ कि कोई मोटर द्वार पर रुकी। समझने में मुझे देर न लगी। मेरा मित्र महाशय विलियम एक सम्पन्न परिवार का नवयुवक था। वह मेरे साथ ही लण्डन के एक प्रसिद्ध शिक्षणालय में पढ़ता था। वह मुझे पूर्वनिश्चयानुसार कुछ नवीन प्रयोगशालाएँ दिखलाने के लिए अपने साथ निकालने को आया था। मैं बड़ा कोट तथा टोपी पहनकर उसके साथ चल दिया। कुछ ही देर बाद हम एक विशाल फाटक के सन्मुख पहुंचे। एक आदमी हमें अन्दर ले गया। विलियम

ने अपना परिचय दिया और आने का कारण बताया। हमें बड़े सत्कार के साथ लिया गया। थोड़ी देर इधर-उधर की बात हो चुकने पर प्रयोगशाला के अध्यक्ष हमें एक कमरे में लेगए। कमरे के द्वार पर पहुँचते ही हमें ऐसा मालूम हुआ मानों अन्दर बड़ा गोलमाल हो रहा हो। अध्यक्ष महोदय ने कहा- यूरोप को ऐसे वैज्ञानिकों पर जो अभिमान है वह यथार्थ ही है। इनका एक एक आविष्कार संसार में उथल-पुथल मचा देने वाला होता है। इन्हें न अपने खाने-पीने की सुध है न ओढ़ने पहरने की चिन्ता। इनमें से कितने ही वैज्ञानिक एक २ परीक्षा पर चालीस चालीस वर्ष व्यतीत कर चुके हैं।

अध्यक्ष एक विश्वास में कहते जा रहे थे। हमें भी उनकी बातों में आनन्द आ रहा था। हम चुपचाप सिर हिलाते हुए सुनते जाते थे। उन्होंने कहा, "आगामी युद्ध बड़ा भीषण होगा उसके लिए अनेक प्रकार के परीक्षण किए जा रहे हैं। हम यहां से एक शीशा चमका कर दस-पन्द्रह हजार मील दूर तक किसी भी प्रदेश को एक सेकण्ड के बीसवें भाग में" इतना कहते२ वे तुरन्त सावधान हो गए और कहने लगे क्षमा कीजिये।

मेरे मित्रों को मुझ से बड़ी शिकायत रहती है कि मैं बहुत बोलता हूँ। मैंने आपका बहुत सा समय नष्ट ~~किया है~~ कर दिया इसका मुझे दुख है। मेरे मित्र ने गम्भीरता से कहा " नहीं आप कहे जाइये" उसी समय सामने का द्वार खुला। हम एक कमरे में दाखिल हुए। हमने देखा कि दो आदमी आपस में लड़ रहे हैं। उनमें से एक सज्जन अधेड़ उम्र के थे। उनके सिर के बाल और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। उनके हाथ में एक पिस्तौल था। वे उसे चलाना चाहते थे और उनका साथी उनसे वह पिस्तौल छीनना चाहता था। अध्यक्ष महोदय ने पूछा " महाशय डिक क्या मामला है ?" डिक अब तक पिस्तौल छीन चुका था। वह वैज्ञानिक को कुछ समझा कर उसकी मेज़ के सामने ले गया। वैज्ञानिक फिर ध्यान मग्न हो गया। डिक ने लौट कर कहना शुरू किया " महाशय जी यहां के एक बहुत ही अद्भुत यन्त्र बनाया गया है जो संसार के किसी भी प्रदेश में घटित हुई छोटी सी छोटी क्रिया को भी अंकित कर लेता है। उसमें शब्द और रूप तो प्रत्यक्ष होते ही हैं साथ ही मानसिक भावों का चित्रण भी हो जाता है। इस समय न्यूयार्क के किसी प्रमोद-गृह का जीवित सा चित्र यदि आप चाहें तो इस यन्त्र में देख सकते हैं। अज्ञात दूरी के एक अज्ञात

नक्षत्र से एक अत्यन्त द्रुतगति वाला वायु-यान शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो हमारी पृथिवी की ओर बढ़ा आ रहा है। उसे आते हुए लगभग १० हज़ार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। वह अत्यन्त निकट आ चुका है। किसी भी क्षण में इस प्रदेश में उतर सकता है। उस नक्षत्र के निवासी विज्ञान में हम से भी अधिक उन्नति कर चुके हैं। वे इस पृथिवी को भी अपने साम्राज्य का अंग बना लेना चाहते हैं। हमारे लिए यह घोर चिन्ता की बात है। वे एशिया, योरुप, अफ्रीका का कोई भेद न करेंगे। इसी कल्पना से इन वैज्ञानिक महाशय को भय प्रतीत हो रहा है। आपके आने से जो हलचल हुई तो उन्होंने समझा कि "वही हवाई जहाज़ आ पहुँचा" और ये पिस्तौल लेकर आप पर आक्रमण के लिए तैयार हो गए। यह तो कुशल हुई कि मेरा ध्यान उधर चला गया नहीं तो अभी तक तो एक बड़ा अनर्थ यहां हो गया होता। डिक ने मेरा नाम-धाम पूछा तो बड़े उल्लास से इधर उधर भागने लगे। कई टोकरियों को टटोल कर उसने एक कागज़ निकाला और कहने लगा "मेरी स्मृति बड़ी खराब है। किसी चीज़ को रखते ही एक मिनट में भूल जाता हूँ। देखिए, जब आप दो बजे मोटर पर सवार होकर इधर रवाना हुए थे मैं इस यन्त्र

पर काम कर रहा था। तभी मैंने आपका आना अंकित किया था। देखिए - २ बजे एक मोटर पर दो सज्जन नाम विलियम और नरेश सवार होकर उस प्रयोगशाला की ओर चले हैं। लगभग १० मिनट में पहुँच जायेंगे। सब बात ठीक २ है न ? मैंने कागज़ पढ़ा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मेरी आंखें फटी और मुख खुला रह गया। मैंने कहा " ~~[illegible]~~ धन्य युरोप " ।

डिक मुझे चकित होते देख और उत्साहित होकर कहने लगे। " आप हिन्दुस्तानी प्रतीत होते हैं "। आपको यहां आये लगभग दो वर्ष होते हैं। जब आप बम्बई से रवाना हुए थे उस दिन शायद शुक्रवार और २० मई थी। ठीक है न? देखिए यह भी हमने उसी दिन अंकित किया था।

अध्यक्ष ने कहा - अभी हमें बहुत से प्रयोग देखने हैं। एक ही जगह इतनी देर करने से काम न चलेगा। डिक महाशय ने बड़ी अनिच्छा से हमें विदा किया।

अध्यक्ष महोदय कहने लगे 'यों तो विज्ञान का ठेका किसी एक देश ने नहीं लिया। सत्य सभी स्थानों पर प्रगट हो सकता है; परन्तु उसका कुछ भौगोलिक आधार भी मानना ही पड़ता है। देखिए आप बुरा न मानें। पर सच तो

करना ही चाहिए। आपका भारत बहुत गर्म देश है। वहां स्वाधीनता की भावना पनप ही नहीं सकती। एशिया के अनेक देश शासित होना जितना अधीनतः जानते हैं उतना शासन करना नहीं। भारत का जलवायु राजनीति के बिलकुल अनुकूल है। जैसा स्वास्थ्य योरुप में रहता है वैसा आपके यहां नहीं। इसीलिए आपके देश के राजा महाराज तथा बड़े २ ऑफिसर स्वास्थ्य खराब होते ही यहां भागे आते हैं। अंग्रेज ऑफिसर यदि जल्दी २ विलायत न हो आएं तो वे काम के लायक ही न रह जाएं। एशिया के प्रदेशों पर सूर्य की किरणें कुछ ऐसी पड़ती हैं कि उनसे जीवनी शक्ति ही नहीं बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। हाँ, यह तो आपको मालूम होगा ही जिस प्रयोगशाला में हम जा रहे हैं वहां बुद्धि के कीटाणुओं का पता लगाया गया है। वे कीटाणु बहुत ही नाजुक होते हैं। सूर्य की तेज धूप से वे बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। मेरे सिर पर हैट की ओर देखकर बोले — आपने यह टोपी लेकर बहुत अच्छा किया। मैंने सुना है कि आपके देश में लोग नंगे सिर या गांधी टोपी पहन कर रहते हैं। आप ऐसा हरगिज न कीजिए। यह अभ्यास बहुत ही खतरनाक है। तभी तो आपके देश के लोग कुछ विचार नहीं कर सकते। मैंने कहा — मगर महात्मा गांधी के दिमाग की शक्ति को तो बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ भी स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते। वे बोले — ओह, मैं गलती पर हूं। महात्मा गांधी पर तो

पूरे हिन्दुस्तानी नहीं या उनका दिमाग ठीक नहीं। इनमें से एक न एक बात अवश्य सत्य है। देखिए जब महात्मा गांधी हिन्दुस्तान से बाहर गए तभी उनमें बुद्धि के अंश अंग्रेजों के संसर्ग से प्रविष्ट हुए थे। मुझे इतिहास का भी शौक है मैंने कई खोजें की हैं। आप प्रायः कहा करते हैं कि चन्द्रगुप्त बड़ा विजयी था। वह विजयी अवश्य था पर उसे हिन्दुस्तानी समझना भूल है। वह तो ग्रीक था। अर्थशास्त्र की पुस्तक जो चाणक्य के नाम से मिलती है वह एक अंग्रेज ने १८वीं शताब्दी के मध्य में लिखी थी। किसी भारतीय पंडित ने चुराकर उसका संस्कृत अनुवाद कर डाला। लंदन म्यूजियम में उसकी मूल प्रति विद्यमान है।

इसी समय हम दूसरी प्रयोगशाला में जा पहुँचे। हमें यहां बिलकुल शान्त रहने के लिए कहा गया। यहां एक कमरे के बीच में दूसरा कमरा था जो शीशे और जाली का बना था। हम उसके भीतर न जा सके। बाहर से ही देखने की हमें आज्ञा मिली। हमने देखा उसके भीतर ऑपरेशन की कई मेजें पड़ी थी जिनपर अलग २ रोगी पड़े थे और उन्हें चिकित्सक घेरे हुए थे। प्रकाश भी कुछ तेज न था हमारी समझ में कुछ न आया। वहां से हटने पर अध्यक्ष महोदय ने कहा कि यहीं बुद्धि के कीटाणुओं की खोज की गई है। यहां जीर्ण दिमाग में टांकी लगाई जाती है। शायद

आपको मालूम नहीं कि आपके कई लीडर यहां आकर अपने दिमाग में टांकी लगवा चुके हैं। क्रिकेट खेलते हुए एक खिलाड़ी के दिमाग में चोट लगी। अगले दिन से व्याकरण में उस की प्रतिभा जाग उठी। मैंने कहा, शायद इसीलिए अध्यापक लोग सिर पर मारते हैं। अध्यक्ष ने कहा आपका ख्याल अवश्य विचारणीय है। हां, तो अभी तक उस बिन्दु का ठीक २ पता नहीं चला है; नहीं तो स्कूलों में व्याकरण पढ़ाने की आवश्यकता ही न रहती। पर मैं निराशावादी नहीं हूं। हमारे यहां निरन्तर परीक्षण हो रहे हैं। देखिए, यह और प्रयोगशाला है। हम अन्दर दाखिल हुए। एक विशाल भवन में लगभग ३६ पलंग बिछे हुए थे। उन पर कुछ लोग बायां पैर ऊपर उठाए हुए थे और उनका पैर छत से लटकती एक रस्सी से बांध दिया गया था। इसी प्रकार कुछ लोगों का दायां पैर बंधा हुआ था। हमारे पूछने पर प्रयोगकर्ता ने बताया कि यहां कुल ३६ व्यक्ति हैं। १८ व्यक्तियों को एक प्रकार से तथा दूसरे १८ व्यक्तियों को दूसरे प्रकार से रखा गया है। गत पौने तीन वर्षों से इनका पूरा २ विवरण रखा जा रहा है। हमारा विश्वास है कि इस प्रकार पैर ऊपर रखने से मनुष्य का क्रोध नष्ट हो जाता है और सहनशीलता बढ़ जाती है। उन्होंने यह भी कहा कि पुस्तकों को शरीर के समीप सिरहाने रखकर सोने के परीक्षणों में उन्हें ९० प्रतिशत तक सफलता मिल चुकी है। इस तरह

सोने से पुस्तकों का संस्कार प्रत्यय के मस्तिष्क में अज्ञात रूप से चला जाता है। प्रसंगवश उन्होंने यह भी कहा कि एक प्रयोगशाला में यह भी सिद्ध हो चुका है कि चिऊँटी के विष में कोढ़ को नष्ट करने की शक्ति है। यदि १५ हजार चिऊँटियाँ किसी मनुष्य को सप्ताह में एक बार कटवाई जाएँ तो उसका कोढ़ शर्तिया जाता रहेगा; परन्तु उसके लिए जीवनी शक्ति विशेष होनी आवश्यक है।

वहां से हम आगे गए। दूर से ही ढोल, नगाड़ों तथा लोगों के चिल्लाने की बड़ी तीव्र ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। अध्यक्ष महाशय ने कहना शुरू किया, "यहां पर परीक्षण हो रहा है कि शोर गुल में रहने से मनुष्य की आयु लम्बी होती है। यह परीक्षण पहले चूहों पर किया गया था। जिन चूहों को निरन्तर शोरगुल में रखा गया उनकी आयु चूहों की औसत आयु से सवाई बढ़ गई है। मैंने कहा भारतीय प्राचीन ऋषि मुनि तो पहाड़ों की गुफाओं में मौन रहते थे और उससे उनकी आयु बढ़ जाती थी। अध्यक्ष महोदय बोले — यही तो मुश्किल है। आप लोग वैज्ञानिक पद्धति से विचार नहीं करते। माफ कीजिए मुझे यही कटु सत्य दुहराना पड़ रहा है। यह दोष आपका नहीं आपके देश का है। आश्चर्य तो यह है कि इतने दिन यूरोप के जलवायु में रहकर भी आपका मस्तिष्क नॉर्मल नहीं हुआ। मैं मन ही मन सोच रहा था—

ये ही यूरोपियन अपने आप को शुद्ध विज्ञान करने का दावेदार समझते हैं। इनका यह भी कहना है कि राजनीति के क्षेत्र में ये भले ही पक्षपात करें किन्तु विज्ञान के कामों में एक निष्पक्ष हो जाते हैं। बलिहारी इनकी निष्पक्षता की। ये अपने पक्षपात और संकीर्ण विचारों भी विज्ञान से सिद्ध कर रहे हैं। अध्यक्ष महोदय अपना गाना गाये जा रहे थे - उन्होंने कहा हमारे देश में अन्न बहुत कम उत्पन्न होता है। रुई - जूट - चाय आदि के लिए भी हमें दूसरे देशों का मुँह ताकना पड़ता है। हम इस बात का यत्न कर रहे हैं कि मिलों के धुएँ से कैमिकल भोजन तैयार कर लें। देखिए तो सही कि आपके देश में एक ही फसल पृथ्वी को ६,८ महीने घेरे रहती है। हम यह झगड़ा ही काट देना चाहते हैं। कुछ दिनों में खेती करने की आवश्यकता न रहेगी।

बातें करते 2 हम एक दूसरी जगह आ पहुँचे। वहां कुछ मुर्गी के बच्चे इधर-उधर भाग रहे थे। हमें बताया गया कि यहां यह परीक्षण हो रहा है कि प्राणी कुछ दिनों में ही कुछ सालों का कैसे बना लिया जाय। मनुष्य का बालक १८,१९ साल में जाकर जाति की सेवा के योग्य होता है। इसमें समय तथा धन की कितनी हानि है। हम यह यत्न कर रहे हैं कि बच्चा पैदा होते ही कुछ घण्टों में जवान हो जाय।

ऐसे यन्त्र बनाये गए हैं जिनकी सहायता से बच्चे के शरीर को खींच कर तथा बिजली की सहायता से एक दम बड़ा कर दिया जाय। यद्यपि अभी विशेष सफलता नहीं मिली पर सिद्धान्त का पता चल गया है। निकट भविष्य में ही निराशा का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। मैंने मन ही मन कहा – आप निराश न होइए। क्योंकि निराशा के भी तो जर्म होते ही होंगे और वे शायद योरुप की जल-वायु में जीवित नहीं रह सकते। मैंने सोचा कि यह सब समय का प्रभाव है। गोरा आदमी बड़ी से बड़ी बेवकूफी की बात भी करे तो उसकी तह में फिलॉसॉफी और विज्ञान छिपे दीखते हैं और काले आदमियों की युक्ति-संगत बात भी बेवकूफी मानी जाती है। मेरे धैर्य की काफी परीक्षा हो चुकी थी। मैं अब छुट्टी चाहता था। मैंने अपने साथी को इशारा किया। अध्यक्ष महाशय समझ गये। वे निराश होकर कहने लगे – ओह मुझे तो अभी आपको बहुत से परीक्षण दिखाने थे। अच्छा श्रोता मिल जाने पर मेरा उत्साह बहुत बढ़ जाता है। क्या मैं आशा करूँ कि आप शीघ्र ही फिर दर्शन देंगे। मैंने कहा – जैसे आपके यहाँ विज्ञान की धूम है वैसे ही मेरे देश में कविता का बोल-बाला है। वहाँ कवि-सम्मेलन और गल्प-गोष्ठी बहुत होती हैं। यदि किसी यन्त्र की सहायता से मैं कवि या गल्प लेखक बन सकूँ तो मुझे अवश्य

दिखाइये। वैज्ञानिक महानुभाव ने कहा – ओहो, मैं उसका भी परीक्षण कर रहा हूँ। मेरी झुंझलाहट और हँसी का ठिकाना न रहा। मेरे मुँह से निकल ही तो गया कि "तेरी और तेरे परीक्षणों की ऐसी-तैसी"। उसी समय हमारी मोटर आ पहुँची। मैंने धन्यवाद दिया और सोचा कि ऐसे वैज्ञानिकों से परमात्मा बचाए।

श्री पं. क्षितीशजी वेदालंकार

लक्ष्मी – चिर-चंचल।

एक दिन सवेरे जो शयन कक्ष से बाहर देखा तो – देखा कि सारी सृष्टि वैसी की वैसी ही है। किञ्चित भी अन्तर नहीं। प्रतिदिन ऐसी ही होती है।

यह एकरसता उसे पसन्द न आई। विष्णु को समुद्र-फेन की शय्या पर से उठाया और बोली – "तुम्हारी सृष्टि कितनी पुरानी पड़ गई है – जरा-जीर्ण, संहर्ष-शीर्ण, जीवन-क्षीण। पर तुम्हें इसकी परवाह ही नहीं। तुम तो आंखें बन्द किये पड़े रहते हो, पर मुझे यह सब नहीं भाता। कोई ऐसी कृति करो जो पुरानी न पड़ सके, जिसको जरा जीर्ण न कर सके, संहर्ष शीर्ण और जीवन क्षीण – जो अमर हो।"

निद्रा में व्याघात पड़ते ही विष्णु की आंखें गुस्से के मारे लाल हो आई थी, किन्तु जब देखा कि वह व्याघात डालने वाला स्वयं लक्ष्मी है, और कोई नहीं, तो वह गुस्सा

प्रेम में परिणत हो गया। वे अभी अपनी अलसाई आंखों को मसल ही रहे थे और सोच रहे थे कि कौनसी युक्तियों से लक्ष्मी अभिभूत हो सकेगी कि इतने में उसकी यह विचित्र शिकायत सुनकर हैरान रह गये।

लक्ष्मी को इतना धैर्य कहां। फिर बोली - "ऐसे दिन-रात सोने से काम नहीं चलेगा। जब तक ऐसी कृति नहीं कर दोगे - जो अमर हो, तब तक सोने नहीं दूंगी। और खबरदार, जो आगे से कभी मेरा अंग स्पर्श भी किया।"

विष्णु हतप्रभ होगए। और जब देखा कि लक्ष्मी धीरे-धीरे दूर ही खिसकती जारही है, और संयम उनका दामन छुड़ाता जारहा है, तो समस्या को टालने के लिए बोले - "मैं क्या करूं! मेरा काम रचना करने का थोड़े ही है। मैं तो केवल भाग्य निर्णायक हूं। ब्रह्मा जैसा मॉडल बनाकर भेजते हैं उसके माथे पर मैं उसके अनुसार ही लिखकर रख देता हूं कि यह मॉडल इतने दिन तक दुनिया में रहने के योग्य है। बस केवल इतना मेरा काम है। आगे जब उसकी दुनिया की अवधि समाप्त होजाती है तो शिवजी का डिपार्टमेन्ट शुरू होता है। इसलिये तुम्हें अपनी शिकायत ब्रह्मा के पास जाकर करनी चाहिए।

लक्ष्मी ने समझा कि यह शायद फुसलाने का उपाय है। बोली - "तो फिर यह क्यों नहीं कहते कि तुम करना नहीं चाहते, या तुम कर ही नहीं सकते"।

विष्णु ने समझाते हुये कहा - "देखो लक्ष्मी! इसमें न चाहने की या न कर सकने की तो कोई बात है नहीं। यह तो अपने २ डिपार्टमेन्ट की बात है। यदि आज मैं ब्रह्मा के काम में पक्षपात करूं, तो कल वे मेरे काम में हस्तक्षेप करेंगे। फिर एक तो महाभारत मचेगा - जैसा कि तुम्हें याद होगा कि द्वापर में कौरव और पांडवों के बीच अधिकार के लिये एक महाभारत हुवा था - और दूसरे सृष्टि की व्यवस्था में गड़बड़ी होजायगी, सो अलग। तुम्हीं बताओ कि तुम्हें महाभारत पसंद है या अव्यवस्था"।

इतना समझाने से लक्ष्मी समझ गई और फिर चुप-चाप उठकर चली गई।

जाकर सरस्वती का द्वार खटखटाया। सरस्वती सतत-जागरूक। एकदम द्वार खोला। लक्ष्मी को देखते ही स्वागत करती हुई बोली - "कहो बहन! आज सवेरे ही सवेरे कैसे रास्ता भूल गईं! तुम तो कभी दर्शन ही नहीं देती। आओ बैठो"। यह कहकर सरस्वती ने जिस पाद-पीठ पर वीणा रखी थी वह खाली करदी

पर लक्ष्मी बोल उठी बीच में ही - " नहीं आज बैठने की फुरसत नहीं है। एक खास काम से आई थी। ब्रह्मा जी कहां हैं? उनसे कहना था कि अबकी बार ऐसी कृति करें जो अजर हो और अमर हो, जिसे काल नष्ट न कर सके। जो नित्य नई हो "।

इस अद्भुत रचना को देखने के लिए सरस्वती भी उत्सुक हो उठी। लक्ष्मी को साथ लेकर सरस्वती ब्रह्मा जी के पास पहुंची। ब्रह्मा अपनी प्रयोगशाला में बैठे 2 ऊंघ रहे थे। सिर के और दाढ़ी के बाल सफेद हो चुके थे, शरीर पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं। जिसने कभी जवानी की उम्र में उन्हें देखा हो वह तो अब पहिचान भी नहीं सकता। किया क्या जाए? सृष्टि ही सृष्टि - दिन रात सृष्टि। आजकल दुनिया में मारकाट बहुत मच रही है, इसलिये उस कमी को पूरा करने के लिये उन्हें हमेशा अपनी प्रयोगशाला में ही रहना पड़ता है। पर बीसवीं सदी क्या आई कि बिचारे ब्रह्मा को एक मिनट की भी फुरसत नहीं।

सामने की मेज पर पांचों भूत - क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर - अलग 2 शीशियों में बन्द पड़े हैं। पास की कुछ बोतलों में तरह 2 के mixture तैयार हैं। बहुत सी पुड़िया बन्द पड़ी हैं। तुला रखी है और बाट रखे हैं। और ब्रह्मा ऊंघते ही ऊंघते शीशियों में से पांचों भूतों को तोल 2 कर निकालते हैं, बोतलों में से कुछ द्रव सा पदार्थ निकालकर उसमें मिलाते हैं और फिर पुड़ियों में से

काये २ से एक पुर्जे को उठाकर छिड़कते जाते हैं- मॉडेल तैयार होजाता है। अपने चिर अभ्यस्त हाथों से वे-दनादन यही किया करते हैं और मॉडेल पर मॉडेल तैयार होते जा रहे हैं- देखने सुनने में सब एक जैसे लगते हैं पर कोई किसी से मिलता नहीं है।

बूढ़े बाबा की करामात!

वीणा- विनिन्दक कण्ठ से सरस्वती ने ब्रह्मा का ध्यान अपनी ओर खींचा और लक्ष्मी को पेश कर दिया।

लक्ष्मी ने कहा "बूढ़े बाबा! तुम अनादिकाल से सृष्टि करते आ रहे हो किन्तु तुमने आजतक ऐसी कोई कृति नहीं की जो अमर हो। अबकी बार अपनी कला को आजमा कर देखो- -देखो, शायद कोई पुराना नुस्खा तुम्हें याद हो: फिर ऐसी सृष्टि करो कि दुनियां देखकर चकित होजाय और काल उस पर अपना प्रभाव न डाल सके"।

ब्रह्मा को अपनी हाथ पर गर्व था- ऐसे सुन्दर२ मॉडेल वे अपनी जवानी में बना चुके थे कि लोक लोकान्तर में प्रशंसाओं के पोस्टर बांटे गये थे। उसी दृश्य को याद करके उन्होंने लक्ष्मी को स्वीकृति देकर बिदा कर दिया।

पर अब तो उन्हें न फुरसत ही थी और नहीं वह जवानी का उत्साह था- जो कि नई कृति के लिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित होता है। फिर आंखों से ठीक सूझ पड़ता भी नहीं। दुर्गा पर

कि अनादिकाल से कृषि करते २ इतने अभ्यस्त होगए हैं कि अपने चिर अभ्यास क्रिया को आसानी से छोड़ भी नहीं सकते।

इसलिये अगले दिन जब लक्ष्मी की मांग पूरी करने बैठे तो वे ठीक वैसा ही मॉडेल बना गए जैसा कि अबतक बनाते आये थे - वैसी ही आंखें, वैसी ही नाक, वैसा ही मुंह और वैसा ही सबकुछ। उस मॉडेल में और और मॉडेलों में बिल्कुल भी अन्तर नहीं

विष्णु के पास वह मॉडेल आया। अपनी कलम से विष्णु ने उसके माथे पर लिख दिया - आयु २० वर्ष।

लक्ष्मी पास ही बैठी थी। उसने एकदम हाथ पकड़ लिया "यह क्या किया? इसको तो अमर बनाना था - जिसपर काल का कोई असर न हो। और तुमने लिख दिया - बीस वर्ष"।

"तुम्ही ने तो कहा था कि कोई नई रचना करो। यह बिल्कुल नई है। अबतक 20 वर्ष किसी के भी माथे पर नहीं लिखा"। विष्णु ने सफाई देते हुए कहा।

"मैंने तो अमर करने के लिये कहा था" लक्ष्मी ने अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुवे कहा।

विष्णु ने अपनी लाचारी दिखाते हुवे कहा -

"पर जो एक बार लिखा गया उसे तो मिटाया नहीं जा सकता - अब?"

एक सामान्य घर में उस मॉडेल का जन्म हुआ और वह एक सामान्य मनुष्य बनकर संसार में आया। सामान्य मनुष्यों की ही तरह वह पाला गया, पोसा गया।

बड़ा हुआ - सामान्य मनुष्यों की ही तरह उसकी शिक्षा दीक्षा हुई। जब उन्नीस वर्ष की उम्र हुई तो शिवजी अपने स्थान से हिले - 'दुपुरी' पर चल दिए।

उसी वर्ष अपनी किन्हीं क्रियाओं के कारण वह विद्रोही समझा गया। गिरफ्तार कर लिया गया। सख्त मशक्कत। मारपीट। अमानुषिक अत्याचार। बर्बरता पूर्ण व्यवहार। और - जेल के वे यमदूत। मिट्टी का मॉडेल इतनी यातनाएं न सह सका - चल बसा। शहीद !!!

यम के दूत रथ लेकर शहीद को लेने आए। रथ जब ऊपर को जा रहा था तो देवताओं ने सब दिशाओं से फूल बरसाए।

शिवजी खुशी के मारे कैलाश पर ताण्डव नृत्य करने लगे। विष्णु ने क्षीर-सागर के वक्ष पर लक्ष्मी को कस कर पकड़ लिया।

और ब्रह्मा अपनी प्रयोगशाला में बैठे बैठे खिलखिलाकर हंस पड़े।

२ जनवरी ४०

स्कूल-जीवन की दो विद्याएँ

– श्री पं. सत्यदेव जी विद्यालंकार
सम्पादक "हिन्दुस्तान"

अंग्रेजी की यह कहावत यदि ठीक है कि बच्चा बाप का पिता है, तो मुझे अपने बचपन को देखते हुए यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि मेरे सार्वजनिक जीवन की माता "वाग्वर्धिनी सभा" है और सम्पादकीय जीवन का पिता "राजहंस" है। ये दोनों मेरे वास्तविक स्कूल हैं, जिनकी गोद में बैठ कर मैंने सीखा है जो कुलमाता की गोद छोड़ने के बाद मेरे काम आया है। गुरुकुल की शिक्षा दीक्षा का मेरे लिये प्रधानतम आवश्यक अङ्ग यह था, जिसकी प्राप्ति मैंने बिना किसी ऐसे गुरु के आन्तरिक प्रेरणा से अपनी सभाओं और समाचार-पत्रों द्वारा प्राप्त की थी। उसका प्रारम्भ कब और कैसे हुआ; – उसका इतिहास यदि कभी आत्मकथा में कहानी के रूप में लिखने का समय आया, तो मेरा ख्याल है कि, वह गान्धी जी की आत्मकथा के

समान शिक्षाप्रद और नेहरू जी की "मेरी कहानी" के समान रुचिकर साबित होगा। हिमालय की उच्चतम चोटी पर पहुंचने के बाद नीचे की दुनियां जितनी पुरानी जान पड़ती है, उतनी ही जीवन के उत्कर्ष के बाद बचपन के दिनों की स्मृतियां जान पड़ती हैं। मनुष्य जिन सीढ़ियों पर पैर रखता हुआ शिखर पर पहुंचता है, बहुधा वे आंखों से ओझल हो जाती हैं, लेकिन, उनका स्मरण कितना स्फूर्तिदायक, प्रेरक और उत्साहप्रद होता है? मैं जब गुरुकुल के उन दिनों की याद करता हूं, जब मैंने कलम पकड़नी शुरू की थी और भाषाओं में तुतलाना शुरू किया था, तब मेरे देह में, दिल और दिमाग में, एक बिजली सी दौड़ जाती- और सचमुच इच्छा होती है कि काश एक बार फिर इस जीवन का प्रारम्भ उन दिनों से हो सके, तो स्वर्ग का सारा सुख भी उन पर न्योछावर किया जा सकता है। लोगों की धारणा तो मरने के बाद स्वर्ग का सुख मिलने की है; लेकिन, हमें तो इस दुनियां में जन्म लेने के बाद स्वर्ग नसीब हुआ था। निस्सन्देह, वह आर्यसमा- जियों की युक्ति थी, जो निरन्तर नहीं रह सकी। चौदह वर्ष

कर उस स्वर्ग और मुक्ति का सारा सुख हम से छिन गया।

× × × ×

गुरुकुल के सत्य-युग में सचमुच वहां घी और दूध की नदियां बहा करती थीं। सवेरे दूध और बूंदी के लड्डुओं से प्रातराश हुआ करता था, मनचाहा दूध और मुंहमांगे लड्डू मिला करते थे। उन्हीं दिनों की बात है। शायद, सातवीं श्रेणी रही होगी, हमने देखा कि हमारे से बड़े भाई अपनी पत्र-पत्रिकाएं निकाला करते थे। हमें भी शौक और खिलवाड़ सूझा। हमने तय किया कि एक साथ कई अङ्क निकाला जाया करें, अर्थात् अखबार के साथ प्रेस भी खोला जाय। हमें पता था कि कार्बन से कई प्रतियां की जा सकती हैं। पर, कार्बन कहां से प्राप्त किया जाय? बहुत दूर की सूझी। रंग-बिरंगे कार्बन तैयार करने का कारखाना खोल लिया गया। ईंट कोयला आदि के चूर्ण पीस कर खूब बारीक बनाए जाते, कागज पर तेल लगा कर उन पर चूर्ण बुरक दिया जाता। कई रंगों के कार्बन सहज में बन जाते। उनके सहारे रंगबिरंगे

पत्रिका के कई अङ्क तय्यार किये जाते। उनके बटवारे का नियम भी खूब था। ग्राहकों से बतौर भेंट के लड्डू लिये जाते थे। सम्पादक-मण्डल और प्रेसमैन पत्र की मालिक मण्डली "मित्रमण्डली" उन लड्डुओं का सम्भोग करती।

हमारे गुरुजनों को हमारा यह खिलवाड़ पढ़ाई में बाधक जंचा। उन्होंने इसे बंद करना चाहा। पुलिस जैसे आजकल समाचारपत्रों और प्रेसों के दफ्तरों पर छापा मारा करती है, ठीक वैसे ही हमारे दफ्तर पर कई बार छापा मारा गया। स्कूल के समय आश्रम और आश्रम के समय स्कूल के कमरे टटोले जाते। पर, गुरुओं से विद्यार्थी कहीं अधिक चालाक होते हैं। हमारा दफ्तर और छापाखाना हमारे बस्तों में, हमारी पुस्तकों और हमारी कापियों में रहा करता था। उनका पता लगाना इतना आसान न था। इस खिलवाड़ से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र का नाम "विद्योदय" था। उसकी शकल-सूरत २६, २८ बर्ष बाद अब भी आंखों के सामने बनी हुई है। वह इस जीवन का प्रारम्भ था,- पत्रि-करण था, जिसका प्रारम्भ बिल्कुल खिलवाड़ से

हुआ था।

× × ×

दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। दूसरे ढंग से युवजनों ने देखा कि इन प्रवृत्तियों को किसी अच्छे रंग-ढंग में ढाला जाय, तो अच्छा हो। उन्होंने खुले तौर पर इनके लिये इन्हें अवसर देना चाहा। सम्भवतः आठवीं श्रेणी के वे दिन थे, आम तौर पर नवमीं-दसवीं श्रेणी से, इस जीवन का प्रारम्भ होता था। "कार्तिक चन्द्रिका" नाम की पत्रिका नवमीं-दसवीं श्रेणी और "राजहंस" छात्रालय की ओर से निकला करती थी। इन्हें आठवीं में ही यह अवसर दिया गया। ऊपर की श्रेणी वालों में कुछ ईर्ष्या की भावना उपजने लग रही थी। इसने कार्तिक कौमुदिनी नाम से मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। यह नाम रखने में भावना यह थी कि "चन्द्रिका" के अस्त होने पर अन्धकारमय गगन में केवल कौमुदिनी ही चमकती है। दोनों के विशेषांकों में सज-धज रहती थी, चित्रों, लेखों, कविताओं और कहानियों आदि सभी दृष्टियों से काफी प्रतिस्पर्धा रहा करती थी। चोरी से भी एक दूसरे का भेद लिया जाता था। जो-

प्रोत्साहनात्मक आशीर्वाद भी प्राप्त था।

× × ×

तीस साल या [illegible] हुए साहित्यकार से [illegible] न साहित्यकार, न नाम [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वालों का फेरा समझने की दुर्भावना तब नहीं आयी थी, तब अपनाने की भावना कुछ अधिक थी। लेकिन, अपने से ऊपर वालों, अर्थात् बरसों वालों के साथ हमारा मेल तब भी न हो सका। हाँ, तेरहों और चौदहों से खासा मेल था। 'बालहितैषी सभा' पहिले 'साहित्य कलश बालहितैषी सभा' कही जाती थी। उसके नाम को अलंकारक रूप में लम्बा न रखने के लिये 'साहित्यकलश' शब्द के उसको लगाकर करने वालों में मेरा अधिक हाथ था और 'राजहंस' का मासिक से पाक्षिक करने वाली मण्डली में भी मेरा हाथ प्रधान था। जो बोले सो कुण्डा खोले वाला हाल था। लगभग दो वर्षों तक दोनों का कार्यभार संभालना पड़ा। कुछ शौक था, कुछ जिद थी और कुछ ऊपर वालों को नीचा दिखाने की भावना भी थी, जिसके साथ अन्त तक कभी भी [illegible]

ठीक नहीं बैठ पाते।

इन दिनों में उत्पादन और प्रकाशन के कई काम किये गए। उनका वर्णन इन पंक्तियों में इन दिनों में करना ठीक नहीं, क्योंकि आचार्य रामदेव जी और इन दिनों के स्थानापन्न आचार्य बालकृष्ण जी कई बार नाराज भी होगए। लेकिन, दिल में उत्साह और उमंग कैसी ही बनी रही। "समालोचक" नाम से कई साल तक एक दैनिक भी निकाला जाता रहा। पहिले तो इसे आचार्य जी की मैजिस्ट्रेट में लगा कर कुछ दिनों तक चोरी से निकाला जाता रहा। बाद में वह कन्यालय की लिखाईटेबल के एक कोने की शोभा बढ़ाने लग गया। एक बार तो उत्सव के दिनों में भी उसे बराबर निकाला गया। उस दैनिक के लिये समाचार लाने के लिये चोरी करनी पड़ती थी और डाका भी मारना पड़ता था। दफ्तर में डाक का थैला खुलने की ताक में बैठे रह कर कोई सा एक दैनिक निकाल लाना और उसमें से कुछ समाचार लेकर 'समालोचक' के पहले पृष्ठ में देने का धंधा कई दिनों तक जारी

रहा।

× × ×

मेरे जीवन का इतिहास अभी बन रहा है। उसका प्रारम्भ गुरुकुल छोड़ने के बाद हुआ समझना चाहिये। इस बीच में अनेकों पत्रों के सम्पादन करने का और अनेकों प्रान्तों में रह कर विविध कलाकार-पत्रों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला है। गुरुकुल से इस अजनबी दुनिया में आते ही दैनिक 'विजय' को हाथ में लिया था। तब कलकत्ता में पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय जी जी के राष्ट्रपतित्व में हुई कांग्रेस में जाने का अवसर मिला था। अनेक पत्रकारों से वहां भेंट हुई। आम तौर पर यह सवाल मुझसे पूछा जाता था कि मैं कितने वर्षों से इस लाइन में काम कर रहा हूं। यह कोई नहीं जानता था कि नवसिखुआ हूं और अभी अभी गुरुकुल छोड़ कर आया हूं। आज तो उसके बाद उन्नीस-बीस वर्ष बीत चुके हैं। इस समय जिस पत्र के सम्पादन करने का सुयोग प्राप्त है, उसे हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ पत्र माना जाता है। पर, मैं अनुभव करता हूं कि उसको सर्वश्रेष्ठ बनाने

के लिये अभी काफी गुंजाइश है। हिन्दी पत्रकार कला का ऊंचा माथा 'हिन्दुस्तान' ने जरूर ऊंचा किया है; लेकिन उसे बहुत अधिक ऊंचा करने के लिये अभी काफी गुंजाइश है।

× × ×

अपने इस जीवन को मुझे अभी सफल तो नहीं कहना चाहिये। लेकिन, दुनिया जिसे सफल कहती है, उसका रहस्य ऊपर की पंक्तियों में मैंने अपने कुल बन्धुओं के सामने खोल कर रख ~~दिया है~~ देने की कोशिश की है। उसके साथ में एक बात और भी लिख दूं। वह यह कि मेरी महत्वाकांक्षा क्या थी? तेरहवीं श्रेणी के दिन मुझे याद आते हैं। उन दिनों में यशस्वी पत्रकार अथवा सफल हलवाई बनने की धुन सवार थी। देशसेवा सर्वोत्तम साधन मुझे पत्रकार का जीवन जान पड़ता था और पैसा कमाने के लिये हलवाई का। इसी कार्य के लिये मैंने अपने पाचक केशराम को गुरु बनाया था। उससे खाना और मिठाइयां बनाने की शिक्षा उसके पीछे पड़कर

ग्रहण की थी। कई बार उनके साथ बैठकर योजनाएं भी बनाई जाती थीं।

गांधी जी का असहयोग आन्दोलन पत्रकार के पेशे की ओर खींच ले गया। अनुकूलता आय सदा ही मिलती रही। प्रायः हर बार जेल से छूटने पर किसी न किसी पत्र के सम्पादन करने का न्यौता स्वतः ही मिलता रहा। १९३२ के जेल-जीवन के बाद इस जीवन से अवकाश लेने की इच्छा तीव्र हो उठी। लेकिन किस्मत में कुछ और नहीं लिखा था। १९३४ के बिहार-भूकम्प के बाद, सात-आठ मास वहां के देहातों में बिताने के बाद, लगभग डेढ़ वर्ष जब बिमारी में बिता चुका और पहाड़ से नौ मास बाद जब दिल्ली लौटना हुआ, तो फिर उसी 'धंधे' का न्यौता अनायास ही मिल गया। बस सिर्फ एक इच्छा है कि हिन्दी-पत्रकार-कला को अन्य प्रान्तीय भाषाओं एवं राजभाषा अंग्रेजी की पंक्ति में बैठने का गौरव प्राप्त कराया जाय। हिन्दी के पत्रकार इच्छापूर्वक किये गए अपने त्याग और तपस्या से जिस दिन ऐसा कर दिखाएंगे, निश्चय ही उस दिन आशा भी

गौरव आज से कई गुना बढ़ जायेगा। लेकिन, इसमें तो सन्देह नहीं कि हिन्दी और हिन्दी-पत्रकार-कला के क्षेत्र में कुलमाता के गौरव को इन कुलपुत्रों ने कुछ बढ़ाया है। हां, इतना और लिख दूं कि गुरु नेताराम से सीखी गई विद्या भी व्यर्थ नहीं गई। उसने छः-सात बार के जेल-जीवन में बहुत काम दिया, वहां किचन का काम संभालने में उससे काफी मदद मिली। बाहर के जीवन में पत्रकार-कला को जो महत्व है, जेल में भोजन की राजनीति में किचन का महत्व उससे कुछ कम नहीं है।

मुझे अपने स्कूल-जीवन की इन दोनों शिक्षाओं पर एक समान अभिमान है, हालांकि इनका मेरी पुस्तकों की पढ़ाई से ऐसा कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था और अधिकांश गुरुजन इन्हें पुस्तकों की पढ़ाई के लिये बाधक ही माना करते थे।

— ० — — ० —

— श्री सत्यभूषण जी "योगी"
वेदालंकार.

समझो मत हम को ठण्डे, हम दहक रहे अंगारे हैं।
भूल जायेंगे बढ़े चढ़े जो गर्व गुमान तुम्हारे हैं।
आई ऊपर राख और ही असली रूप हमारे हैं;
समझो मत हम को ठण्डे, हम दहक रहे अंगारे हैं।

जल जल कर ही प्रतिपल हमने स्वयं जलाना है सीखा,
पर न किसी को भी बेमतलब कभी सताना है सीखा,

मानवता को हमने केवल कुछ पहचाना है सीखा,
जल जल कर ही प्रतिपल हमने स्वयं जलाना ही सीखा।

× ×

सच है हम चुपचाप पेड़ रहते न किसी को कुछ कहते,
पर न कभी भी हम अपना अपमान तनिक भी हैं सहते,
जो हम पर आकर पड़ता वह मरता है दहते दहते;
सच है हम चुपचाप पेड़ रहते न किसी को कुछ कहते॥

× ×

हमी शम्भु की आँखों के थे, जिनसे मन्मथ राख हुआ,
बाणों में थे हमी राम के जिनसे दशमुख खाक हुआ,
हमें छेड़ने वालों को रख सकती कोई भी न दुआ,
हमी शम्भु की आँखों के थे, जिनसे मन्मथ राख हुआ॥

× ×

वीर प्रताप शिवाजी का हमने ही रक्त उबाला था,
झांसी की रानी ने जलता पिया हमारा प्याला था!
लाल हमारी ही ज्वाला पर भगतसिंह मतवाला था!
वीर प्रताप शिवाजी का हमने ही रक्त उबाला था!

× ×

देशभक्त, जो सीली कोठरियों में बन्द रहा करते,
ठण्डी ठण्डी रातों में जो कांपे ही ठिठुरा करते,
हम ही उनकी देहों में तब गर्मी ताप भरा करते,
देशभक्त, जो सीली कोठरियों में बन्द रहा करते!

× ×

सूने मरघट में निशिदिन हम बैठे गाया करते हैं,
ऊँच नीच सब के स्वागत को हाथ बढ़ाया करते हैं।
सब को अगले जीवन का संदेश सुनाया करते हैं।
सूने मरघट में निशिदिन हम बैठे गाया करते हैं।

× ×

रजनी के वे आसमान के कितने अंगारे जलते।
बादल उन्हीं के सलिल बिन्दु बन नित धरा पर हैं ढलते।
"रहो धधकते प्रतिपल' के सन्देश यही देते रहते।
रजनी के वे आसमान के कितने अंगारे जलते।

× ×

लाल लाल प्रात: पूरब में जलता अंगारा आता,
स्नेह दृगों से तुम्हें देखकर नीरव कुछ कहता जाता,
तुम प्रतीक मेरे धरती पर, तुम्हें देख मैं हरषाता,
लाल लाल प्रात: पूरब में जलता अंगारा आता।

× ×

एक तुम्हारी चिनगारी से ढें बड़े बड़े हों राजमहल।
मचल उठे सा, सब त्रिभुवन में छा जाए वह घोर अनल।
शीत समुन्दर में भी लग जाए वह भारी बड़वानल।
एक तुम्हारी चिनगारी से बड़े बड़े हों राजमहल।

× ×

कहीं न ऐसा वैसा हम को भाई, कभी समझ रखना!
जो कहते हैं, वह करते हैं, सीखा न कभी झूठ बकना!
हम यों ही नहीं जला करते, कुछ मतलब रखते हैं जलना!
कहीं न ऐसा वैसा हम को भाई, कभी समझ रखना!

× ×

नहीं फूल हम, जो कि हमें चुपचाप उठाने पाओगे!
हम गुलाब से सुन्दर हैं, पर नहीं सुराने पाओगे!
दूर रहो, हम सच कहते, तुम तड़प तड़प रुक जाओगे!
नहीं फूल हम, जो कि हमें चुपचाप उठाने पाओगे!

× ×

("कुमार" से उद्धृत).

हिमालय की तलहटी में -

स्वर्ग काश्मीर

ले. श्री क्षितीशजी
वेदालंकार

श्रीनगर जाने के दो रास्ते हैं। एक रावलपिंडी से तथा दूसरा जम्मू से। प्रथम मार्ग प्राचीन काल से ही चला आ रहा है, किन्तु द्वितीय मार्ग आधुनिक है। हम लोगों का विचार था कि हम आधुनिक मार्ग से जाकर प्राचीन से लौट आयेंगे। किया भी यही गया, किन्तु अच्छा यही है कि प्राचीन मार्ग से जायें और आधुनिक मार्ग से लौट आयें, क्यों कि यह तो सम्भवत: सब को ही ज्ञात है, कि श्रीनगर सबसे रंगीला स्थान है - साथ ही मार्ग में जितने भी दर्शनीय स्थान हैं, वे सब इसी रास्ते में हैं. अत: समय एवं धन की बचत के लिये प्राचीन का ही आश्रय लेना श्रेयस्कर प्रतीत होता है - एक बात और भी यह है, कि रावलपिंडी के रास्ते में उत्तर प्रदेश के तक्षशिला, पुरुषपुर (पेशावर) लंडीकोतल, खैबर दर्रा आदि प्राचीन काल के प्रसिद्ध अनेक दर्शनीय प्रदेश हैं - जिन्हें देखकर गुप्तकालीन शक-हूणों का - जिनमें चन्द्रगुप्त - स्कन्दगुप्त आदि की आक्रमण-

वीरता का तथा उत्तेजक - कोलाहल को आज भी धड़का देने वाले और रोंगटे खड़े कर देने वाले अनेक कल्पित शवों के आज भी दर्शन हो सकते हैं। देख कर दिल दहल सा जाता है। और उन गोरखक तथा सिक्ख की वीरता को याद कर कर के आज भी भुजाएं फड़क उठती हैं - इत्यादि -

हरिद्वार से -

हरिद्वार अपने आप में एक दर्शनीय तीर्थ है। गंगा जैसी - पवित्र नदी के किनारे स्थित है। जलवायु तो अनुपम है। आस पास अनेक दर्शनीय मन्दिर, रमणीय उद्यान [illegible] blocks हैं। हिन्दुओं का तो पवित्र तीर्थस्थान है आदि -। मैं तो कई सालों से यहीं अध्ययन कर रहा हूं अत: उन यात्रियों की अपेक्षा जो कि एक साल में एक बार तो शायद कभी भी नहीं - अपितु जन्म भर में एक बार गोता लगा कर कृतकृत्य या मुक्त हो जाते हैं, बहुत अधिक और मुक्तों में भी मुक्त कहा जाऊंगा - खैर! जो कुछ भी हो हरिद्वार वस्तुत: ही हरि का द्वार है। मैं यहां से जाने वाली एक पार्टी के साथ 28- अगस्त* को ब्राह्ममुहूर्त में ही चल पड़ा - क्योंकि स्टेशन हमारे स्थान से लगभग 3- 3½ तीन मील के अन्तर पर ही है। हम लोगों के प्रोग्राम पहिले ही बन चुके थे, अत: तदनुसार हमने प्रस्थान किया। दुर्भाग्यवश या भाग्यवशात् जो कुछ भी कहिये उस दिन 3 बजे से ही दूर लाघव की आँख लो गई।

और करीब-करीब १-१½ घण्टे तक होती रही। तकरीबन दस बजे गाड़ी जाती थी और जाना भी आवश्यक था अतः मैच के कारण समय पर पहुँच ही गये। वर्षा के कारण चारों ओर पानी के प्राचुर्य से हरियाली ही हरियाली नज़र आती थी। वृक्ष नए पत्ते धोकर बादलों के साथ अठखेलियां करते हुए इन्द्रदेव की माया में मारे मस्ती के झूमे जा रहे थे। सूर्य भगवान भी भक्तों की आराधना से सन्तुष्ट होकर शीघ्र ही दर्शन देने के लिये अपने प्रासाद से बाहर आये। हम भी अपने प्रोग्रामानुसार शीघ्र ही गाड़ी से बाहर हो जाना चाहते थे। क्योंकि सहारनपुर में हमने हॉकी-मैच खेलना था। ११ के लगभग सहारनपुर उतर पड़े।

गत वर्ष के अपमानजनक पराजय की अपने कलंक को धो-डालने के लिये उतावले हो रहे थे। शहर को एक कोने से दूसरे कोने तक छान डाला। Public Garden आदि स्थान देख कर अपने निवासस्थान पर लौट आये। कुछ देर विश्राम के बाद ही match था। सब खिलाड़ी अपनी-अपनी हॉकी लेकर ग्राउण्ड में उतर पड़े। Half time में ही दो गोल खा लिये। उन गोलों को उतारने के लिये प्रतिद्वंदियों ने एड़ी से चोटी का जोर लगाया, किन्तु सब व्यर्थ साबित हुआ। खेल खतम हुई, हम लोग भी रात की गाड़ी से आने के लिये चल पड़े। गाड़ी में बहुत ही भीड़ थी। केवल पर अशिक्षितता का मनुष्य के साथ मनुष्य व्यवहार का नाप अभाव नज़र आता था। तमाखू तथा हुक्कों के धुएं से तो दम घुटा जाता था किन्तु करते तो क्या?

आखिर जाना तो था ही। सम्भवतः इतने अधिक लोग एक Berth
में पशु भी नहीं ठूंसे जा सकते। सारी रात बैठे २ ही बिताई।
सुबह ६ बजे ही लुधियाने में आ पहुंचे। बहुत वर्षों से पंजाब
देखने की उत्कट इच्छा थी। अनेकों के मुखों से इस वीर-
प्रसविनी का नाम सुना था। कई बार इधर आने के प्रोग्राम
भी बनाये, किन्तु ईश्वरेच्छा सर्वोपरि है और हमारी इच्छाओं
की क्या औकात? येन केन प्रकारेण आज अपना मनोरथ
पूरा होता देख, मारे खुशी के दिल बल्लियों उछल रहा था।
तृषित नेत्र देखते देखते अघाते न थे। मारे उत्साह के
पैर जमीन पर पड़ते ही न थे। मनुष्य हरेक चीज़ की
प्रसिद्धि के अनुसार अपने दिमाग में एक कल्पित चित्र बना लेता
है, और वह चित्र प्रायः अधिक रंगीन और कल्पनातीत होता
है। मेरे भी दिमाग में ठीक इसी तरह का कल्पित चित्र
मौजूद था। किन्तु सब बेकार। लुधियाना एक अच्छा खासा
शहर है। सब से पहिले यहीं आ कर पंजाबी भाषा सुनी।
प्रारम्भ में तो बड़ी ही कर्ण कटु प्रतीत हुई, किन्तु अन्य शहरों
में और स्टेशनों पर सुनने से इसकी भी मधुरता का कुछ
भास हुआ। इस शहर में कुछ २ सफाई की कमी अवश्य
नजर आती थी। किन्तु लोगों में गुरुकुल के प्रति खासी भक्ति थी।
आगे भी प्रोग्राम बना हुआ था, अतः दोपहर की सख्त गर्मी में
ही आगे के लिये प्रस्थान किया। भगवान भुवन-भास्कर के
अस्ताचल प्रस्थान के समय ही हम लोगों ने जालन्धर में प्रवेश-

किया अपने प्रोग्राम के अनुसार हमने सिक्खों के लिये प्रसिद्ध शहर देखना चाहा, किन्तु एक जंगल में क्या ... सोच हो-शेर भी कभी रहे हैं? ~~[illegible]~~.

एक तो इन दिनों छुट्टियाँ थीं अतः सिवाय विद्यार्थियों की प्रांतिक Class के और कोई नहीं मिला। शहर अच्छी तरह देखा। लोग काफ़ी धनी और हस्त-कार्य कुशल प्रतीत होते थे किन्तु बड़े गन्दे थे, सफ़ाई का तो नाम निशान नहीं। हाँ आतिथ्य सत्कार करना ये लोग खूब जानते थे हैं। बड़े ही नम्र तथा दयालु लोग हैं। इस कारण इन का दिल बहुत ही उदार तथा स्वच्छ है। कुछ भी हो आन्तरिक स्वच्छता ही तो जीवन साफल्य की कुंजी है। कोई विशेष दर्शनीय चीज़ न होने से आगे चल पड़े, और शीघ्र ही अमृतसर जा पहुँचे। यहाँ सिक्खों का प्रबल नगर अथवा शहर खासा बड़ा है। सफ़ाई का भी काफ़ी प्रबन्ध कर रक्खा है। यहाँ दो तीन स्थान दर्शनीय हैं, जिनमें सिक्खों का गुरुद्वारा तथा जलियाँ वाला ~~[illegible] है~~ बाग उल्लेखनीय हैं। गुरुद्वारे से सिक्खों की एकता, पवित्रता, शुद्धता एवं भक्ति-भाव जाहिर होती है। साथ ही सिक्ख लोगों की सफ़ाई भी तथा अन्य भी बहुत से महत्वपूर्ण गुण ध्यान में लाने योग्य हैं।

जलियाँ वाला बाग वैसे आकार की दृष्टि से महत्व पूर्ण नहीं किन्तु आज कल के शासकों के प्रजा पर किये गये क्रूर-दमन एवं नृशंस अत्याचार ने इसे दुनियाँ में या आम जनता में ~~[illegible]~~ स्थान दिया। इस का इतिहास शायद भारत के प्रत्येक बच्चे२ को ज्ञात होगा।

अन्य भी दो-चार स्थान दर्शनीय हैं। किन्तु समयाभाव ने उन्हें-
हमारी दृष्टि में स्थान नहीं दिया। इसके बाद ख्याति-प्रसिद्ध पंजाब
की राजधानी लाहौर में सायंकाल पहुंचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।
बड़ा शहर है. पंजाबियों के लिये यह एक अपनी ही चीज है।
नये २ फैशन - नई २ चाल और एक नये ढंग के ही लोग
यहां नजर आये। ये लोग नये फैशनों को अपनाने में अग्रसर
हैं। वहां पर सफाई से उतने ही पिछड़े हुए हैं। सफाई किस चिड़िया
का नाम है यह तो शायद इन के दादाओं को भी पता न था
फिर इन बेचारों का क्या दोष ? शहर भी कोई विशेष-
साफ न था। लोग अच्छे तगड़े- शक्ति शाली एवं निर्भीक-
प्रतीत होते थे। मांस खाना तो इन के लिये आम बात सी
हो गई है। मुश्किल से एकाध ढाबा या Hotel ऐसा होगा जहां
मांस- सेवन न किया जाता हो। मांस न खाने वालों के लिये-
तो भोजन एक पहेली सा बन जाता है। माल रोड आदि एक-
दो स्थान देखने के काबिल हैं। लोग कोई विशेष गरीब-
नजर नहीं आते। गेहूं विशेष परिमाण में यहां और आस-
पास के स्थानों में होता है। गर्मी- सर्दी की कोई हद नहीं
मूसलाधार वर्षा का तो इन लोगों को कुछ पता ही नहीं.
हां ओलों का अवश्य पता है। यहां पर भी दो-चार
दर्शनीय चीजें हैं। जिनमें चिड़ियाघर, शालामार बाग, जहांगीर
का मकबरा आदि दो चार स्थान प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों को-
देखने के बाद हम लोग रात की गाड़ी से आगे चल पड़े।
सुबह को लगभग चार बजे स्यालकोट जा पहुंचे।
यह भी एक अच्छा शहर है। हौजरी आदि के लिये

का सामान बनाना तो प्रत्येक बच्चा तक जानता है।

काश्मीर जाने के लिये यहां से मोटरें लारी में हर तरह की सुविधा ही सुविधा है। २, ४ कम्पनियां हैं जिन से बात करने से आप को काश्मीर के बारे में काफ़ी जानकारी प्राप्त हो सकती है। अच्छा तो यही है कि एक कार्नि ही साझाकर लिया जाय जो कि पहिले कभी जा चुका हो, क्यों कि ठीक पता न होने से मोटर वाले मन माना Charge करते हैं। मोटर के Rates सड़क तथा पानियों के अनुसार निश्चित हो जाते हैं। हम लोगों के समय तो ५११) का था जिस में कि Tole आदि सब कुछ आ जाता है। इन दिनों से कुछ पहिले ४) भी था। मोटर में सदा आगे बैठना चाहिये क्यों कि पीछे बैठने से धूल फांकनी पड़ती है। साथ ही चक्कर भी कम नहीं आते। हम लोगों का विचार था कि जम्मू से काश्मीर तक पैदल जायेंगे, किन्तु जम्मू से श्रीनगर तक कर्मचारी हड़ताल थी, अतः हमें अपना प्रोग्राम बदलना पड़ा। स्यालकोट से ही मोटर करनी पड़ी, एक साथी को किसी कारणवश लौटना था अतः हमें एक बाहर का आदमी भी बिठाना पड़ा। इस प्रकार हम लोगों ने एक तरह से सारी लॉरी ही रिजर्व करा ली साथ का एक कार्नि भी कुछ भला सा ही प्रतीत होता था।

बारह बजे के लगभग हम लोग स्यालकोट से काश्मीर को रवाना हुए, जम्मू यहां से 32 मील है। मार्ग साधारणतया अच्छा है। सड़क के दोनों ओर चावलों के जंगल से खेत हरे ही हरे प्रतीत होते थे, इस साधारणतया मनोहारी कुछ ही देर के बाद काश्मीर State में प्रवेश किया।

देखा कि जम्मू का प्रत्येक बाजार, गली और यहां तक
कि प्रत्येक दुकान कई दिनों से बन्द थी। वे गरीब जिनके
पास खाने को अन्न नहीं - ओढ़ने को वस्त्र नहीं, यहां तक
कि अंग ढकने को जीर्ण शीर्ण वस्त्र तक भी नहीं थे भी
इस Strike में शरीक थे, देख कर बेहद अचम्भा हुआ।
जीवन में यह प्रथम ही हिन्दुओं के प्रेम का जीता
जागता नमूना था। इस ओर Railway यहीं तक आती है।
२½ - ३ घंटे ठहर कर यहीं से आगे यात्रा शुरू की।
जम्मू से निकलते ही शनैः सड़क पहाड़ों के पेट को चीरने-
लगी और एकाध मील आगे बढ़ते ही सारा जम्मू शहर
साफ दिखाई देता पड़ा। दूर से शहर बहुत अच्छा मालूम
हो रहा था। ज्यों २ आगे बढ़ते जाते थे एक से एक
बढ़ कर दृश्य सम्मुख आते थे। देख कर प्रभु की लीला
पर आश्चर्य होता था। बड़ी प्रतीक्षा के बाद हमारा
प्रथम पड़ाव आया। काश्मीर जाने वाली सभी मोटरें यहां
पड़ाव करती हैं। स्थान बड़ा अच्छा है, चारों ओर का दृश्य
बड़ा ही मन मोहक हो जाता एक झरना झरता रहता
है, जो कि बर्फ जैसा ठण्डा है और स्वाद में बहुत ही मीठा है।
लकड़ी के मकान प्रायः रास्ते किनारे पर मिल जाते हैं।
दो चार दुकानें हैं जो कि Strike के कारण बन्द थीं।
फिर भी एक सेठ की ओर से सदाव्रत खुला हुआ था।
हमें तो कोई भी कष्ट नहीं हुआ। अगले दिन प्रातःकाल
ही हम लोग यहां से चल पड़े आगे का मार्ग अत्यन्त-
आकर्षक ही एक बहुत ही मनोहारी मार्ग था, जिस पर
प्रातः काल का समय होने में मुझको के कारण हमको

कुछ जम्मू से लगातार ८८ मील की दूरी पर स्थित है। अगले
रोज सुबह ही हम लोग वहाँ से चल पड़े। आगे का दृश्य
भी बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता था ज्यों २ आगे बढ़ते-
जाते थे दृश्य एक दूसरे को मात कर देने वाले आते
जाते थे। ठीक दृश्य को देख कर यही प्रतीत होता था
कि प्रभु ने इन की ही रचना में अपनी सम्पूर्ण शक्ति
खर्च की होगी किन्तु कहाँ? अभी तो इसे भी मात करने
वाला काश्मीर बहुत दूर पड़ा हुआ था। मार्ग में बटोट,
रामबन, रामल आदि पड़ाव आते जाते थे। ये भी उत्कृष्ट
पड़ाव हैं। इन पड़ावों में खाने पीने उठने, बैठने आदि
की सब सुविधायें प्राप्त हैं किन्तु ठंग में पैसा
आवश्यक है। अनेक प्रकार के सुहावों तथा चढ़ाई उतराइयों
को पार करते हुए हम लोगों ने एक ऊँचे पहाड़ से
एक मैदान देखा। यही वास्तव: काश्मीर का मैदान था
जिसके चारों ओर बर्फीले पहाड़ी के पहाड़ खड़े हुए थे।
इस मैदान में पहुँचते २ ही न जाने कितना समय लग गया
वास्तव: देखा जाय तो कोई अधिक समय नहीं लगा था
किन्तु वस्तु की प्राप्ति या देखने की उत्कट अभिलाषा हो
तो उसके प्राप्त होते एक २ मिनट भी ~~नहीं लगता घण्टे~~
के समान लगता है। ठीक यही हाल मेरा भी था
काश्मीर से करीब १० मील पहिले मार्ग के लगभग
३ मील हट कर एक वेरी-नाग नामक स्थान आता है
काश्मीर-सौन्दर्य वृद्धि में इस स्थान का भी महत्व है
यहाँ पर एक ६० feet गहरा स्रोत है। ~~जिसका~~ पानी-
निर्मल, स्वच्छ और कुछ कुछ नीला प्रतीत होता है

अनेक बड़ी सुन्दर मछलियां क्रीड़ा करती रहती हैं। लगभग-
४० - ५० फीट का घेरा बना हुआ है। इस स्रोत को झेलम
नदी के उद्गमस्थान होने का गौरव प्राप्त है। जो कि सम्पूर्ण
काश्मीर के मैदान को सींचती हुई आगे निकल गई है।
इस स्थान को देख कर हम लोग काश्मीर के छोटे२ अनेक
ग्राम व कस्बों को पार करते हुए संध्या-समय ५ हजार-
फीट की ऊंचाई पर स्थित १½ लाख मनुष्यों से आबादित
हिन्दुस्तान के सुन्दरतम शहर श्रीनगर में जा पहुंचे।
* कहते हैं कि काश्मीर की घाटी संसार में सबसे बड़ी है।
यहां पर झेलम नदी काफी चौड़ी है तथा मन्द होती-
हुई शान्ति से बही चली जाती है। हजारों House boats,
डोंगों और शिकारों (छोटी२ किश्तियों का समूह) के कारण मानों
यहां नदी पर दुनिया भर का बोझ आ पड़ा है, जिसके कारण
नदी की गति इतनी शिथिल, मन्द हो गई है।
नदी के किनारे सुन्दर२ मकानों से सुशोभित हैं। तीसरे
तथा सातवें पुल के मध्य में स्थित अनेक कंगाल काश्मीरियों के मकान उनकी निर्धनता का जीता जागता नमूना है।
नदी में तैरते हुए अनेक Hotel कहलाते तथा-
कपड़ों की दुकानों का आकर्षण यात्रियों को आकर्षित-
किए बिना नहीं रह सकता। House boats में हमें
घर सरीखी खाने-पीने की, उठने बैठने की, चलने फिरने की
सम्पूर्ण सुविधायें प्राप्त हैं। यहां तक कि बिजली का
भी प्रबन्ध होता है। इनके चलाने वाले प्रायः मुसलमान
ही होते हैं फिर भी हिन्दू अपना खाना बनाने के लिये-
हिन्दू- ब्राह्मण रख सकते हैं। House boat भी मन-चाहे

~~का आकार बनाना तो प्रत्येक बच्चा भी जानता है~~
जहां ले जाया जाए या रहता है प्रत्येक House boat
का Rate अलग २ होता है इन Boats के साथ एक भोजन-
बोट तथा एक इधर उधर घूमने के लिए छोटा Boat
जिसे शिकारा कहते हैं होता है इसके सिवाय किनारे-
पर भी शिकारे मिलते हैं जो गद्दी, तकिये, गलीचे
आदि से सुसज्जित होते हैं इन्हें Taxi शिकारा-
कहते हैं इन में सैर करने से विशेष आनन्द-खुशी
तथा हर्ष-लाभ प्राप्त होता है

काश्मीर में हाथ से बनाये जाने वाले - शाल
दुशाले तथा ऊनी कपड़े प्रसिद्ध ही बनते हैं। अखरोट के
पेड़ों पर सुन्दर २ नक्शों वाली घर में काम आने वाली
अनेक चीजें प्राय: प्रसिद्ध ही बनते हैं अन्य भी अनेक
प्रकार के हाथ के काम प्रसिद्ध ही बनते हैं लोई, शाल
तथा इन पर की गई विशेष चित्रकारी यहां का-
अपना ही काम है

हम लोगों के ठहरने का प्रबन्ध आर्यसमाज
हजूरी बाग में था अत: स्थान तलाश करने में हमें किसी
तकलीफ अनुभव नहीं हुई। संध्या, हवन आदि नित्य कर्मों से
निवृत्त हो कर बाजार में अमरनाथ जाने की भी बात चली
पड़ी। पता लगा कि अमरनाथ जाने के तो दिन ही नहीं थे
कोई तो कहता था कि अभी जाया जा सकते हैं, किन्तु
बर्फ हो ~~आने~~ जाने पर जाना बहुत ही मुश्किल है

वर्षा होने से पहिले ही हमने अमरनाथ जाने का प्रोग्राम बनाया। लोगों से पूछताछ कर भोजनादि का प्रबन्ध कर लोग अमरनाथ को चल पड़े। २, ३ बजे हम लोग प्रथम पड़ाव पहलगांव में जा पहुंचे। स्थान बहुत अच्छा है पास ही एक पहाड़ी नदी बह रही है। स्थान तीन ओर से पहाड़ से घिरा हुआ है। पहाड़ों पर भी चीड़ और देवदार के वृक्ष बहुतायत से हैं। जिनके कारण चारों ओर का दृश्य बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता था। स्थान काफी ठण्डा था जलवायु अनुकूल है। १००-२०० घर बने हुए हैं — किन्तु प्रायः सब लकड़ी के। पिस्सु यहां पर बहुत अधिक हैं। मकान सस्ते में ही मिल जाते हैं। अमरनाथ पैदल न जा-सकने वालों के लिये तथा भोजन के सामान ले जाने के-लिये घोड़े प्रायः एक ही दाम पर मिल जाते हैं। अगले रोज वृष्टि आजाने से हमें अगले दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ी। अमरनाथ तक पहुंचने के लिये तीन पड़ाव हैं। तीनों ही लगभग ५ मील के अन्तर पर हैं। उन के नाम हैं:— चन्दनवाड़ी ५, शेषनाग ५, और पंचतरणी। पहिले दिन हमने एक ही पड़ाव किया। ठण्ड के कारण बहुत मुश्किल से रात कटी। अगले रोज जल्दी ही आगे को प्रस्थान किया क्योंकि हमें रोज २ पड़ाव तै करना था। चूंकि इससे प्रथम पड़ाव शेषनाग के बारे में सुन रखा था कि अभी वर्षा हो जाने के कारण २० के लगभग आदमियों को बर्फ ने आ दबाया था। अतः इस पड़ाव को दिन रहते ही हम लोग पंचतरणी जा पहुंचे। यहां से-अमरनाथ ४-६ मील दूरी पर था। अगले दिन सवेर उतार चढ़ावों को पार करते हुए अमरनाथ जा पहुंचे। यहां पर पता चला कि इन दिनों में अमरनाथ आना जाना [illegible] बन्द था।

अमरनाथ क्या है : एक पहाड़ की गुफा है, जिसमें कि प्राकृतिक शिवलिङ्ग बने हुए हैं। लोगों का कहना है कि ये बर्फीले शिवलिंग घटते, बढ़ते रहते हैं। बात कुछ ठीक सी मालूम होती है, क्यों कि ऋतु का परिवर्तन - सूर्य के तापमान का घटना, बढ़ना तथा चन्द्र का वृद्धिगत होना तथा पुनः क्षीण होने का भी प्रभाव इस पर अवश्य होता होगा और इसी कारण से लिङ्ग घटते, बढ़ते भी प्रतीत होते हैं। लोग इन्हें शिव - पार्वती नाम देते हुए तनिक भी नहीं सकुचाते।

अमरनाथ की ऊंचाई १२५०० फीट के लगभग है। हर साल राखी के मौके पर यहां मेला लगता है, जिसमें कि सब प्रकार की जीवनोपयोगी सुविधायें राजा की तरफ से होती हैं। इस तरह लोग हजारों की संख्या में शिव - पार्वती दर्शन से जीवन सफल मानते हैं। कई लोग कहते हैं कि यहां एक कपोत - युगल भी रहता है। हमें तो युगल में से कोई भी नजर नहीं आया - खुदा जाने रहता है या नहीं। गिरि कन्दरा से बर्फ के पिघलने से - स्वच्छ जल की सी एक मोटी धारा बही चली आती है, जिसका झर्र : २ शब्द का चलना - तथा अनेक प्रकार के तालों से निर्मित संगीत दर्शक गणों को अपनी संतुष्टि के साथ संतुष्ट करने का अनवरत यत्न करता रहता है। हमने भी इसके संगीत को सुना और संतुष्टि - लाभ किया। उस गुफा कुछ दूर [illegible] आस पास का तथा पर्वत चोटियों पर जमी हुई बर्फ की - सूर्य - रश्मियों के कारण स्वर्णिम प्रतीत होने वाली चमकीली मनोरमी - सुहावनी शोभा को देखते हुए हम लोग लौट पड़े। अमरनाथ जाते हुए अधिकतम ऊंचाई १३६०० फीट के करीब

मार्ग में आती है। आज जैसे शेषनाग को अपना लक्ष्य बनाया था। तारीखी लोग आपत्तियों को भी मजे की चीज समझते हैं। शेष नाग में चारों ओर पर्वत मालाओं से घिरी हुई एक झील है, जिसमें पार्श्ववर्ती पर्वत शिखरों से कई की पतली 2 अत्यन्त निर्मल अनवरत बहने वाली जल-धा-राये बही चली आती हैं। स्थान बहुत ही सुन्दर तथा शीतल है, चहुं ओर शान्ति तथा निस्तब्धता का राज्य था हां कभी 2 किसी पशु, पक्षी विशेष की चिल्लाहट अवश्य सुनाई पड़ जाती थी। रात अधिक ठण्डी होने से नींद तो अलग, बैठे 2 ही काटनी पड़ी। अगले दिन प्रातः ही आगे प्रस्थान किया। कुछ समय बाद अपने अभीष्ट स्थान पहलगांव में आ पहुंचे। शीघ्र ही लौट आने के कारण - पहलगांव तथा श्रीनगर के मध्यस्थित 2,4 मील दर्शनीय - स्थान जिन्हें जाते हुए छोड़ गये थे, देखने चल पड़े ये स्थान क्रमशः अनन्तनाग, मार्तण्ड (मटन) अछि-बल - (अच्छाबल) थे। स्थान-स्थान वस्तुतः ही दर्शनीय थे। तीनों स्थानों पर पानी के स्रोत हैं। अनन्तनाग के निकट एक छोटा सा कस्बा भी है। जहां पर यात्रियों को सब - सुविधायें प्राप्त हैं। मार्तण्ड ठीक जगह नहीं है। पेड़ तो बहुत ही लगा रखे हैं - एक मन्दिर भी — का बनवाया हुआ है। अच्छाबल में एक स्रोत के किनारे बगीचा भी स्थित है, जिस पर अनेक फव्वारे बने हुए हैं; उसकी कारीगरी देखते ही बन - गई है। 3,4 दिन बाद हम लोग अपने मुकाम पर आर्यसमाज - में लौट आये। एक दिन आराम के बाद हमने Wooler Lake का प्रोग्राम बनाया - यहां जाने के लिये स्थल, जल दोनों से ही मार्ग हैं। मोटर यात्रा से थके होने के कारण हमने जल-से ही यात्रा प्रारम्भ की। दूरी लगभग दोनों ओर से समान है।

जल मार्ग जेहलम के अन्तर्गत है। वहां एक बड़ी किश्ती होती है, जिसे कि "डोंगा" कहते हैं, इस में १५, १६ आदमी अच्छी तरह रह सकते हैं। हम लोगोंने एक डोंगा २ दिन के वास्ते ठहराया, और यात्रा प्रारम्भ की। २ बजे के लगभग हम खीर भवानी का मन्दिर जा पहुंचे, जो कि चारों ओर से पानी से घिरा हुआ है, कहते हैं यह पानी रंग बदलता है किन्तु यह असल ही जान पड़ा चारों ओर का पानी तो पत्तों से सड़ कर रङ्ग का समीप जाते ही मालूम हो गया. शायद उसी तरह रंग बदलता होगा यहां समीप ही एक होटल का प्रबन्ध भी है यहां से ७ मील की दूरी पर मानसबल है यह तथा झरना देखने के काबिल है इन स्थानों को देख कर हम लोग आगे बढ़े। मांझियों के सतत प्रयत्न से हम लोग रात्रि के तीन बजे Woolar Lake में जा पहुंचे। प्रातः ५ बजे के लगभग हमें झील-दर्शनार्थ उठाया गया। उठते ही देखा तो बड़े २ काले २ मच्छरों की सेनाएं दनादन आ-रही हैं। कहां तो झील के सौन्दर्य और मनोहरता के जो लोगों की भारी वर्णन करते २ थकते न थी और कहां इस मच्छर-सेना की आपदा! कुछ देर बाद भगवान सूर्य के दर्शनों के बाद इन मच्छरों ने पीछा छोड़ा और तब कहीं जाकर इस समुद्र सरीखी विस्तृत तथा सुन्दर झील के दर्शन हुए, देख कर चित्त प्रफुल्लित हुआ। लौटते समय मानसबल-झील दर्शनीय है। झील काफी बड़ी है. कहते हैं कि इस की गहराई का किसी को पता नहीं। इसमें कमल का बाहुल्य है और जाते हुए बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ एक बार और यहां आनेवाले फिर कभी भूल नहीं सकते

इच्छा होती है उसी में एक दो वीक का मकान रखकर रह के आजकल उसी दृश्य या तेजों को बैठकर बिताते दिया जाय। यद्यपि हम इस दृश्य को आंखों से ओझल होकर न चाहते हुए भी ओझल करना ही पड़ा मनुष्य की इच्छा ही तो सब कुछ नहीं है। हम लोग इसे देख कर लौट आये। मार्ग में आंधी वर्षा से 'जीप' उलटने को गयी, फिर पर अंधेरी काले बादलों से आवृत्त किरण का आगमन यात्रियों के मन खुश कर दिये देता था। करीब रात के १० बजे होंगे - खैर आदि सभी चीजों का प्रबंध पहिले से ही होने के लिए किसी भी प्रकार जीप को उलटने से तो बचा ही लिया। कुछ देर बाद आंधी, तूफान शांत हुआ चन्द्रमा ने बादलों का पेट चीर कर मुख दर्शन दिया, फिर होटल में पर पहुंचने पर बहुत ही खुशी हुई।

श्रीनगर में पूर्वकालीन मुगल बादशाहों के समय के अनेक प्रकार २ बगीचे विद्यमान हैं, जिनमें निशात बाग सर्वश्रेष्ठ है। जिसे कि जहांगीर ने अपनी प्रियतमा नूरजहां के लिये बनवाया था। इस बाग में अनेक छोटे २ फव्वारे हैं, जो पर्व के अवसर पर छोड़े जाते हैं। इन फव्वारों का पानी 'डल' नामक झील से आता है। जो यहां से ६, 6 मील की दूरी पर है। यहां मोटर से भी जा सकते हैं। प्रति रविवार को अनेक लोग यहां आया करते हैं। बड़े चैन से घूमते हैं। इस बाग में नानाविध फल-फूलों के पेड़ विद्यमान हैं। यहां से ३ मील शालीमार बाग है। यह भी अनेक प्रकार फल वाले पेड़ों से युक्त तथा अनेक फव्वारे युक्त है। इन फव्वारों के निकट स्थान पर रहने वाले लोगों का सुन्दर मकान है।

कहते हैं ये पत्थर खास देहली से मंगाये गये थे।

यहाँ से 'हारवन' नामक झील ३ मील की दूरी पर स्थित है। तीन ओर से पर्वतों से घिरी हुई निर्मल, नीले-हरे जल वाली यह झील है। इसमें सिर्फ नहाना, पैर डालना, हाथ-धोना या अन्य किसी प्रकार से पानी मैला करना जुर्म समझा जाता है, क्योंकि सम्पूर्ण श्रीनगर में पीने का पानी यहीं से जाता है। इस बात का वर्णन करना बहुत ही आवश्यक है, जो कि इसी बाग में है। लोग इसे 'चश्मा-शाही' नाम से बोलते हैं। उपर्लिखित दोनों बागों से यद्यपि यह छोटा है किन्तु शोभा में उनका मुकाबला करता है। यहाँ का पानी बहुत ही शीतल तथा उत्तम है। कल-कलों का बाहुल्य है। फुहारे भी कम नहीं हैं, तात्पर्य यह कि स्थान सब प्रकार से उत्तम तथा रमणीक है।

श्रीनगर में 'डल' झील बहुत विस्तृत तथा उत्तम है। इसकी सब से बड़ी विशेषता इसके 'तैरते बाग' हैं। पानी पर जमीन तैरती है। अनेक छोटे मोटे जमीन के टुकड़े पानी में इधर-उधर तैरते रहते हैं। लोग इन्हें Floating gardens कहते हैं। इसी झील के किनारे एक पर्वत शिखर पर प्राचीन कालीन एक शंकराचार्य का मन्दिर बना हुआ है जो कि झील की सतह से १००० फीट ऊँचा है। इस पर्वत को मुसलमान पवित्र मानते हैं, ये लोग इसे 'तख्ते-सुलेमान' नाम देते हैं। कई हिन्दुओं का कहना
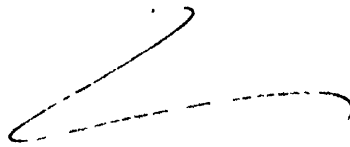
है, एक यह वही स्थान है जहां कि इतिहास प्रसिद्ध शंकरा-
चार्य और मुगल सिक्खों के शासनकाल हुआ था। यह कहां तक
ठीक है, यह तो भगवान ही जाने। अन्दर जाने का मार्ग बहुत
अच्छा बना हुआ है। ऊपर से सारे श्रीनगर का दृश्य बहुत सुन्दर
प्रतीत होता है। इस मन्दिर के चारों ओर [illegible] में बिजली
की बत्तियां लगाई हुई हैं- English में (Flood-lights)
जिससे रात को भी यह बहुत दूर से नजर पड़ जाता है।

श्रीनगर में एक किला भी है, जिसे कि हरी-पर्वत
का किला कहते हैं। इस के अन्दर जाने के लिये Pass लेना
पड़ता है। अन्दर से चारों ओर का दृश्य बहुत ही भला लगता है।

श्रीनगर से २८ मील की दूरी पर 'गुलमर्ग'-
नाम से बहुत प्रसिद्ध तथा सुन्दर जगह है। यह पर्वतों की गोद
में प्याला सा बना हुआ, जिसे कि प्रकृति-प्रिया का मधु-
पान का प्याला की सुन्दरता का तकलन कर जा सकता है।
समुद्र तल से लगभग ७०० फीट की ऊंचाई इसकी कल्पनी-
चाहिये। श्रीनगर से २४ मील अर्थात् टनमर्ग तक मोटर
में जा सकते हैं- इस से अगले ४ मील घोड़े से तथा
रिक्शा जा सकते हैं। चलने में कष्ट जरूर है किन्तु
चलना है भला किस लिये? [illegible] द्वारा आनन्द
पहुंच सकता है। स्थान बहुत ठण्डा तथा स्वास्थ्यप्रद है।
रहने के लिये अनेक लकड़ी-निर्मित मकान रास्ते में ही
मिलने लग जाते हैं। यहां बाजार Post office तथा अन्य भी
कई छोटी मोटी दुकानें हैं। यहां पर अधिकतर अंग्रेज लोगों
की ही बस्ती है। गुलमर्ग के चारों ओर के पहाड़ों की हरियाली
सुन्दर झाड़ियों के झुरमुट तथा पर्वत शिखरों पर चमकती
बर्फ़ की अनेक शृंखलाओं को देखने में विशेष आनन्द आता है।

गुलमर्ग से ३ मील ऊपर खीलनमर्ग नाम का एक पहाड़
है जो यहां से २००० फीट की ऊंचाई पर है। यहां रहता
तो कोई नहीं. हां। गर्मी के दिनों में एकाध Tent
या hut जरूर लगी रहती है जिसमें कोई
अंग्रेज या पार्वतीय परिवार रहता है। October से March
April तक यहां बर्फ जमी रहती है। गुलमर्ग में भी इन
दिनों काफी ढेर बर्फ नजर आती है। यहां विदेशों से
लोग स्किइंग तथा Skating करने आते हैं। गत मार्च में
यहां ३ अंग्रेज तथा एक हिन्दुस्तानी खिलाड़ी ने मार्ग को
इन लोगों आनन्द-विभोर के ग्रेड के ऊपर इन एक स्थानों
पर अच्छी तरह से घूम सके। यहां से ५००-६०० फीट की
ऊंचाई पर अर्थात् गुलमर्ग से २५०० फीट की ऊंचाई पर
एक अलपत्थर नामक झील है। कहते हैं यह कभी नहीं -
पिघलती - वस्तुतः बात बिल्कुल ठीक है। जब पिघलने का
समय आता है, तब यह और भी जम जाती है। क्योंकि
इसके निकट ही काफी ऊंचाई पर अनेक हिम-शिलाएं
हैं जो थोड़ा सा भी ताप अनुभव कर अपनी वेदना से आंसू
बहाना शुरू कर देती हैं। फिर पिघलने का नाम कहां!
गर्मियों में वैसे ही हिम पिघलती रहती है। पानी बहुत ठंडा
है। दृश्य बहुत ही रमणीय तथा आह्लादक है। किन्तु -
खिलनमर्ग से दृश्य बहुत ही रमणीय तथा उससे भी भीषण है।
यहां से देखने के आसमान तक पहाड़ की ओर देखते ही आंखें
मुंह फेर लेती हैं। दृष्टि की गति मन्द पड़ जाती है।
पैरों का सम्पूर्ण जोर केवल ही जाता है। वस्तुतः इसमें
आंख, दृष्टि तथा पैरों का कोई दोष नहीं, किन्तु

एक तो पर्वत का सीधा ढाल जिस पर कोई मार्ग नहीं
और पकड़ने तक को कोई झाड़ी का सहारा भी नहीं।
सचमुच सम्पूर्ण श्रीनगर में इस की चढ़ाई कठिन
तथा विकट है। अगर अपने साहस की परीक्षा के लिये
जाने में कोई दोष नहीं, किन्तु कोई विशेष दर्शनीय
स्थल नहीं है - केवल है तो चढ़ने का मज़ा। हाँ यदि
बर्फ पर खेलने का आनन्द लूटना हो तो और
बात है। हम लोगों ने भी बर्फ पर खेल कर खूब
आनन्द लूटा - वास्तव में बर्फ पर खेलने में तो बड़ा ही
मज़ा आता है। यहाँ से लौट कर लगातार सप्ताह भर
कश्मीर में ही प्रदर्शनी, कुश्ती, matches
आदि देखने में बिताया। [illegible] की चीज़ें
देखने लायक तथा अच्छी थीं। इसके बाद
लौटने का दिन भी आ ही गया।

— श्री आनंद.

किति नयन रम्य ही धारा,

सखया, किति नयन रम्य ही धारा !

येत असे ही गिरि माळांतुनि,

रंग बिरंगी तरु-जाळांतुनि,

वाहतसे ही नेसुनि नाना कुसुम कुळांच्या हारां,

सखया, किति नयन रम्य ही धारा !

हिरवी होउनि वाहत येते,

हिरवा पण मग तटास देते,

पदोपदीं पण उधळित जाते उज्ज्वळ तुषारां,

सखया, किति नयन रम्य ही धारा !

थांब, थांब अग वेडे, क्षण भरें,

सांग, कुठें होतीस अता पारें,

जे देतों जे या नेत्रांतुनि मीं कांही उपहारां,

सखया, किति नयनच्या हो धारा!

२८/८/५६
रविवारी.

कालिदास की शकुन्तला

श्री पं. हरिवंश जी वेदालंकार

कालिदास सौन्दर्योपासक, मार्मिक कवि समझे जाते हैं। इस कवि ने 'शकुन्तला' नाटक में अपनी कला की पराकाष्ठा करदी है। कालिदास की कविता स्वाभाविक, सरल, मधुर और हृदयग्राही होने के अतिरिक्त ऊँचे भावों को प्राप्त कराने वाली है।

कालिदास शृंगारी कवि है। प्रेम का वर्णन करना इसे बहुत पसन्द है; पर साथ ही कवि चंचल प्रेम को पसन्द नहीं करता। वह प्रेम जिसमें कोई मर्यादा न हो — जो प्रेम केवल सौन्दर्याकर्षण के कारण किया गया हो — ऐसा प्रेम कभी सफल नहीं होता। कालिदास वैसे मिलन को आदर की दृष्टि से देखता है जिसमें प्रेमी और प्रणयिनी ~~मिलन को आदर की दृष्टि~~

~~से देखता~~ है दोनों ने अपने को, दीर्घ काल तक संयत रखकर, वासना रूपी मल को विलकुल जला दिया हो। दूसरे प्रकार के प्रेम पर अवश्यमेव दैव का रोष प्रगट होता है और उसका विध्वंस हो जाता है। यही बात कालिदास ने अपनी रचना 'शकुन्तला' और 'कुमार सम्भव' में दिखलाई है। राजा दुष्यन्त, राज्य के विविध कार्यभार से परिक्रान्त होकर शिकार के लिए वन में जाता है और वन में एक हरिण के पीछे अपना रथ दौड़ाता है, उस हरिण का पीछा करते२ वह कण्व मुनि के आश्रम जा पहुँचता है जहां ऋषि कन्यायें अपने लगाये हुए वृक्षों के आलवाल को सींच रही हैं। दुष्यन्त लताओं के पीछे से उन्हें सस्पृह-नेत्रों से देखता है। उसके वाद तीसरे अंक के अन्त में शकुन्तला से उसका विवाह गांधर्व-विधि से होजाता है। सिद्ध हस्त कवि, इस चपलता से किये गये विवाह को देखकर भी मौन है। आश्रम वासियों को भी पीछे से मालूम होजाता है कि शकुन्तला

अपना ब्याह कर चुकी | तपस्वियों ने अपने मन में बुरा भला तो जरूर कहा होगा किन्तु आश्रम के वातावरण में उसके कारण कोई हलचल नहीं मची| सबने यह सोचकर कि 'शकुन्तला' का विवाह एक चक्रवर्ती राजा से हुआ है है' सन्तोष किया|

उसके बाद उस 'असंयत' प्रेम पर दैव की बिजली गिरती है और 'दुर्वासा' के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है | कई दिनों के बाद भी जब शकुन्तला को लेने वाला पतिगृह से कोई नहीं आया तब कण्व मुनि से दो ऋषि कुमार दुष्यन्त के पास भेजे जाते हैं | वहाँ भरे दरबार में ऋषि कुमारों के मुख से मानो कवि ही शकुन्तला को उलाहना देता हुआ कहता है| :-

अत: परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रह: |
अज्ञात हृदयेष्वेवं वैरी भवति सौहृदम् ||

शंकुन्तला अंक ५-२४

"इस कारण प्रीति बहुत परीक्षा करने के बाद जोड़नी चाहिए | क्योंकि बिना स्वभाव पहिचाने की गई प्रीति कालान्तर में

वैर के रूप में परिवर्तित हो जाती है।"

शकुन्तला का यह चपल प्रेम उसे पूरा२ प्रति फल देता है और जबतक तपस्या करते२ वह अपने वासना रूपी मल को धो नहीं देती तब तक उसका पुनर्मिलन दुष्यन्त से नहीं होता। सप्तम अंक में दुष्यन्त जब उसे कुछ दूर से देखता है तब मुश्किल से पहिचानता है।:—

"वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणि:।
अति निष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरह व्रतं बिभर्ति॥"
(शकुन्तला अंक ७-२१)

"क्या वियोगिनी का वेश धारण किये यही प्यारी चली आरही है, जिस का मुख विरह के नियमों ने पीला कर दिया है और मलिन वस्त्र पहिने, जरा कंधे पर डाले मुझ निर्दयी का वियोग सहती है"

उधर दुष्यन्त का भी हाल देखिये। वह भी पश्चाताप के कारण पर्याप्त तपस्या कर चुका है और इतना क्षीण होगया है कि शकुन्तला जब उसे देखती है तब यही करती है कि यह कौन है:—

" न खल्वार्य पुत्र इव । ततः क एष इदानीं कृत-रक्षामंगलकं दारकं मे गात्र संसर्गेण दूषयति "।

" पर क्या मेरा ही प्राण-पति है जो वियोग की आँच से ऐसा कुँम्हला गया है । यदि वह मेरा पति नहीं है तो कौन है जिसने मेरे बालक को गोद मे उठा रक्खा है और स्पर्श द्वारा उसे उसे जाने से बना या हुआ है । "

इतनी लम्बी तपस्या के बाद जब दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम से वासना का मूलोन्मूलन होगया तब जाकर यह प्रेम चरितार्थ हुआ है । प्रेम की पूर्णता यहीं आकर प्रकट हुई है । कालिदास के अनुसार सच्चा प्रेम मनुष्य को मानव रूप में देवता बना देता है पर अन्धा प्रेम मनुष्य को दुख शोक के गहरे गर्त में गिरा देता है ।

अपने 'कुमार सम्भव' मे भी कालीदास ने यही दिख-लाने का प्रयत्न किया है । पुष्पों के अलंकारों से सजी हुई लज्जारुणा उमा गिरीश के चरण वन्दन को जाती है और विनयावनत होकर नमस्कार करती है ।

उसके कानों से पल्लव गिर पड़े हैं और केशों से कर्णिकार कुसुम स्खलित होकर शिव का स्पर्श करते हुए भूमि पर गिरे। उस स्पर्श का अनुभव करके महादेव ~~और~~ - अर्णव के समान शान्त-गम्भीर देवादिदेव - महादेव अपनी आँखें खोल देते हैं और देखते हैं कि यह उत्पात कहां से हुआ है। सब स्थिति को निहार और अपनी इन्द्रियों पर काबू करके वे पुनः समाधिस्थ हो जाते हैं। पार्वती का प्रत्याख्यान होगया और जिस अपने रूप लावण्य पर भरोसा रखकर वह शिव के पास गई थी - उस रूप की निन्दा करती हुई शून्य हृदया होकर अपने पिता के घर लौट आई। उसने देखा कि शिव को मैं अपने रूप के कारण किसी भी प्रकार अपना न बना सकूंगी इसलिए उसने सोचा :-

" इयेष सा कर्तुमवन्ध्य रूपतां समाधिमास्थाय
तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं
प्रेम पतिश्च तादृशः ॥"
- कुमार ५ - २.

" पार्वती ने तपस्या और समाधि द्वारा अपने रूप को सफल बनाने की इच्छा की। क्योंकि इतना उत्कृष्ट पति और उस पति का प्रेम तपस्या के अतिरिक्त अन्य किसी साधन द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता"।

पार्वती ने घोर घाम और शीत में भीषण तपस्या की। एक दिन ब्रह्मचारी के छद्म वेश में शिव उमा की परीक्षा करने आये और तपस्या का कारण पूछा। पार्वती की सखी ने उत्तर दिया :—

" इयं महेन्द्र प्रभृतीनधिश्रियः चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूप हार्यं मदनस्य निग्रहात् पिनाक पाणिं पति-
(कुमार ५.५) माप्त इच्छति ॥"

" यह पार्वती इन्द्र, वरुण कुबेर आदि की और दृष्टि न देकर उस शिव से विवाह करना चाहती है जो 'अरूप हार्यं' है, जिसका प्रेम रूप का प्यासा नहीं है"।

सर्वत्र ही कालीदास ने विवाह को बहुत पवित्र बन्धन, और प्रेम को बहुत ऊँची वस्तु कहा है। कालिदास वर्णाश्रम धर्म के बड़े पक्षपाती थे और उनके इस सम्बन्ध के विचार 'रघुवंश' आदि काव्यों में स्थान२ पर मिलते हैं। कालिदास चरित्र

के बहुत पक्के व्यक्ति थे ऐसा उनके काव्यों को देखने से पूरी तरह विदित होता है।

न मालूम साहित्यज्ञ अब उनके निर्बल चरित्र की कैसे कल्पना कर लेते हैं।

कोयला?

—श्री राजकुमार शर्मा "श्रीकुमार"

(१)

अरे! कोयला हूँ मैं, मुझ में कौन अनल सुलगाने आया?
देकर ताप भयङ्कर दुःसह मुझ को व्यर्थ जलाने आया?
राख और बेकाम बना कर दुनिया में रुलवाने आया?
अरे! कोयला हूँ मैं, मुझ में कौन अनल सुलगाने आया?

× × ×

(२)

अरे ! चाहता हूँ मैं जग में शान्त रहूँ निश्चिन्त रहूँ बस,
मुझे न देखे कोई भी जग, निर्जनता का भार सहूँ बस,
इतने पर भी शांति अहिंसा सत्य मार्ग की कथा कहूँ बस,
अरे ! चाहता हूँ मैं जग में शान्त रहूँ निश्चिन्त रहूँ बस ।

(३)

एक दिवस था, आम्र कुञ्ज में मेरी बढ़ी चढ़ी थी सत्ता,
खोल दृगों को पतित भूमि पर हँसता अपनी देख महत्ता,
यश गौरव के मद से मूर्छित मेरा अंग अंग था नचता,
एक दिवस था, आम्र कुंज में मेरी बढ़ी चढ़ी थी सत्ता ।

(४)

कितने श्रान्त थकित राही थे सुख से सोते पाकर छाया,
कितनों की थी भूख मिटाती दुःख मिटाती मेरी काया,
कितनों ही पिक सदृश जनों ने सुख कर मेरा आश्रय पाया,
कितने श्रान्त थकित राही थे, सुख से सोते पाकर छाया ।

× × ×

(५)

अरे ! एक दिन आँधी आई, था तूफान मचा प्रलयङ्कर !
भय से काँप रहा मैं जड़ था, पट से गिरा हाय पृथ्वी पर !
मैं जागा, मैंने देखा- था चारों ओर अँधेरा दुर्धर !
अरे ! एक दिन आँधी आई, था तूफान मचा प्रलयंकर !

(६)

गर्व और मिथ्याभिमान सब गिर कर चकनाचूर हो गया,
आँखों के आगे भ्रम-तम जो छाया, सहसा दूर हो गया,
जग की परवश दशा देख दिल करुणा से भरपूर हो गया,
गर्व और मिथ्याभिमान सब गिर कर चकनाचूर हो गया !

(७)

मैंने देखा- सारी धरती सीली कुटिया में थी सोती,
और जीर्ण दो ही चिथड़ों में नग्न हुई सी रात भिगोती,
या तो मरी हुई थी वह या मरने की थी साज सँजोती!
मैंने देखा- सारी धरती सीली कुटिया में थी सोती!

× × ×

(८)

अपनी दशा देख कर रोने वालों को मैंने पुचकारा !
अत्याचार उपद्रव में पिस मरने वालों को छुटकारा –
पाने का उपाय बतलाया, बना उन्हीं का अंग सहारा,
अपनी दशा देख कर रोने वालों को मैंने पुचकारा।

(९)

"बन अंगारा आग लगा दो तुम अत्याचारों के घर में।
सर्वनाश की होली की तुम चिल्लाओ जय शहर २ में !
पा जाओ सब सुख सम्पत्ती औ' मनचाहा पल ही भर में,
बन अंगारा आग लगा दो तुम अत्याचारों के घर में !"

(१०)

परोपकार बुद्धि से मैंने अपना तन झुलसा डाला था,
मुर्दे से जग में मैंने फिर नवजीवन अमृत ढाला था,
क्रान्ति युद्ध के लिए समुद्यत किया सभी जग मतवाला था,
परोपकार बुद्धि से मैंने अपना तन झुलसा डाला था !

× × ×

(११)

धधक उठा मैं, भभक पड़ा मैं जग, भारी था विप्लव सा उमड़ा,
लपटें उठ उठ कर झुलसाती थी नभतल का भी तो मुखड़ा !
भस्मसात सब विश्व हो गया, अरे! सभी कुछ ही था बिगड़ा,
धधक उठा मैं, भभक पड़ा जग, भारी था विप्लव सा उमड़ा।

(१२)

पर न हुवा कुछ अरे ज्वाल वह क्षण ही भर में शान्त थी हुई,
गर्मी से पीड़ित मानवता अरे! और भी क्लान्त सी हुई,
शान्त हुवा मैं, बैठ गया बस, अरे! भयंकर भ्रान्ति भी हुई,
सर्वनाश की होली तो वह क्षण ही भर में शान्त थी हुई।

(१३)

हिंसा प्रतिहिंसा से भाई नहीं जगत में कुछ भी होना —
उससे तो अपना बल खोना पीछे से पछताना रोना —
साथ दुखित दुनिया को भी तो दुखसागर में और डुबोना,
हिंसा प्रतिहिंसा से भाई नहीं जगत में कुछ भी होना।

(१४)

जल कर मर कर आखिर मुझमें यथार्थता का ज्ञान समाया,

सब से प्रेम करो दिल खोलो सबकी है समान ही काया,

इतने से ही लक्ष्य पूर्ण सब चाहे छोटा बहुत बड़ा था,

जल कर मर कर आखिर मुझमें यथार्थता का ज्ञान समाया।

(१५)

नहीं चाहता आग लगा कर रिपुओं के दिल खाक करूं मैं –

और दिलों में बनी सरसता पर भी निष्क्रिय राख धरूं मैं,

चाह रहा हूं पत्थर दिल में सत्य अहिंसा सार भरूं मैं

नहीं चाहता आग लगा कर रिपुओं के दिल खाक करूं मैं!

(१६)

रह कर अलग चाहता हूं मैं जग की देखूं ठीक अवस्था,

अपने प्रेमपूर्ण व्यवहारों से कर दूं सब ठीक व्यवस्था,

सब में हो जाए स्वतंत्रता, दूर भाग जाए परवशता

रह कर अलग चाहता हूं मैं जग की देखूं ठीक अवस्था!

(१६)

छोड़ विश्व को सत्य रूप का झण्डा ले कर हूँ मैं निकला,
अरे! प्रेम की एक बात से पत्थर सा भी तो दिल पिघला,
क्या स्वराज्य, क्या मुक्ति, सभी मैं देता हूँ लेकर के दिखला,
छोड़ विश्व को सत्यरूप का झण्डा लेकर हूँ मैं निकला।

(१८)

मैं तो अब हूँ शान्त तपस्वी, नहीं अग्नि की बात करो तुम,
सत्य कथाओं में मेरे मत अरि बन कर व्याघात करो तुम,
चाहूँ, तुम भी बनो मनस्वी और मुझे फिर मात करो तुम,
मैं तो अब हूँ शान्त तपस्वी, नहीं अग्नि की बात करो तुम।

(१९)

शान्त तपस्वी हूँ मैं फिर भी, मुझमें अद्भुत शक्ति भरी है!
बिना मंत्र के मोहक मेरी प्रेम तन्त्रि की स्वर लहरी है!
दूर खड़े भी अरे शत्रु पर मेरी चोट बड़ी गहरी है!
शान्त तपस्वी हूँ मैं फिर भी मुझमें अद्भुत शक्ति भरी है!

× × ×

(२०)

कुछ मेरे कर्तव्य देख कर उलझन मे भी सुलझे होंगे !

कुछ तो मुझको अमर लोक का दिव्यदेव भी समझे होंगे !

पर, मुझमें वे भाव भरे जो नहीं किसी से उलझे होंगे।

कुछ मेरे कर्तव्य देख कर उलझन में भी सुलझे होंगे !

(२१)

वास्तव में मै हूँ कलक वह जिसे अन्य ने नही किया है।

मैं हूँ रात अमावस काली जिसमें जलता नही दिया है !

और हलाहल वह मै हूँ जिसको मैंने ही स्वयं पिया है।

वास्तव मे मैं हूँ कलङ्क वह जिसे अन्य ने नही किया है

x x x

नया जमाना

— श्री पं. शिवकुमार जी वेदालंकार,
स्थानापन्न सम्पादक "हिन्दुस्तान" दैनिक

सतीश एक गैरसरकारी युनीवर्सिटी का ग्रेजुएट था, वह आर्यजगत में उत्पन्न हुआ था। उसके पिता मालदार थे और वे अपने शहर के सब से बड़े आदमी थे। पढ़ाई-लिखाई से फारिग होकर सतीश अपने पिता की इमदाद करने के लिए दुकान पर बैठ गया। एक दिन शाम को उसके विचार आया — "मैंने कॉलेज पास की। B.A. पास करके M.A. बना। लेकिन आखिरकार

एक ही खेत के अंदर एक साथ कई चीजें पैदा होसकती हैं तो क्या मैं अपनी शक्ति के अनुसार अपने पिता का काम न सम्भाल सकूंगा ? यह विचार लेकर सतीश घर आया। पिता जी पलंग पर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे अपने पुत्र को आता देख बोले - "बेटा सतीश! आज बहुत खुश मालूम होते हो क्या बात है ?"

सतीश कुछ गम्भीर होगया। थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोला - "पिता जी! क्या करूँ ? आपने बड़ी 2 आशाओं से मुझे यूनीवर्सिटी में तालीम दिलाई। आप जानते हैं, मैं अपनी जमात में अव्वल रहा करता था। यूनिवर्सिटी से निकलने के बाद मुझे कई मैडल भी मिले। मेरा नाम था। विद्यार्थियों में भी मशहूर था और तमाम प्रोफेसर भी मेरी तारीफ़ किया करते थे। आज मैं कई विचारों पर पहुंच कर दुनिया में आया हूं। ~~मैंने देखा~~ . मैंने देखा - जैसा मैं सोचता था, दुनिया वैसी नहीं है। मैं देखता हूं दुनिया ऐसी है। (खाओ - पीओ - मौज उड़ाओ - यह दुनिया का उसूल है। - "खाओपीओकी प्रथा"

मेरी यही भूख है। मैं चाहता हूं - अगर कुछ पढ़ना लिखना
सकूं और उस आनन्द को प्राप्त करूं, जिससे खुशी होती
है, बेफिक्री होती है और जिसे पाकर मनुष्य दुनिया
की करोड़ों विपत्तियों का सामना करता हुआ वीरान में-
स्वप्न लोक में और काल कोठरी तक में अलमस्ती से
रहता है। उसके ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं। दुनिया की
भयानक से भयानक समस्यायें उसे खेल मालूम होती
हैं। उसके कार्य करने के तरीके में दर्द आजाता है
वह किसी से नीचा होगा, यह ख्याल तो उसके
नज़दीक फटकता नहीं, लेकिन वह अपने आप को
इतना बड़ा भी नहीं मान बैठता कि उसके पैर भी
ज़मीन पर न टिकें। वह कभी आकाश की तरफ़
देखता है तो ज़मीन की तरफ़ भी आँख रखता है।
विद्याव्यसनी होने में कई फ़ायदे हैं - कहाँ तक-
ज़िक्र किया जाए।"

"बेटा! यदि यही इच्छा है तो तुम्हें किस
चीज़ की कमी है, जो चाहो करो। लो पैसा है। अच्छी
से अच्छी पुस्तकों का संग्रह कर लो। अपने घर आलीशान

लाईब्रेरी बना लो। देश-विदेश के दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक जितने भी पत्र हों - उन्हीं को मंगा लो। घर में पढ़ाई लिखाई का वातावरण तैयार कर लो। विद्या बड़ी अच्छी चीज़ है। मैंने तुम्हें पढ़ना पढ़ने के लिये सिखाया था। पेट भरने का उपाय ढूंढने के लिये अथवा ४०, ५० रु. की नौकरी पाने के लिए मैंने तुम्हें नहीं पढ़ाया था। ईश्वर का दिया सब कुछ है। पेट भरने की फिक्र न करो। पढ़ो और लिखो। फुर्सत मिले तो कभी २ मेरे काम में भी हाथ बँटा दिया करो।" पिता जी ने कहा -

"पिता जी ने आज्ञा तो दे दी है लेकिन मेरा शौक कैसे पूरा होगा। मुझे कागज़ रंगने आते हैं और आती है कलम घिसनी। पर पिता जी का काम सम्भालना मेरी हिम्मत से बाहर है। यह तो मेरे से न होगा।" सतीश दिल ही दिल सोचने लगा। थोड़ा सोच कर कहने लगा - "पिताजी! मैं एक साल में ही काम कर सकता हूँ

दो नहीं। पढ़ाई लिखाई का नशा होते हुए मैं व्यवहार कैसे कर सकूंगा। मैं बाहर से आए हुए आगन्तुकों के साथ सभ्यतापूर्वक बातचीत कर सकूंगा, उन से सावधानी बरत सकूंगा। आतिथ्य में भी शिष्टाचार के कोई कोर कसर नहीं छोड़ सकूंगा। बैठक में आगामी को मैं रेडियो खोल दूंगा। ज़रूरत हुई तो ग्रामोफोन भी हाज़िर कर दूंगा। दुनिया भर की राजनैतिक सामाजिक आर्थिक तथा धार्मिक चर्चाएं भी चला सकूंगा। बाज़ार के उतार चढ़ाव की गोष्ठी में उन से कम न रहूंगा लेकिन जब वे मेरे से सौदा करने की बात करेंगे मैं भीगी बिल्ली की तरह दुबक कर एक तरफ़ जा बैठूंगा। मैं नहीं समझ सकूंगा कि लेनदेन कैसे की जाए। आपको मैंने कि अभी तक बताया नहीं और शायद आप ने किसी से सुना भी न होगा कि पिछले महीने आप १५ रोज़ के लिये बाहर गए थे स्टेशन पर चढ़ने की कोशिश करते वक्त आई थी मैंने उन्हें मालगोदाम में धकेल दिया था। लेकिन क मौसम था। आप के एक पेशावर बूढ़े बाबू हेशन

पर आए। मुझ से वे अच्छी तरह मिले जुले। काफ़ी देर तक गुफ़्तगू होती रही। फिर वह मुझ से पूछ बैठे- तुमने अपने चने कहां रखे हुए हैं? मैंने कहा- बोरियों का कोठा है। उनको गोदाम में बन्द है। यह सुन कर वे बोले- तुम्हें इतनी भी समझ नहीं, बोरियों में चने कभी अन्दर रखे जाते हैं, अगर अन्दर रखे २ तो उन में के अंकुर निकल आएंगे। तुम्हारी बोरियां फट जाएंगी। सच जानिये पिता जी! बूढ़े बाप की यह बात सुन कर मेरे होश हवा उड़ गये। हड़बड़ाते हुए मैंने उनसे पूछा- फिर क्या किया जाए। चने कहां रखे जाएं। पर उन्होंने कुछ जवाब तक नहीं दिया और मुझे दुविधा में डाल कर अपने घर चले गए। मैंने अपने पड़ोसी से पूछा- वह भी चुप। हमारा वह गधे वाला- जो काफी समझदार है, पहुंचा। मैंने उससे पूछा। वह भी खिलखिलाता हुआ मुझे धता बता कर चलता बना। मैं परेशान था। स्टेशन पर हमारे माल ढोने वाले के ठेले छोटे २ ढेर बने हुए हैं। मैंने [illegible]

का जिक्र करते या लिखते हैं, उनकी दुनिया भर के
तमाम विश्वकोश ज्ञान करे। ऐसे ही मेरे अनेक-
साथी कार्यालय में उसका आकलन लगाते हुए भी

काफी देर तक उनके दिल में यही
ख्याल उठते रहे।

मिस्टर सेन रही लेकर कमरे अपने
कमरे में गया। उसकी मेज़ पर टेबललैम्प धरा
था। उसे जला कर वह कुर्सी पर बैठ गया।
नई शिक्षाप्रणाली पर लिखी एक किताब पढ़ने लगा।
कुछ देर पढ़ ही था कि उसके दिल में आया-
"मुझे मेरे प्रोफेसरों ने क्या सिखाया है? जब
तालीम भी कोई जिन्दा बाहर की दुनिया के साथ
कोई सरोकार नहीं। प्रोफेसरों को क्या दोषूं?
जो कोर्स निश्चित कर दिया जाता है वे उसी के
अनुसार ही हमें पढ़ाते हैं। सारा कसूर उस
शिक्षापद्धति का है जिसके अनुसार हमें पढ़ाया
जाता है। आजकल हमें किताबी ज्ञान तो ठूंस
दिया जाता है किन्तु उसमें व्यावहारिक ज्ञान की गंध
तक भी नहीं होती। मुझे मालूम थी मेरे पिता
का व्यापार चलता है, अच्छी आमदनी है। लेन देन

वालों की भीड़ की भीड़ जमा रहती है और मुझे यह
भी पता था कि अकेले दिल्ली के इस छोर कोने-
को कैसे ही सम्भालना है। इसलिए विद्यार्थी
जीवन में ही मैं यहीं आकर अपने असली
काम में दिलचस्पी लेता रहता तो मैं यह गलती
न करता, जो अब कर बैठा हूं। मेरे अनेक-
साथियों के असली पढ़ाई। मैं जानता हूं, उनके
संरक्षकों ने उनकी पढ़ाई पर पानी की तरह
पैसा बहा दिया किन्तु ग्रैजुएट पढ़ने के बाद उन्हें
पता चला कि उनकी तालीम अधूरी रही। उन्हें
नब्ज़ पहिचानना आता था, डायग्नोज़ (Diagnose)
करना भी बखूबी आता था, अच्छी से अच्छी
और कौन से पेशावर आराम कर देने वाले
नुस्खे भी उन्हें आते थे लेकिन वे यह नहीं
जानते थे कि जिस बीमार को उनकी दवाई से
आराम हुआ है, उसकी जेब से वह अपनी फीस
व दवाई का खर्च कैसे निकालें।

मेरे बुढ़ापे साथी इतिहास के काफ़ी साथि

रखते थे। अपने समय में उन्होंने कई magazines
भी निकालें। रोज़ाना अखबार पढ़ा करते थे परन्तु
कालेज की पाठविधि में कुछ उनका कोई स्थान था
था उन्हें लोगों के घर भी नहीं बताया कि इतिहास
व सामान्य लाइफ में उन्हें जो ज्ञान है उनकी
सांसारिक जीवन में क्या उपयोगिता है। यदि उन्हें
पता बता दिया गया होता तो वे अपने समय की
देशविदेश की घटनाओं को गौर से देखते और
उनकी स्थायी स्मृति बनाये रखने के लिए उनके
कतरन अपने पास रखते अथवा किसी नोटबुक
में उन्हें नोट कर के रख लेते। यदि उन्हें
पता बता दिया जाता कि अखबारनवीसी
सीखने का सबसे अच्छा शिक्षालय किसी भी
अखबार का दफ्तर है और अखबार ज्ञान व
अध्ययन के साथ अखबार में काम करने से
अत्यधिक आसानी होती। इतिहास से लेकर थोड़े
से सालों में अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान
की बड़ी से बड़ी किताबें पढ़ लीं। अर्थशास्त्र

हो। उन्हें कोई सवाल लिख दीजिए - फ़ौरन हल निकाल देंगे परन्तु अमली दुनिया में अक्सर उनकी गणित एक आढ़ती की गणित से भी गई बीती साबित हुई। आढ़ती जो हिसाब कौड़ियों और पूर्ति में कर लेते हैं उसी हिसाब को काग़ज़ व पेन्सिल लेकर करते २ पन्नों खराब कर देते हैं। ज्योमेट्री और ट्रिगनोमेट्री के लम्बे २ साध्य सिद्ध करने के बाद भी मेरे साथियों को यह अन्दाज़ नहीं होता था कि ज़मीन का कितना टुकड़ा एक एकड़ व एक बीघा होता है फुटरूल और इंचीटेप से नापने के बाद भी उन्हें गज़ फुट आदि का अन्दाज़ नहीं रहता।

साहित्य के धुरन्धर विद्वान होते हुए भी मेरे कुछेक साथी आत्महत्या कर बैठे। साहित्य ने उनके जीवन में कोई रस पैदा नहीं किया। रस के अभाव में उन्हें जीवन भार महसूस होने लगा। साहित्य पढ़ने के शौक़ के बीच

पर कौन असर पड़ता है इस सम्बन्ध में उन्होंने अभी तक कोई परीक्षण नहीं किया होगा, यही वजह है कि उन में आत्मविश्वास कम हो जाता है। वे दुनिया में अपने आप को नाचीज़ समझने की अपनी भूल करके जीवन-संघर्ष से जान छुड़ा लेते हों।

क्या वह भी ज़माना आएगा, जब कि इस शिक्षा-पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन होगा।

झंझा-वात

ब्र. सत्यदेव (राय०) द्वादश श्रेणी

पश्चिम से झंझा आती है

वह दूर क्षितिज में बादल सी

ढक अन्तराल दिङ् सूर्य-प्रखर

"धूली गर्दी" भी साथ लिए

राक्षस सी बढ़ती आती है।

पश्चिम से----

मृदु पुष्पों को भी तोड़ तोड़

पाषाणों से भी मेल जोड़

प्रति वृक्ष लता से कर अभिनय

पत्ते संचित कर लाती है।

पश्चिम से----

है यह कठोर पर हो सकरुणा

किस ~~प्रेमीजन~~ प्रियतम का प्रेमी जग हित

पत्तों के आज बहाने से

संदेशा लेती आती है॥ पश्चिम से----

झंझा अब बढ़ती जाती है,

करके प्रवेश अब नगरों में
दूकानों में औ गलियों में।
जो खुले पड़े कीवाड़ आज
उनको खड़काती जाती है॥

झंझा अब----

जो बनी हुई झोपड़ियाँ हैं
जो खड़े हुए पादप वर हैं।
आकर बलात् वह सब गृह-तरु
यह मस्त गिराती जाती है॥

झंझा अब----

राही बैठा अपने पथ में
थोड़ा चलना इस असमय में
ना जाने आकर कानों में
क्या भेद सुनाती जाती है॥

झंझा अब----

क्यों

लेखक
श्री. पुरुषोत्तम देव जी १४

जीर्ण ज्वर, खांसी और निर्बलता जिस रोग के प्रधान लक्षण हैं; उसी प्राणघातक महा भयंकर 'क्षयरोग' की प्रथमावस्था में डॉक्टरी मतानुसार कॉडलिवर आयल, किनकानेरस, ग्रीमाल् सिरप्, मुर्गी के अण्डों का रस और मदिरा-मिश्रित प्रायः दवाइयाँ पीते रहने पर भी कुछ फायदा न होकर रोग बढ़ता ही चला जाता है; और कष्टसाध्य अथवा असाध्य अवस्था में पहुँच जाने पर जिसके लिए पाश्चात्य चिकित्सक केवल वायु-परिवर्तन का परामर्श देकर "नो मेडिसन" की घोषणा कर देते हैं, उसी के लिए-आयुर्वेदीय मतानुसार महा लक्ष्मी-विलास रस, स्वर्णभूपति रस, वसन्त कुसुमाकर रस, स्वर्णभस्म, मकरध्वज, हिरण्यगर्भ पोटली रस, च्यवन प्राशावलेह, वासावलेह, शीतोपलादि चूर्ण इत्यादि २ उच्च प्रयोगों का सेवन करने से रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कुछ परिवर्तन तो अवश्य हो जाता है। परन्तु कष्टसाध्य अथवा असाध्य अवस्था पर पहुँचे हुए रोगियों पर ये रस और इनसे भी ऊँचे २ रस (दवाइयाँ) कुछ भी काम नहीं करते, और मुश्किल से सैंकड़ा पीछे १० रोगी बचते हैं।

ऐसी अवस्था में जहां पाश्चात्य औ आयुर्वेदीय बड़े २ चिकित्सकों की अमोघ दवाइयाँ बेकार साबित होती हैं, वहां अति परिश्रम एवं अल्प मूल्यवान बूटियाँ अद्भुत काम करती हैं। आजकल जनता के हितार्थ ऐसी ही 'क्षयरोग' से बचाने वाली एक अद्भुत और महान गुणकारी दिव्य बन औषधी का वर्णन "विश्व" के पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं।

'केले' के वृक्ष भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में प्रबलता से होते हैं, इसलिए इसकी पहिचान औ वृक्ष के सम्बन्ध में लिखना व्यर्थ है। इसी केले के सम्बन्ध में कई आयुर्वेदीय ग्रन्थों के लेखक मुरादाबादनिवासी आयुर्वेदोद्धारक लाला शालिग्राम जी वैश्य अपने "शालिग्राम निघंटु भूषण" में लिखते हैं कि -: 'केला शीतल, भारी, कफप्रद, शोषघ्न, अम्ल-पित्तहर, वात, पित्त औ मेद का नाश करने वाला है।' केले के वृक्ष का रस क्षय-रोग को नाश करने में अद्वितीय गुणकारी है।

आयुर्वेदीय महोपाध्याय शंकरदाजी शास्त्री पदे इसके लिए लिखते हैं कि "केले का रस क्षय, अतीसार, फेफड़ों में रक्त का जमाव, दमा, खांसी, अम्लपित्त, पाण्डु, कामला, प्लीहा, प्रसूतिरोग, मूत्रकृच्छ, मूत्रदाह आदि रोगों में विशेष रूप से गुणकारी है औ रामबाण के समान फायदा करता है।"

ले. सच्चिदानन्द जी ११

सुख और दुःख मन की कल्पना का विषय है। जब हमको किसी कार्य को करने से आराम व हृदय से प्रसन्नता प्रकट होती है, अथवा किसी वस्तु की प्राप्ति खोज करके अथवा बिना खोजे प्राप्त हो जाती है तब मन की इच्छा पूर्ण हो जाती है क्योंकि मन को अपने काम लायक भोग मिल जाता है जिसको भोगते हुए वह रात और दिन तल्लीन रहता है। इसी को दूसरे शब्दों में हम सुख नाम से पुकारते हैं। और इस से ठीक विपरीत जब यह अवस्था प्राप्त नहीं होती या प्राप्त होकर समाप्त हो जाती है तब उसी को हम दुःख नाम से पुकारने लगते हैं। हमारा आत्मा सदा एक रस रहता है। उसे इन बातों से कोई भी मतलब नहीं।

संसार में सामान्यतः देखने से कोई सुखी नज़र नहीं आता। उसका कारण यह है कि अभी तक सर्वसाधारण मनुष्यों के मनों की इच्छा ही नहीं पूर्ति होने में आती है। और इसी तरह से हम अक्सर दुःखी रहते हैं और इस संसार ~~संस~~ सागर से चीखते-चिल्लाते हुए अपने इस शरीर का अन्त कर देते हैं। तो इस तरह से यह नतीजा निकला कि मनुष्य का पैदा होते ही यह धर्म है कि वह सुख और दुःख के स्वरूप को जाने

और इसके आधार उस पर विचार करें। विचार करके अपनी आत्मा से निर्णय पूछे कि इसमें मेरा कौन सा सही विचार है या कौन सा गलत है। अभी ऊपर कहा जा चुका है कि आत्मा स्वच्छ रस है। इसलिए अपनी आत्मा से पूछने पर जो उत्तर हमको मिलेगा वह बिलकुल सही होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि हम इस आत्मा के प्रत्युत्तर के अनुसार अपने जीवन की घड़ियों की अड़चनों को चलायेंगे तो निःसन्देह हम भी सुख और दुःख के झगड़े को पार करके आत्मा की तरह स्वच्छ रस बन सकते हैं और अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

आफल
आर्यसमाज

- श्री 'अशोक'

हां यह दिवस एक पुण्य दिवस है। वर्षों बीते- दीपावली की रात थी जब कि अगणित दीपक मां दीप-मालिका का स्वागत करने के लिये अपने ज्योतित मुख से उसकी बाट जोह रहे थे। ठीक उसी वक्त- एक दीपक - जिस के अन्दर से एक ज्योतिपुंज निकल कर मानव समाज के मानसिक प्रदेश के गाढ़ अन्धकार को कितने वर्षों से मिटा रहा था, जिस के प्रकाश में अनेकों पथ भ्रान्त पथिकों ने जीवन और जागृति का सच्चा सन्देश पाया था, जिस से वे वास्तविक सरल मार्ग पर अग्रसर होने में समर्थ हो सके। हां, वही दीपक - महर्षि दयानन्द - आर्यसमाज

का प्राण - पुरातन आर्य संस्कृति का एक आदर्श नमूना - करोड़ों भारतवासियों को बलिदान का एक अमर सन्देश सुनाता हुआ धीरे २ दीपावली के उस कृत्रिम प्रकाश के ऊपर की ओर बढ़ा जा रहा था। उस यात्रा में कितनी लगन थी - चेहरे पर कितनी शान्ति थी - और वह आत्मा ऊपर २ चली जा रही थी। जिस व्यक्ति ने वह दृश्य देखा - उसका जीवन सफल हो गया। खैर - महर्षि चले गये, हमें और भी अधिक वेग से अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए, हृदय में आशा और उत्साह की ज्योति जगा कर। ऋषि की चिता धू धू कर जल रही थी और उस में बैठी एक दिव्य आत्मा मानव समाज को आशीर्वाद दे रही थी। कुछ ही घण्टों में वहाँ सिवाय राख और नीरवता के कुछ भी शेष न रह गया। लोगों ने अपनी चाँदी की डिबियों में वह राख भर ली, कुलवधुओं ने उस राख को माथे पर लगाया - फिर उसी राख से पैदा हुए अमरशहीद लेखराम और पण्डित गुरुदत्त

जिन्होंने आर्यसमाज के क्षेत्र में हलचल मचा दी। सोयी हुई आर्यजाति में फिर जीवन धारा बहने लगी। दूसरे लोगों ने चौंक कर देखा - पर दीपक बुझ चुका था। फिर वही शान्ति, फिर वही नीरवता। दिन पर दिन, वर्ष पर वर्ष बीतते गए। दीपावलियां आईं और चली गईं, कितनी रंगरेलियां मनाई गईं, कितने राज सजाये गए - किन्तु हम कितने कदम आगे बढ़ पाये यह सोर लिये अब तक भी एक समस्या बना हुआ है। आर्यसमाज - पुरातन आर्य संस्कृति का प्रतीक, संसार के सम्पूर्ण उच्च आदर्शों का एकसार, देवताओं की अमूल्य निधि - उसके लिए यह विषम समस्या बना रहे, यह बात उसके अस्तित्व तथा जीवन के लिये खतरनाक सिद्ध हो सकती है। जब कि संसार उन्नति की दौड़ धूप में क्षण प्रतिक्षण आगे और आगे बढ़ता चला जा रहा है - तब अपने समाज की यह उदासी तथा किंकर्तव्यविमूढ़ता - एक अखरने वाली बात है। इसीलिये आवश्यक है कि हम इस विषय पर आज विचार करें। जब कोई

जाति अपनी त्रुटियां, कमियां, सफलता अथवा असफलता आदि विषयों पर विचार करने लगती है तभी उसके जीवन में क्रान्ति आती है और उस लहर में धुल जाते हैं वे दोष और मलिनतायें जो जाति की जड़ को उस वसन्त घुन की तरह काट २ कर खा रहे होते हैं।

हां, तो आर्यसमाज प्रतीक है उस वैदिक पुरातन धर्म का - जिसकी नींव स्वयं भगवान ने डाली था - जिसकी जड़ को स्वयं देवताओं ने सींच २ कर हरा भरा किया था - आज वही समाज रूपी वृक्ष दूसरे धर्मवृक्षों के मुकाबले में कितना निर्जीव सा, ठूंठ सा खड़ा है - यह देख कर भावुक हृदय व्यथित हो उठता है। आर्यसमाज के आदर्श गौरीशंकर की उस धवल पुनीत चोटी के समान हैं जिन को पूर्णतया अंगीकार करना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है और यह सत्य है कि जो उन आदर्शों तथा सिद्धान्तों पर चल पड़ता है वह एकदिन मनुष्यकोटि से भिन्न हो जाता है। संसार के धर्मों में उतनी उत्कृष्टता ही नहीं जो इसके साधारण सिद्धान्तों में

पायी जाती है। लेकिन कितने मनुष्य ऐसे हैं जो इस पथ पर अग्रसर हो सके हैं? तो भी समाज का काम चल रहा है उसी ज्ञान से - न मालूम बिना प्राणों तथा आत्मा का यह शरीर कितने समय तक चलता जायगा। यदि यही बात रही तो निश्चय है कि एक न एक दिन सत्य का प्रकाश अवश्य होगा। समाज का बिना आत्मा का यह पुतला मुश्किल हो जायगा और तब असली सत्य को खोज निकालना हमेशा के लिये बहुत मुश्किल हो जायगा। इसलिए जरूरी है कि हम इस समस्या पर जो आदि के अनुकरण का विषय है अभी से विचार करें।

किसी धर्म के अनुयायियों की संख्या का बढ़ना आसान है क्योंकि जनता "गतानुगतिका" होती है जिस ओर बहुत से लोग चल पड़ते हैं वह भी उसी ओर आंखें बन्द कर चल पड़ती है। इसीलिए ही बाद के धर्मों की, संस्कृतियों की विमला गंगाधारा में दुर्गुणों की कालिमा भी मिलि

बहुत सी कठिनताएँ, रुकावटें, बाधाएं तथा द्वेष आजाते हैं क्योंकि आरंभ करके पीछे चल पड़ने वाली जनता धर्म के वास्तविक उद्देश्य, कर्म तथा सन्देश को ठीकतरह अनुसरण ही नहीं कर पाती और वास्तविक कार्य से चूक जाती है. इसीलिये ही उस धर्म का शीघ्र अवसान होजाता है - दुनिया के नक्शे से उसका नामोनिशान मिट जाता है - यह कोई काल्पनिक बात नहीं है - दुनिया के इतिहास में हमें ऐसे बहुत से धर्मों के नाम दिखाई देते हैं जिनका आज इतिहास के उन पुराने पन्नों के अलावा कोई अस्तित्व भी नहीं रहा। किन्तु वास्तविक धर्म वह है, जो सैकड़ों पीढ़ियों से गुजर होकर भी उसी शुद्धता और पवित्रता के साथ दुनिया को नज़र आये, असलियत उसी की है जिसके अनुयायी संसार की अनेकों कठिनाइयों, विपत्तियों तथा आपदाओं से आक्रान्त होते हुए भी अपने धर्म के प्रति एकताबद्ध सच्ची निष्ठा रख के अपनी आत्मिक-शक्ति से उसका मुकाबिला करें और इसके बाद

उनके ऊपर विजय प्राप्त कर सफलता का झण्डा फहराते हुए गर्व तथा शान से अपने धर्म को उनके स्थान से एक कदम आगे ला स्थापित कर देवें। यह है किसी धर्म के जीवन का चिह्न। सृष्टि के प्रारम्भ से उत्पन्न हुआ यह वैदिक धर्म इतने वर्षों तक जीवित रहा - बड़ी से बड़ी शक्ति भी इसे नहीं मिटा सकी। हमारे आर्य भाई इन्हीं बातों को सोच कर बहुत आह्लादित होते हैं, लेकिन आर्यधर्म भी यह निश्चित हमारे गौरव का चिह्न है या नहीं यह विचारणीय विषय है। मेरे ख्याल में यह तो उन महात्माओं के आत्म बलिदान का परिणाम है जिन्होंने अपने जीवन रूपी दीपक को हमारे लिये बलिदान कर दिया था। परन्तु आजकल आर्यसमाज कितनी गहराई में है? पिछले दिनों दक्षिण भारत में आर्यसमाज ने हैदराबाद सरीखी एक कुटिल रियासत में जहाँ अन्याय, अत्याचार तथा दमन का ज़ोर था - सत्याग्रह किया। सत्याग्रह चला - खूब चला। वीरों ने हंसते २ आपत्तियों का मुकाबिला किया। उन पर कोड़े बरसाये गये-

बैतों के प्रहार किये गये, लेकिन वीरों ने "उफ्"
तक नहीं की। संसार ने आश्चर्यचकित आँखों से
देखा - आर्यसमाजियों के उत्साह और साहस से देश-
विदेश गूंज उठा। परिणामतः आर्यसमाज सफल
हुआ है। लोगों ने यहां आर्यसमाज की सफलता के
त्यागी और उसके संस्थापक स्वामी दयानन्द की
आत्मा जागरूक रही है। लेकिन पक्षपात, फूट,
पद, हठ, दीवानों और देखिये उस पुनीत संस्था
के इतने कितनी सफलता प्राप्त की है तो पुनः उन्हें
आपको निराश होना पड़ेगा। आर्यसमाज जहाँ था
वहीं है - न एक कदम आगे न एक कदम पीछे। इसके
शहीदों का खून भी व्यर्थ चला गया। इसी से ही
पता लगता है कि आर्यसमाज के अन्दर कुछ जान
ही नहीं रही। आज भी यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें
तो पता लगेगा कि आर्यसमाज के अन्दर कहीं फूट,
कहीं झगड़े - कहीं पार्टीपाती और कोरपाती का
भेदभाव - जिन से भारत का भूत इतिहास कलंकित
हो चुका है। हम रोते हैं आर्यसमाज के नाम पर-

आर्यसमाज के आदर्श कितने ऊँचे हैं, लेकिन कितने लोग हैं जो उनमें से किसी एक का भी पालन करते हैं? कितने घर हैं जिनको हवन-सामग्री भी सुगन्ध सुवासित कर रही है? कितने लोग हैं जो धर्म और जाति में विश्वास रखते हैं? तो मेरे ख्याल में आपको निराश होना पड़ेगा। मेरा विचार है कि यदि यही हालत रही तो एकदिन उन महात्माओं के बलिदान का प्रभाव खतम होते ही इस पावन धर्म का विनाश हो जायेगा। आवश्यकता है चेतने की - ज़रूरत है सावधान होने की। स्वामी जी महाराज ने "सत्यार्थ प्रकाश" में लिखा है कि "स्वतन्त्रता मानवजीवन के लिये वरदान है" ठीक बात है स्वतंत्र भारत में हम जो कार्य कर सकते हैं वह परतन्त्र अवस्था में असम्भव है। इसीलिए हमारा यह कर्तव्य है कि

हम सत्य और अहिंसा का मूलमंत्र लेकर इस रणक्षेत्र में कूद पड़ें — विजयलक्ष्मी हमारी प्रतीक्षा में है। भारत स्वतन्त्र होगा और अवश्य होगा। उस दिन हम आर्यधर्म की ध्वजा लेकर "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के अनुसार सम्पूर्ण संसार में वैदिक धर्म का सन्देश गुंजा देंगे और तब बच्चे 2 के मुंह से यही शब्द निकलेंगे — "आर्यसमाज जिन्दाबाद —"

घटना—

— श्री आनन्द.

एक दिवस मैं एक बन्धु के
संग, टहलने की इच्छा से
चला जा रहा था गंगा की
बड़ी नहर के लक्ष्मणगढ़ ।
आमों की मौसम थी; चारों-
तरफ़ जिधर को भी देखो तुम
पके हुए, उन पीले पीले
आमों से भरपूर लदे वे
दीखा करते पेड़ मनोरम ।
गुच्छे के गुच्छे आमों के
पेड़ों पर थे ऐसे लटके
मानों हों अंगूर लटकते ।
हरे-भरे, कोयल से कूजित

उन ऊँचे ऊँचे वृक्षों पर
कई हरे, कुछ पीले पीले
तथा, कई आधे पीले ही
लगे आम के गुच्छों की
लुभा रहे थे इन आँखों को।
इस प्रकार से भरे हुए थे
अगणित चिक नल्लभ फल उस दिन।
पर हम को अधिकार नहीं था,
हाय, एक भी फल छूने का।
ये ही तो थे पेड़ अरे वे
जिनको हम कहते थे- ये सब
हैं हम ही गुरुकुल वालों के
और कहा करते थे, हैं ये
अपनी ही हद में, है इन पर
पूर्णतया प्रभुत्व हमारा।
क्या अचरज की बात, जब तलक
न था एक भी आम पेड़ पर,
बने रहे ये वस्तु हमारी;
लेकिन अब जब दिन आये हैं

इन आमों का पूरा पूरा
लाभ उठाने के तब जाते
क्या है हाय, हो गया इनको
पके आम तो दूर रहे, उस
कच्ची अमी तक को छूना
हो जाता अपराध हमारा!
अपने ऐसे अद्भुत वैभव
को निहार किस जन के दिलमें
टीस नहीं उठती होगी हा!
नहीं समझ पड़ता था हमको
क्यों ये गुरुकुल के अधिकारी
ठीक आम की मौसम में ही
देते हैं ठेके पर इनको।
इसी तरह कुछ दर्द तथा कुछ
लालच भरी निगाहें लेकर
चले जा रहे थे हम दोनों
मूक भाव से अपने पथ पर।
चलते चलते हम पहुँचे फिर
रास्ते पर ही खड़े हुए, पर

मीठे मीठे पके पकाये
बड़े बड़े आमों से विलसित,
एक आम के तरु के नीचे।

सन्मुख एक पुआल का छप्पर
छाये बनी हुई थी कुटिया।
जिसके आगे बिछी हुई दो
चारपाइयां थी बिलकुल ही
खाली, जिसके पास एक थी
खड़ी हुई छोटी सी बच्ची।

हम ज्यों ही पहुंचे उस तरु के
नीचे, अकस्मात् ऊपर से
टपक पड़े दो आम मनोहर।
एक बार तो आया मेरे
मन में, आम उठा लेवें हम।
किसका क्या बिगड़ा जाता है
यों दो आम उठा लेने से?
अभी अभी ताज़े टपके हैं
इनकी ओर ध्यान भी किसी-
औरों का नहीं गया है अब।
यों ही पड़े पड़े फिर बासी
हो जावेंगे फिर लाभ भला क्या?

क्यों न उन्हें हम छीन लेवें?
पर जाने क्यों अपना साहस
एक विलक्षण सा मद मुझमें।
मेरा साहस नहीं हो सका-
उन आमों को छूने का भी।
पर मेरा साथी पक्का था।

उनके देखो, उन बच्चों का
ध्यान नहीं था उन आमों पर।
जाने किन भावों में उलझी
दौड़ रही थी नव परिकल्पना
आसमान की ओर एकटक।
मैं तो चला गया था उनसे
आगे कुछ दो चार कदम पर;
लेकिन वह लौटा पीछे को
कुछ बटोर कर साहस दिल में
झपट लिये दो आम तुरत ही
तथा छिपा कर उन्हें जेब में
मुझे बुलाया उसने तत्क्षण
और कहा - "चल लौट चलें हम"
मैं लौटा, उसने पकड़ाया
एक आम चुपके से मुझको

मैंने ले तो लिया उसका वह
पर लेने का साहस मुझमें
नहीं होता था बिलकुल भी।
मेरे साथी ने समझा था।
शायद वे अपने मन में, मैं तो
राजी कर लेगा, कोई
नहीं देख पाया है मुझको।"
पर उस बेचारे को क्या था
ज्ञात कि कोई जन उसकी छिप
देख रहा था वे लीलाएँ।
हम दोनों लौटे ही थे, तब
उनके वे पीछे ही आयी
एक दर्द से भरी हुई सी-
घुटती सी आवाज़ उसी क्षण-
"क्या ही अच्छा किया, तुमने
उठा लिये जो आम हमारे!
चार भई, इतने लोगों के
लड़के होकर भी तुम ऐसे
आम चुराते हो, लज्जा भी
नहीं तनिक है तुमको आती।"
मैंने पीछे मुड़कर देखा,
कुटिया के अन्दर, कुछ हलके

अन्धकार में एक गरीबन,
उस छोटी बच्ची की अम्मा,
बैठी बाल संवार रही थी।
सचमुच उसकी आँखें उस क्षण
उस छप्पर की छाया में थे
रोती रागिनी सी लेकर
चमक रही थीं - मानों कोई
अंगार ही बैठा हो अन्दर!
मैंने देखा, भोली भाली
वह बच्ची भी ध्यान तोड़कर,
देख रही थी हम दोनों को।

मेरे दिल में आया, किंतु
हा, अनर्थ कर डाला हमने।
हम दोनों की अपनी निर्धन
मला के ज्ञान से पहचाना
जाने दोनों, न जाने उनके
मन में क्या कुछ आया होगा।

जैसे उसको हुआ अचम्भा,
या कुछ हुई घृणा सी मन में,
उस प्रकार के नीच कृत्य को
लख कर, उस बाला के दिल में
या फिर क्रोध, समाया होगा।

मैंने कहा बन्धु से अपने,
भाया ये गरीब के फल हैं
इन्हें फेंक दो वहीं; जहाँ से
लाये हो तुम व्यर्थ उठाकर।
क्या तुम को भोजन में अपने
नहीं आम मिलते, जो बरबस
उस दुखिया का हृदय दुखाते।

मैंने तो सोचा न आम वह
दे आना उस माली को ही।
उनके कहा, 'बन्धु यदि यों ही
कदम कदम पर पाप पुण्य की
तुम को रही भीति, तो जग में
है मुश्किल गुजर तुम्हारा।

मैंने सब चुपचाप सुन लिया
दिया न उनको कुछ भी उत्तर
सचमुच मेरे मन के भीतर
उपजा एक बड़ा भारी डर,
क्योंकि सुना था जाने किससे
बेचारे कंगालजनों के -
तप्त हृदय से बाहिर निकले
होते हैं अभिशाप भयंकर !

- श्री सूर्यकुमार.

एक काला भ्रमर, जिसके पंखों में चंचलता थी।
उड़ा -

बागों के एक कोने में विकसित होता हुआ
कमल का एक फूल -
भ्रमर ने उसका
रस चूस लिया,
आगे बढ़ा, दूसरे
फूल का रस
पी लिया -
बढ़ता ही गया - एक
के बाद एक - लेकिन
उसकी प्यास
न बुझी।

—श्री देवेन्द्रकुमार दुग्गड़.

जेठ का महीना था और दोपहर का समय। एक विशालकाय हृष्ट-पुष्ट नवयुवक एक ऊँचे फुर्तीले घोड़े पर सवार होकर एक सघन मार्ग में चला जा रहा था उस नवयुवक के सिर पर पगड़ी थी और देह पर पूरी पोशाक। बाईं ओर एक मज़बूत ढाल लटकी थी और दाईं तरफ़ चमचमाती म्यान में पड़ी तलवार। उस जवान पर दृढ़ विश्वास और आँखों में तेज था। मूँछों में

ऐंठन थी और था आत्मसम्मान और चेहरे पर ओज की
उज्ज्वलता झलक रही थी, उसके लगाम पकड़ने में एक-
शान थी और एड़ लगाने में निश्चिन्तता। दाएँ हाथ में
भाला पकड़े हुए ऊँचे नीचे रेतों से भरे स्थान २ पर
भयंकर टीलों के एक प्रदेश में तपते सूरज के नीचे
घोड़े को होशियारी से चलाता हुआ वह सवार चला
जाता था। स्थान एकदम निर्जन और निर्जल था। सूरज
की प्यासी किरणें प्यास बुझाने को अपने हृदयों में
पानी ढूंढती फिरती थी लेकिन वह सवार अपनी उसी
अविचल गति से घोड़े को प्यार से एड़ देता हुआ
चला जाता था। कहीं से पीछे आते कहीं वह ठिठककर-
सोचता और फिर एक ओर को चल देता। शायद मार्ग
उसका और कोई देखा न था। वह पर्वतीय मार्ग बहुत
दुर्गम था - एक स्थान पर सवार को साफ दूर तक दीखना
बन्द होगया। आगे सघन जंगल था। सैंकड़ों विजातीय
वृक्ष एक दूसरे को लिपटे जाते थे। दो कदम से
अधिक मार्ग दिखाई न देता था - वृक्षों के इतने सघन
सम्मिलन में से सूर्य बार २ झांकने की कोशिश करके

अभी तक अधिक सफल नहीं हुआ था। उस स्थान पर भरी दोपहरी में शेर और जंगली जानवरों की गर्ज, वीरों के भी हृदय दहलाने के लिए पर्याप्त थी। लेकिन उस सवार के आने पर शिकार मार्ग की अपेक्षा के और कोई भाव न था। एक तरफ रास्ता देख कर सवार ने घोड़ा उस पर कर दिया और अपना खड़ा भाला नीचा कर लिया। आध घंटे बाद वन की सघनता कम हुई और एक स्थान पर मैदान नज़र आया। उसकी लम्बाई करीब ६० गज़ और चौड़ाई करीब ४० रही होगी। सवार आगे चलना ही चाहता था कि सहसा जंगल में से चारों तरफ से चार तत्काल सिपाही उस मैदान में निकल आये। घोड़ा शायद पहले ही पैरों की आवाज सुन कर गति को तेज़ करना चाहता था लेकिन सवार ने उन्हें देखते ही भाला संभाल कर घोड़े की रास कस दी। जिस शुभ पल को सवार तलाश रहा था उसी की प्राप्ति के लिये इस कला-कौशल में चतुर ये चार आदमी - अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित हो - उसकी घात में कहीं छिपे बैठे थे

अला फूल से लौट रही थी । विजय की अलंकार लहर के अन्दर अलंकार बनकर नाचने लगी । इतनी देर थोड़ा भी दम लिये आनन्दित नेत्रों से इस निज आत्मिक कार्य को देख रहा था । स्वामी की विजय के अवसर पर उनके कान खड़े कर के उत्साहपूर्वक हिनहिनाता था । यही कदाचित् ठीक एक वर्ष बाद मेवाड़ का महाराणा प्रतापसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा ।

उदयसिंह का ज़माना और था, अकबर का ज़माना और है । तब किसी की विजय उसके धर्म की विजय समझी जाती थी अब उसके देश की समझी जाती है । महाराणा प्रताप बचपन से ही अपने धर्म और कर्तव्य को समझता था और इसलिए उसके काल में कोई भी आत्मिक-शासनसम्बन्धी त्रुटि नहीं दिखाई देती । उसकी राज्यव्यवस्था अत्यन्त न्यायपूर्ण और अत्यन्त दृढ़ थी लेकिन जो चीज़ उसे अपने वंश से तथा अपने माता पिता से मिली थी वह थी उसकी शूरवीरता और आत्मसम्मान की भावना । कई बड़े इतिहासकारों ने भी प्रताप के

फिर महाराणा उदयसिंह को, एक अपना प्रान्तीय औ विलासी
व्यक्ति साबित करने में कोई कसर उठा नहीं रखी
लेकिन ये बातें सत्य से कोसों दूर थीं। मेवाड़ के
लोकगीत औ भाटचारणलोगों द्वारा सर्वत्र प्रमाण थी

उपरोक्त बातों से मालूम पड़ ही जाता है
कि उदयसिंह भारत की परिस्थिति जानते थे। उन
परिस्थिति में अपने को सुरक्षित रखना, आसान
नहीं बल्कि, असम्भव था। मेवाड़ राजपूताना के बीर
जिनकी नसों में अपने पूर्वजों का रक्त प्रवाहित
था वे भी उदयसिंह के बड़े थे, इससे भी प्रमाण
है कि अपने पहाड़ की आड़ अड़ा कर मुगलसेनाओं
के छक्के छुड़ाये पहाड़ पत्थर और वन की भौगोलिक
की प्रबल शक्ति और अपने स्थान से हट न सकी

इतिहास से मालूम पड़ता है कि उदयसिंह
लगभग तमाम जीवन कठिनाईयों औ बाधाओं का सामना
करने में ही बीत गया औ ऐसे अवसरों पर उन की
विचक्षणता, साहस औ आत्म विश्वास ने साथ दिया औ

अन्त तक वह अपने प्रण को निभाता रहा।

राजनैतिक दृष्टि से शायद इस अध्याय महत्व न मिले किन्तु फिर देखने से ऐसा लगता है कि प्रताप के सारे जीवन भर अपने आप वैयक्तिक रूप से मुगलों से युद्ध किया और अपने स्वाभिमान के निमित्त हुआ। राजनीति में उसका बड़ा महत्व है, उसने देश की उस आत्मा को जीवित रखा जो कि आज तक जीवित जागते हैं जिनके कारण स्थान २ पर भारतीय वीर स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहे हैं। उसने अपने कार्यों द्वारा एक ऐसा उदाहरण उपस्थित कर दिया जो भारत भूमि पर अनंतकाल तक हिन्दुस्तान में नया जीवन भरती रहेगी। क्या उसका राजनैतिक महत्व कम है? मैं समझता हूं कि वह उसका राजनीति में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है उसका एक युग आजकल की तरह ओवेकरी का न था और न उसका

की अधर्मपूर्ण कूटनीति का आश्रय उन दिनों के लोग पसन्द करते थे अतएव महात्मा निर्विकल्प आप ही अपने रास्ते पर चलते गये और उन्होंने पाखंड की राह अपनी ईमानदारी से उन बाधाओं और आपत्तियों को सहा। फलस्वरूप आजकल की राजनीति के प्रमुख राजपूतवीरों के लिये तथा आजकल के स्वतन्त्रवीरों के लिए उन्होंने एक अपना एक ज्वलन्त उदाहरण पेश किया।

ऐसे महात्मा के पुजारी तथा भारतीय संस्कृति के प्रेमी के नाते हम भी आज उन्हें अपनी श्रद्धा-ञ्जलि अर्पित करते हैं %.

%. नोट:- यह लेख "प्राणनाथजयन्ती" के समारोह पर पढ़ा गया था।

मरणासन्न

— श्री सूर्यकुमार "श्रीवास्तव"

आज सारा विश्व मिलकर, कर रहा उपहास मेरा।

देख कुञ्ज के फूल हँसते

जो कि थे अनुकूल हँसते

और सब कुछ शूल हँसते

हँस रही उल्लास जगती, पर लुटा मधुमास मेरा।

(२)

हाय, मेरे पैर डगमग,

हो गया प्रतिकूल अगजग

भूल कर मग हो निराश्रित

आज बंधन में पड़ा रहा

शुष्क अधरों से निकलता गीत बन उच्छ्वास मेरा।

(३).

वह जलद की वायु का स्वर,

चल पड़ा कुछ सांत्वना भर

पल्लवों की गोद से पर

ओस के आंसू गये झर

सांत्वना के अश्रु बन कर है निकलता हास मेरा।

(४).

क्या कहूं अपनी कहानी,

होरही अविरुद्ध वाणी,

ढल रही पीले कपोलों पर

आंखों की मद निशानी-

आंख का पानी स्वयं ही कह रहा इतिहास मेरा।

आज सारा विश्व मिल कर कर रहा उपहास मेरा।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

— श्री "आलापुरी"

आज भारत की भाषाओं के एकीकरण का प्रश्न साहित्यिक समाज में अधिक महत्व का विषय हो रहा है, प्रत्येक देश की उन्नति और अवनति का कारण मुख्यतः साहित्य है, जब किसी राष्ट्र या जाति का समूलोन्मूलन किया जाता है तब सर्वप्रथम उसके साहित्य पर कुठाराघात या वज्रपात किया जाता है। संसार इस बात की शिक्षा दे रहा है कि जिस देश या जाति का इतिहास उन्नत होता है वह जाति या देश संसार में अपना मस्तिष्क ऊँचा है, परन्तु जिसका साहित्य लुप्त या लुप्तप्राय दूसरे राष्ट्रों में अधोगति को प्राप्त होने लगता है वह देश या जाति संसार के मान चित्र पर नामशेष रह जाति है! सहस्रों जातियां हुई परन्तु आज उनका साहित्य उपलब्ध नहीं, अतः उनका नाम-मात्र भी आज संसार के साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी कारण आज समस्त भारतीय विद्वन्मण्डल इस के लिए भगीरथ प्रयत्नशील है कि समस्त देश की एक भाषा

हो, जो की राष्ट्रभाषा मानी जाय। 'अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग', या 'तीन कनौजी तेरह चूल्हे', की कहावत के अनुसार प्रत्येक प्रान्त की भिन्न भिन्न भाषा होना राष्ट्रियता की दृष्टि से उचित नहीं। इस के लिए अनेकों प्रान्तीय तथा अप्रान्तीय विद्वान् इसी निर्णय पर पहुंच सके हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिए। यदि इस पर विचार विनिमय किया जाता है तो ज्ञात होता है कि हिन्दी का हिन्दुस्तान के साथ निकटतम सम्बन्ध है, जिस जाति के नाम से यह भारत-वसुन्धरा सम्बोधित की जाती है, जो जाति इस मण्डित मही को अलङ्कृत करती आई है उसके साहित्य पर दृष्टिपात करने से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है। सर्वप्रथम भारतीय साहित्य का बीज वेद है, इसलिए आदि-भाषा वेद-भाषा ही-तदनन्तर देव-भाषा उसके स्थान पर राष्ट्रभाषा हुई, यह संस्कृत-भाषा सामान्यतः बोलचाल की भाषा के रूप में व्यवहार में आई; जब क्रमशः संस्कृतज्ञों का ह्रास होने लगा, तब कुछ अपभ्रंश तथा संस्कृत संमिश्रित भाषा प्राकृत के रूप में राष्ट्र-भाषा होकर व्यवहृत हुई। इस के कई भेद हुए महाराष्ट्री, शूरसेनी, मागधी, आदि ये सब भाषायें संस्कृत-प्राय अपभ्रंशात्मक रूप में राष्ट्रभाषा रहीं।

इन्हीं ~~भाषाओं~~ भाषाओं से क्रमशः ह्रास होते होते महाराष्ट्री से मराठी, शूरसेनी से हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की कई अन्य भाषाएं प्रचलित हुईं, जो कि प्रान्तभेद; स्थानभेद के कारण भिन्न भिन्न प्रान्तों की भाषाएं हुईं, परन्तु इन में प्राधान्य सर्वदा हिन्दी भाषा का ही रहा है।

साहित्य इस बात की साक्षी दे रहा है, हिन्दी के प्रारम्भिक जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर अन्य साहित्यिक मर्मज्ञों ने तथा कवि पुंगवों ने जिस शैली का, जिस रीति का, तथा जिस ... का अनुसरण किया है, वह सर्वदा संस्कृत-प्रधान ही रही है। इस भाषा के प्रारम्भिक जीवन में पद्यात्मक साहित्य का ही प्राधान्य रहा है, जो भी पुस्तकें आज उपलब्ध होती हैं वह प्रायः पद्यात्मक ही हैं, यद्यपि इसका झुकाव कुछ समय ब्रज भाषा की ओर ही रहा है, महाकवि सूर तुलसी, बिहारी, पद्माकर आदि की कविताएं ब्रजभाषा प्रधान हैं, परन्तु उस समय भी उनमें किसी अन्य भाषान्तर शब्दों का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता, संस्कृत-सरणी का सदा ही अनुसरण किया है, यह साहित्य यवन- साम्राज्य के मध्यकाल तक भारतीय साहित्य रहा,

इस के पश्चात मिश्रित (खिचड़ी) भाषा का प्रादुर्भाव हुआ, यह-
फौजी भाषा समझी जाती थी, कुछ भाषा पद्धति से अनभिज्ञ लोग
इस का प्रयोग करते थे। धीरे धीरे यवन-काल में इसका सं-
बन्ध अरबी और फारसी भाषा से करदिया गया। तब से इ-
स मिश्रित भाषा का झुकाव अरबी और फारसी की ओर
झुका, परन्तु यह मिश्रित भाषा कभी राष्ट्रभाषा के रूप में व्यव-
हृत नहीं हुई. इस लिए आज भी राष्ट्र-भाषा का मनोनीत पद
इसे प्राप्त न हो सका। इसी प्रकार अन्य भाषाओं पर दृष्टिपात
करने से ज्ञात होता है कि वह संस्कृत प्राय ही हैं। बंगला
~~महाराष्ट्र~~ मराठी, गुजराती आदिओं को ~~निवासियों के लिए~~ साहित्य
८०, ९०, प्रतिशत संस्कृत ही है। बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि के
निवासियों के लिए अब यदि कोई भाषा अनायास या स्वल्प
अभ्यास-साध्य हो सकती है तो वह संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही हो
सकती है जो उनके मन-मन्दिरों में अत्यन्त सत्कार से
स्थान प्राप्त कर सकती है। बिहार और यू. पी. में तो सर्व-
दा संस्कृत-प्राय हिन्दी ही व्यवहार में आती है रही है। इसी
ने इनके बुद्धि-वैभव की और मन मन्दिरों की पुष्टि किया है।

इस प्रकार भारतीय भाषा के एकीकरण में जब हिंदी को ही यह पद मनोनीत-पद अर्पित किया जाता है, तब उसके प्रारम्भिक जीवन और यौवन पर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होती है। जब इसका प्रारम्भिक जीवन संस्कृत निष्ठ रहा है तब अन्य भाषान्तरों का इसके साथ समन्वय कैसे किया जा सकता है। इस को हमें खिचड़ी (मिश्रित) भाषा बनाने का यत्न नहीं करना चाहिये। इस प्रश्न के उठाने की आवश्यकता किसी प्रकार युक्त भी प्रतीत नहीं होती। भारतीय प्रान्तीय भाषाओं का अवलोकन करने से संस्कृत ही संस्कृत सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है। किसी भी प्रान्तीय भाषा में आंगल आदि भाषाओं का समावेश प्राधान्यतः समुपलब्ध नहीं होता। इस प्रकार आंगलभाषा या मिश्रित भाषा इस में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखती। तत्सम और तद्भव शब्द अन्य भाषान्तरों में उपलब्ध होते हैं। उन का आदि कारण भी विवेचनात्मक विचार करने से संस्कृत ही ज्ञात होता है। इस प्रकार सर्वथा संस्कृत भाषा हिंदी के साथ समन्वित रही है। प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का अवलोकन करने से, जन समुदाय में व्यवहृत भाषा के अनुसार तथा क्रमागत सम्बन्ध के कारण हिंदी का समन्वय

संस्कृत के साथ होता है। आधुनिक प्रगतिशील साहित्य की ओर भी दृष्टिपात करने से यही ज्ञात होता है कि भाषान्तरों से उसका समन्वय न केवल उसके अधःपतन का कारण होगा अपितु हानिकारक होने का भी कारण हो सकता है। हिंदी का प्राकृतिक सौन्दर्य भाषान्तरों के साथ सम्बद्ध होने पर कृत्रिमता का रूप धारण कर लेगा। उसको विवादास्पद या विचारणीय विषय भी रहने देना सर्वथा हानिकारक है। यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाय कि किसी प्रकार आंग्ल भाषा या मिश्रित भाषा को उसके साथ सम्बद्ध किया जाय तो प्रथम उसके परिणाम का भी निरीक्षण करना भी अपेक्षित होगा। यद्यपि कुछ भाषान्तरों के शब्द इतने व्यवहृत हो गये हैं कि उनके स्थान पर शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रयत्न साध्य है परन्तु सामान्यतः उसका परिणाम हानिकारक ही होगा। उसके लिए गुड़िया मण्डल अथवा बिहार में भी एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था कि बिहार प्रान्त में मिश्रित (उर्दू) भाषा ही राजकीय कार्यों में व्यवहृत हो, उसका परिणाम विदित ही है वह न केवल हिन्दू जाति के लिए हानिकारक हुई भी अपितु यवनों के लिए भी हानिकारक है।

हुई थी अपितु यवनों के लिए भी हानिकारक ही रही, सामा-न्यतः जनता मिश्रित भाषा या आंग्ल भाषा नहीं समझ सक-ती। किन्तु संस्कृत के शब्द प्रत्येक भाषा में इतने व्यवहृत होते हैं कि किसी भी प्रान्तीय की तथा साधारण जनता को किसी-प्रकार का कष्ट अनुभव नहीं होगा। अतः जहां पर राष्ट्रभाषा का पद हिन्दी को दिया जा रहा है वहां उसका संस्कृतनिष्ठ होना अत्यावश्यक है, जिस भाव को कहने में संस्कृत शब्द समर्थ हैं उस के लिए भाषान्तर के शब्दों का प्रयोग आवश्यक तथा - अनौचित्यपूर्ण है। जो भाषान्तरों के शब्द प्रयोग में अत्यधिक आते हैं उनके स्थान पर संस्कृत शब्दान्तरों का प्रयोग भी अन्वेषणीय है। आशा है विद्वद्वृन्द इसके लिए प्रयत्नशील होगा।

तुर्की में भयंकर भूकम्प

गत २७ दिसम्बर की रात को २ बजे से ५ बजे तक तुर्की के अनातोलिया प्रदेश में भंयकर भूकम्प हुआ, जिससे अनेक शहर और गाँव नष्ट हो गये। केवल टोकट हलके में ९६३ आदमी मरे और ४४३ घायल हुए। यातायात के साधन छिन्न-भिन्न हो गये। एक एरजिंजन जिले में ४२ हज़ार आदमी हताहत हुए। सरकारी वेधशाला के अनुमान के अनुसार २५००० से आदमी हताहत हुए हैं, जिनमें मरे हुए आदमी ही ज़्यादा हैं। हा-हाकार मचा हुआ है।

श्री बटुकेश्वर दत्त ।

विश्व क्रान्ति के लिए समुद्धत, पागल औ' उन्मत्त !

— श्रीकृष्ण

भारत

-श्री मेधाव्रत क. वि. ज्वालापुर

आदमी किसी मनुष्य की शक्तियां बन्द कर सकता है, उस की जबान बन्द कर सकता है, उसकी सुविधाए बन्द कर सकता है. परन्तु उसके विचार तथा उस के धार्मिक कार्य तथा उस की मानसिक इच्छांए और घर के कार्य बन्द नही कर सकता। अस्तु !

आज हमारे भाई भूखे क्यो मर रहे है? हमारे भाई कोई उन्नति क्यो नही कर रहे? हमारे भाई पढे लिखे क्यो नही है? हमारे भाई छोटी उमर में ही क्यो मर जाते हैं? इसका कारण क्या तुम बता सकते हो, उसका कारण वह है जिस पर आज [illegible] तोला जा रहा है। क्या तुम यह समझते हो कि, हिसाब लगाने से यह मालूम पड़ा है कि भारत मे औसतन प्रतिमिनिट एक गाय मारी जाती है। क्या तुम यह समझते हो कि विदेश मे भारतीय कुली कहाते है? क्या तुम यह समझते हो कि भारत के सिवाय कोई भी ऐसा देश नही जो पूर्ण तया पराधीन हो यदि तुम समझते हो तो उपाय स्वय सोच सकते हो,

. . . .

यदि तुम नही सोच सकते तो लो मै दीखलाए देता हूँ।
सब से बड़ी बात तो यह है कि
महात्मा गाधी अकेले है और देश उन के साथ नही
है। और आश्चर्यजनक तो यह बात है कि लोग गान्धी
जी को एक सत्य निष्ठ आदमी मानते है। उस की पूजा
करते है, उनकी नीति का आदर करते हैं परन्तु इस
नीति को सर्वोत्कृष्ट नही मानते. क्या कारण है? यह
तो हम मानते ही है कि गाधी जी जो कुछ करते है, हमारे
लाभ के लिए करते है। जब हम इस बात को स्वीकार
करते है तो हमे उनका अनुयायी होना चाहिए।

(॰) आप क्या नही जानते कि
भारत मे प्रतिमास ५५ रु लाख की वस्तुए बाहर की आती
है। यदि आज हम विदेशी वस्तु का बाईकाट कर दे तो
बिनापवाद के ही १ वर्ष मे केवल विदेशी वस्तुओ से
६६० लाख रु नकद भारतीयो के पेट मे ही रहे।
क्या यह करने के लिए तुम तैयार नही हो यदि हो तो
आज से ही शुरु कर दो।

(3) क्या तुम्हें पता है कि भारत में कितने मतमतान्तर फैले हुए हैं. और आपस में ही लड़कर मर रहे हैं। यह क्यों हो रहा है? ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के भी अब तो आठ आठ दस दस भेद हो गए हैं। जब हम अपने भाईयों को ही अपने से दूर भगाते हैं तो यह कल्पना स्वप्न में भी नहीं करनी चाहिए कि भारत स्वतंत्र हो जायगा। इसलिए यदि भारत कि स्वतंत्र होने की इच्छा है तो अपने भाईयों को गले लगाओ। जब हम परतन्त्र रहते हुए भी आपस में इस तरह दुश्मनों से व्यवहार करते हैं तो स्वतन्त्र होने पर तो आप समझ सकते हैं क्या होगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि सब मिल कर एक हो जाओ तो फिर स्वतन्त्रता तो पीछे भागेगी।

अन्त में चौथा कारण जो कि असाधारण लोग ही करते हैं, वह है बलिदान। जिस का नाम सुनते ही आदमी 4 कदम अपने वचन से पीछे हट जाता है। बलिदान का घूंट पीओ जो घूंट

. . . .

श्रद्धानन्द लाजपतराय तथा भगतसिंह ने किया है। एक फूट से काम नहीं बनेगा, प्यास बहुत बढ़ चुकी है लाखों प्यास पीओगे तो प्यास बुझेगी।

तब जाकर भारत का हृदय आनन्दित होगा। भारत-भूमि हो चुकी है फिर भी है तो माता ही। आयु से नहीं बल्कि दुःख से, यदि आज इसका दुःख हर जाय तो फिर वह जवान हो जायेगी उसकी कलि-खिल जायगी। वह कली कैसे खिलेगी एक ही उपाय बड़े बड़े। बस जब भगवान ने लड़के को जन्म दिया तो लड़का लेने के लिए उसका पेट चीरना ही पड़ेगा। बस अन्त में उस पिता से प्रार्थना है कि वह हमें ऐसी शक्ति दे जिस से हम उन सारे उपायों को अच्छी तरह समझें और समाज का कार्य करें। और स्वतन्त्रता के झूले में झूलते हुए अपने जन्म जीवन रूपी नाटक को समाप्त करें।

बाजीगर

— श्री "विराज"

आ गया पुराना बाजीगर,
दो हाथ लिये बन्दर वाले, कन्धों पर दो झोली वाले,
वृद्ध होठों पर मृदु वेणु धरे नभ में फैला हम मतवाले,
धनवान और कंगाल सभी जिनसे न कभी कोई डरता,
डमरू की "डम डम" ध्वनि करता, बच्चों के मन के भाव भरता,
फिर वही खेल नया करने आया पुराना बाजीगर।
आया पुराना बाजीगर।

× ×

बच्चे गलियों से लपक पड़े सुनकर उसका आह्वान प्रथम,
जम गई भीड़ तो पल में ही सुनकर वंशीवादन प्रथम,
पाठशाला से दौड़े आए बच्चे न कभी पढ़ने वाले,
रुकते जाते हैं सभी राहों राही आने जाने वाले,
सब उत्सुकता से देख रहे हैं खड़ा शान से बाजीगर
अपना पुराना बाजीगर।

× ×

डमरू बजने लग गया मधुर लग गए नचने दो बन्दर,
डण्डे के मृदु संकेतों पर वे करते नर्तन अति सुन्दर
बज रही बांसुरी साथ साथ होरहे हुए, सब मतवाला
बन्दर के भाव प्रदर्शन पर पुलकित होते शिशुओं के मन
दिखलाने सबको खेल लगा फिर वही पुराना बाज़ीगर।

आ गया पुराना बाज़ीगर।

× ×

लो छा कोहरा गई और अब बन्दर और मनोरमा
अपने भावी एकाकीपन की उसके लिए झुलाता
यह खेल सुपरिचित बच्चों का उनको लाकर उत्सुक
उत्साह अंकित आनन्दित मुस्काते हैं बच्चों के साथ
लो लगा । देखके खेल वही बच्चों का प्यारा बाजीगर
आगत, पुलक, बाजीगर ।

× ×

लो खेल बदलता है बोले बन्दर अपनी सधुरबल वाला

वह पतली सी धोती बांधे सिर पर धर टोपी लाल वाला

वह डमरू की डमडम ध्वनि पर देता पैरों की ताल वाला

उत्सुक शिशुओं के आनन पर फैलाता कुतूहल वाला

है मधुर स्वरों के बजा रहा बंशी वह नाग बाजीगर।

आया बूढ़ा बाजीगर।

× ×

अब खेल खतम, दोस्तो! बन्दर झुक कर करते नमस्कार
बाज़ीगर पैसे मांग रहा है कपड़े की झोली पसार
पैसे न पड़े देने उनको, यह सोच बहुत से चले गए
दो चार इकन्नी देकर ही कुछ निर्धन भी चले गए
औ' दीन दृगों से उन सब को है देख रहा अब बाज़ीगर
आहत प्राण बाज़ीगर।

× ×

धर्म का वर्तमान स्वरूप

– श्री वीरेन्द्र जी द्वितीय वर्ष.

हमारा देश भिन्न २ सम्प्रदायों, जातियों, भाषाओं, और रीतिरिवाजों के कारण एक महाद्वीप कहा जाता है। यह संज्ञा भारत के व्यापक प्रसार को स्पष्टतया प्रकट करती है, इससे भारत के गौरव का भी प्रतिपादन होता है, पर इतनी अधिक विभिन्नता गौरव का कारण होने के साथ २ हमारी मातृभूमि के ह्रास का कारण भी बनी है। यहां के भिन्न २ सम्प्रदाय एवं जातियों ने भारत को एक राष्ट्र-सूत्र में ग्रथित होने में सदैव व्याघात उपस्थित किया है और उनकी जितनी भी राष्ट्रीय या सामाजिक प्रगतियां थी उनका उद्देश राष्ट्र-निर्माण न होकर, एकमात्र धर्म को ही प्रत्येक प्राणी में मूर्तिमन्त कर देना था। इसीलिए हमारा भारतवर्ष चिरकाल से अपने प्रत्येक कार्य में धर्म को ही प्रधानता देता आया है और स्वभावतः हिन्दुस्तान के उन्नति पथ पर उठाए गए प्रथमतम चरण में भी धर्म की ही सर्वोपरि सत्ता सदा नज़र आती है। भारत ने अपनी राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति उपेक्षा दिखाकर धर्म को ही राष्ट्र के सामाजिक जीवन में उच्चासन पर प्रतिष्ठित करते हुवे अपनी धार्मिक प्रवृति का प्रारम्भ काल से ही परिचय दिया है, यहां पर कोई भी कार्य धर्म से अधिक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण नहीं समझा गया।

अतः धर्म को सदैव सुरक्षितावस्था मे ही रखने की कोशिश की जाती रही है। हमने धर्म की आवश्यकता को राष्ट्रीयता के आवरण मे छिपाने का कभी भी प्रयत्न नहीं किया, फलतः हमें इस अपरिवर्तनशील प्रवृत्ति के कारण बहुत से भयानक नुकसान भी उठाने पड़े हैं, इतने पर भी यहां की मुख्यतम राजकीय बलवती शक्ति धर्म ही बना रहा।

धार्मिक विभिन्नता के, जीवन के हरेक क्षेत्र मे जबर्दस्त प्रभाव होने के कारण, यहां कभी भी समूचे राष्ट्र को एक संगठित सूत्र में मे पिरोहकर रखने की कल्पना तक भी नहीं की गई, कोशिश करना तो दूर रहा। और यदि अकस्मात् कभी ऐसी प्रवृत्ति ने जनता के विचारो मे जोर भी पकड़ा तब भी उसमें धार्मिक अड़चने पैदा होने के भय से उस प्रवृत्ति को सार्वजनिक रूप में प्रोत्साहन न मिल सका। अतः इस प्रकार की तदबीरें अधूरी ही रह गई। इन उपायो को सफलता न मिलने के कारण भारत कभी भी एक संयुक्त राष्ट्र बनकर नहीं रहा, वह सदा से छोटी २ States, सम्प्रदाय, Sects, मतमतान्तर, एवं अन्य विविध धार्मिक समूहों में विभक्त रहा है। इस कारण भारत का संकलित इतिहास भी प्राप्त नहीं होसका है। क्योंकि भिन्न २ जातियों, शासकों, राजाओं, और अनेक धर्मों के कारण किसी भी देश का 'सिलसिलेवार' सम्मिलित इतिहास तैयार करना अतीव दुष्कर है परिणामतः एक राष्ट्र की हैसियत से भारत का इतिहास बिल्कुल उपलब्ध नहीं होता। मध्य युग के प्राप्त इतिहास में भी सत्यासत्य का

निर्णय करते हुये ऐतिहासिक बहुत सावधान एवं सतर्क रहने की आवश्यकता अनुभव होती है। इसप्रकार उपर्युक्त दृष्टि से जो हमें हानी हुई है, पर आज भी भारत की देर से चली आती हुई पराधीनता में भी उसी प्रवृत्ति के ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हममें अब तक भी राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है। इसमें सबसे बड़ा कारण धर्म भी है। यहां के मुख्य धार्मिक प्रतिद्वन्द्वी हिन्दु और मुसलमान हैं, ये दोनों सम्प्रदाय कभी एक दूसरे से मिल नहीं सके, इन दोनो में एक दूसरे के प्रति धार्मिक असहिष्णुता के भाव अत्युग्र विषैले रूप में विद्यमान रहे हैं और इन भावों के कारण ही वे एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं। इसप्रकार की भावना शिक्षित क्षेत्र में अधिक खूब व्यापक असर रखती है, यद्यपि ज्ञान विज्ञान और सभ्यता के विकासकारी प्रभावों से दूर बसे हुवे ग्रामों में हिन्दु-मुसलमान सगे भाई की तरह ही जीवन के दुखमय समयों में एक दूसरे के सगे-संगी जाती हैं। परन्तु देश की सम्पूर्ण शक्ति शिक्षित वर्ग के हाथ में होने से, केवल ग्रामो की हिन्दु-मुसलिम एकता; भारत की गम्भीर राजनीतिक उलझनों से उत्पन्न भारी पराधीनता की समस्या को सुलझा नहीं सकती। इधर शिक्षित वर्ग में साम्प्रदायिक एकता न होने कारण यह भी है कि कुछ कट्टरपन्थी मौलाना, मोमिन और पुरोहित व पण्डे, मस्जिद और मन्दिर के नाम पर एक ही खाक के पुतले राम और रहीम की खोज में भटकते हुवे हिन्दु और मुसलमानों को एक दूसरे का खून बहा देने के लिए वेद के मन्त्रों और कुरान की आयतों का दिलासा देकर धर्म के वास्तविक स्वरूप को दुनिया से मिटा देना चाहते हैं। इसप्रकार की संकीर्ण धार्मिक विभिन्नता के आधार पर ही उनके जीवन की सफलता अवलम्बित है। क्योंकि यदि उनके इशारों के विरुद्ध चलते हुवे यदि हिन्दु-मुसलमान आपस में मिल जाते हैं तब तो उनके सारे जीवन की

खून पसीने की कमाई - वह leadership छूंटी खोंथी धरी रह जायगी। क्योंकि अब लच्छेदार लेक्चर, जोरदार अपील, तथा भड़कीले भाषणों का समय गुजर चुका है जागृति का सन्देश भारत की गरीब झोंपड़ियों तक में पहुंच गया है, नूतन चेतना उद्बुद्ध हो चुकी है, अब तो जन साधारण के चैतन्य को उन्नति की दिशा में क्रियात्मक रूप से प्रेरणा देने का समय है और इस कार्य के लिए उत्कट त्याग, तपस्या, अध्यवसाय एवं बलिदान की आवश्यकता है जिसका कि हमारे साम्प्रदायिक नेताओं में सर्वथा अभाव है। जो वाम मार्ग का आश्रय लेकर, श्रेय को छोड़ प्रेय की सिद्धि के लिए सम्पूर्ण देश में प्रतिक्रिया वादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करके देश की स्वाधीनता के पथ में बाधाएं उपस्थित कर रहे हैं, उनकी अनुदार सीधा दृष्टि सर्वदा धार्मिक निर्भरों पर ही जाकर ठहरती है, और इस अपनी स्वासियत के बूते पर ही समाज में ऐसे कुलांगार व्यक्तियों की स्थिति बहुत ऊंची है। धर्म के नाम पर, भौतिक की आड़ में, अपनी भौतिक उन्नति करने के फन में ऐसे लोग बड़े उस्ताद हैं, राष्ट्रीय उन्नति के प्रत्येक कार्य में उन्हें शैतान खतरे में नजर आता है, इस प्रकार के व्यक्ति एक दो नहीं परन्तु असंख्य हैं, जो धर्म के रक्षक होने के नाते सच्चे समाजसेवी, नीति निष्ठ एवं परोपकारी होने का मिथ्याभिमान कर रहे हैं जिनकी बढ़ती हुई संख्या, और भावी जनित प्रभाव समाज के लिए बड़ा घातक साबित हो रहा है। ब्रिटिश शासकों की "Divide and rule" की नीति खूब फल फूल रही है। देश की आजादी समीप

होने के बजाय, दूर और दूर होती जारही है। जब तक हिन्दु-मुसलमान दोनों मिल कर एक साथ अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए मिश्रित प्रयत्न नहीं करेंगे, तब तक भारत की स्वतन्त्रता केवल मिथ्या कल्पना ही रहेगी। पर इस प्रयत्न में सबसे बड़ी बाधा आज का धार्मिक विकृत रूप है। यहां के सभी धार्मिक सम्प्रदाय आपस में किसी न किसी मसले पर जिसका आधार विशुद्ध मजहबी होता है, आए दिन लड़ा करते हैं, रोज़ ही समाचार-पत्रों के कालम के कालम साम्प्रदायिक झगड़ों की सूचना से रंगे रहते हैं जोकि हमारी सामाजिक कमज़ोरी के काफ़ी पुष्ट प्रमाण हैं। धर्म के नाम पर दिन दहाड़े किसी व्यक्ति की जान लेलेना रोज़ की चीज़ बन चुकी है जिससे धार्मिक बलिवेदी पर होने वाले बलिदानों की संख्या दिनों दिन वृद्धि पर है, और जो हमारी निन्दनीय कुत्सित असहिष्णुता की द्योतक है। आज धर्म का जो विकृत, भयावह स्वरूप हमें दृष्टिगोचर होरहा है उसे देखकर कोई भी विवेकी पुरुष उस धर्म जैसी पवित्र वस्तु को किसी भी रूप में स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं होसकता, वह धर्म ही क्या जिससे विरोध बढ़ता हो! जिसमें मनुष्यत्व की संरक्षा करते हुवे सार्वजनिक उन्नति के लिए पथ अवरुद्ध होगया हो। सहन-शीलता, सहृदयता एवं विश्वबन्धुत्व के लिए पूर्ण अवकाश न हो, तथा दया, करुणा, प्रेम, एवं सार्वभूत मैत्री के भाव की जानबूझकर उपेक्षा करदी गई हो, फिर भला ऐसे धर्म की सत्ता को स्वीकार करने से अधिक और कौनसा गुरुतर अपराध होसकता है! ऐसा करने पर मानवता की हत्या ही होगी और कुछ नहीं। इस समय आवश्यकता धर्म को परिवर्तित करने की नहीं; परन्तु जरूरत है अपने दृष्टिकोण और मानसिक प्रवृत्तियों के विचार करने के मार्ग को बदलने की। तभी हम किसी नए धर्म की कल्पना कर सकेंगे जब हमारा यह विचार परिपक्व होजावेगा कि धर्म किसी व्यक्ति विशेष की पूंजी नहीं, इस पर किसी सम्प्रदाय विशेष का अधिकार नहीं, परन्तु जिससे सबको समान रूप से अपना व्यक्तित्व स्वच्छन्दता पूर्वक विकसित करने के लिए लाभदायक वातावरण उपलब्ध होता है।

परन्तु आज तो जमाना ही उलट गया है, आजकल तो निष्ठुर बन्धनों को ही धर्म के नाम से पुकारा जाता है, जिसमें परस्पर खुला विचार विनिमय करने तथा एक दूसरे के उत्तम अंश से लाभ उठाने को भी सन्देह भरी दृष्टि से देखा जाता है। इस समय देश के सर्वाङ्गीण विकास के लिए सबसे आवश्यक बात यही है कि सब विविध धर्मावलम्बियों में एकता का प्रसार, प्रत्येक धर्म के प्रति सहिष्णुता के भाव, और सम्मान के साथ व्यवहार किया जावे। इसी नीति के आधार पर कार्य करते हुये हम एक राष्ट्रीय-सूत्र में बद्ध होसकेंगे। और यही समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस धार्मिकता के ऐक्य पर ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का दारमदार है जिससे हमारी स्वाधीनता, स्वतंत्रता, सुधार और सफलता को बल प्राप्त होगा। * * *

धर्म को पारस्परिक वैमनस्य का साधन न बनाकर, अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर्जातीय बन्धुत्व को वृद्धिंगत करने में ही सम्पूर्ण शक्ति के साथ प्रयोग करना चाहिए धर्म का उद्देश्य मानव समाज को अविचल प्रेम-सूत्र में पिरोहना है, न कि अनमोल मुक्ताओं को एकदूसरे से अलग कर दूर बखेर देना। यदि इसी दृष्टिकोण को सदा समक्ष रखते हुये हम धर्म को स्वाभाविक वस्तु मान कर मानव कल्याण के लिए प्रयत्न करेंगे तो निःसन्देह संसार की सकल सभ्यताओं का वृद्ध पितामह भारत, अपने उज्वल अतीत के लिए दुःखित होकर दो अश्रु बहाने की आवश्यकता अनुभव न करेगा। भारत का समुन्नत अतीत, वर्तमान में भी तद्रूप होकर सुन्दर भविष्य के लिए दृष्टि दे सकेगा।

शिक्षा

– श्री कुं. अर्जुन सप्तम श्रेणी
गु.कु. कमालिया

जो मनुष्य के मानसिक-आत्मिक विचारों को बदल देवें अथवा बदलने की प्रवृत्ति रखें उसको शिक्षा कहते हैं। ये विचार दो तरह के होते हैं- प्रथम तो मनुष्य को अच्छे मार्ग पर लाने के लिए प्रेरित करते हैं और दूसरे मनुष्य के पतन के कारण बनते हैं। किसी स्कूल या किसी कॉलिज की डिग्री पा लेना वास्तविक शिक्षा नहीं है। शिक्षा के साथ मनुष्य में शिष्टाचार भी होना चाहिए। आमतौर पर लोग इसी को देखते हैं। मनुष्य के विचारों को सुनकर के उसके चरित्र का अनुमान कर सकते हैं। किसी देश, जाति व किसी समाज संस्कृति को उन्नत करने में इसी शिक्षा का ही हाथ है। पहले इस भारतवर्ष में शिक्षा बहुत ही अधिक पाई जाती थी। मनुष्य दूसरे देशों से आकर विद्या पढ़ते थे और शिक्षा प्राप्त करते थे। इस पर संस्कृत के विद्वान विष्णुशर्मा ने एक श्लोक लिखा है-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इसी शिक्षा से ही मनुष्य लोगों पर विजय प्राप्त कर लेता है। आज महात्मा गांधी की ओर संसार में क्यों ताक है? किस कारण से इतने पूज्य बने हैं? क्यों कि उनके पास विद्या है। वह शिक्षित हैं इसीलिए वह संसार में पूज्य हैं। उन्होंने हम लोगों के दिलों पर विजय प्राप्त की हुई है। वर्तमान समय के जितने भी नेता हैं सब ने शिक्षा रूपी के कारण ही उच्च-पद को प्राप्त किया। त्याग और तपस्या शिक्षा के अन्तर्गत है।

~~आजकल~~ जो शिक्षा पद्धति हमारे भारतवर्ष में प्रचलित वह निःसंदेह दोषों से भरी हुई है और हमारे ~~लि~~ राष्ट्र के लिए अहितकर सिद्ध हुई है। जो लोग केवल नौकरी के लिए ही शिक्षा पढ़ते हैं वे भारी भूल करते हैं। शिक्षा इसीलिए पढ़ी जाती है कि मनुष्य विनयी तथा योग्य बन सके - यही शिक्षा का असली तात्पर्य है। इस पर कविवर मैथिलीशरण जी ने एक दोहा लिखा है-

> हाँ, आज शिक्षामार्ग भी संकीर्ण और क्लिष्ट है,
> कुलपति सहित उन ~~कुल~~ गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है।
> बिकने लगी विद्या यहाँ अब शक्ति हो तो क्रय करो,
> यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रह कर ही मरो॥

स्कूल-कॉलिजों की शिक्षा ~~पाने~~ पाने से तो मूर्ख रहना ही अच्छा है। इन से एक मूर्ख किसान कई दरजे अच्छा है।

शिक्षा—3

इस शिक्षा-पद्धति पर कोई तीर-चार आंसू बहाने वाला भी नहीं है।

पूर्वसमय में, ब्रह्मचारी शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरुजनों की सेवा किया करते थे। वे उनके त्याग-तपस्या की परीक्षा लेते थे। बुद्धि आयोग्य को नहीं पढ़ाया करते थे। उस समय निर्धन और धनवान का कोई सवाल नहीं था। अस्तु।

यही शिक्षा पद्धति हमारे यहाँ भी शोभित होती है जो कि शिक्षाचारी हो। विष्णुशर्मा ने लिखा है - सौ गीदड़ों से एक शेर अच्छा है।

इसलिए हम सब को शिक्षा ~~पढ़नी~~ ग्रहण करनी चाहिए तथा उससे लाभ भी उठाना चाहिए।

यह संसार एक मिश्रगृह सा मालूम होता है। जहाँ बदमिज़ाज बच्चे मिट्टी के खिलौने की होड़ लगा रहे हैं। बेकार छोटी बातों में लड़ रहे हैं और चीख रहे हैं। आर्थिक और औपनिवेशिक शक्ति के लिये प्रतियोगिता चल रही है। लालच और भय का साम्राज्य सा स्थापित हो गया है।

आधुनिक युग उन सभी लक्षणों का दिग्दर्शन कराता है जो अभी सभ्यता का अन्त कर देते हैं। सहिष्णुता और न्याय का अभाव, सामूहिक एवं वैयक्तिक स्वार्थ, रक्त और जाति के आधार पर मनुष्यों का विभाजन, ऐशो-आराम से प्रेम तथा कष्ट से घबराहट, ऐसे लक्षण हैं जो प्रत्येक राष्ट्र-व्याप्त हो रहे हैं।

उधर भारत में शर्मा महोदय कहते हैं कि जर्मन संस्कृति यूरोप भर में सब से पुरानी है और उसने विज्ञान व सभ्यता की उन्नति में सबसे ज़्यादा योग दिया है। हम उन चीज़ों को दोबारा हासिल करना चाहते हैं जो कि इतिहास में खो चुके हैं।

संसार के देशों की संस्कृति की ऐसी विषम परिस्थिति के अवसर पर, भारतीय संस्कृति के स्वर्ण प्रताप की गाथा गाते हुए प्रस्तुत विषय पर विचार करना अत्यन्त

आवश्यक हो जाता है।

संसार के इतिहास को देखने से पता चलता है कि एक विजेता जाति, पराजित जाति को घृणा की दृष्टि से देखती है, उसके कृत्यों को तिरस्कार कर देती है और शीघ्र ही उसकी संस्कृति को भी कुचल डालती है। रोमन लोगों ने जब ब्रिटिशों पर विजय पाई तो ब्रिटिश रोमन लोगों में मिल गये थे। परन्तु राजपूतों ने विदेशी विजेता लोगों के साथ मिलकर अपनी जातीय पवित्रता पर धब्बा नहीं लगने दिया। उनकी शक्ति और उत्पत्ति क्षीण किये गये, पर उन्होंने अपना पवित्र धर्म और पवित्र आचार कभी नहीं छोड़ा। वह वीरता और धर्म का नियमों के अधीन में आई पर उनके वीरत्व ने अपनी प्रतिष्ठा पर कलंक नहीं लगने दिया, उन्होंने स्वातन्त्र्य युद्ध में जाने से पहले कभी आगा-पीछा नहीं किया। निरन्तर युद्ध करके उन्होंने सर्वस्व गंवाया होगा। बड़े 2 वीरों को समरांगण में वीर गति के अधीन किया होगा, तलवारों के प्रहारों से वीरों के शरीरों में अनेक घाव हुए होंगे और मेदिनी रक्त से रञ्जित हुई होगी; पर उन्होंने कभी भी किसी के आगे अपना सिर नहीं झुकाया। उन्होंने ही विजयोद्धत मुगलों के कातिल अत्याचारों को सहन

भी दीन-वचन नहीं निकाले। उन्होंने भी रमणियों के रक्षार्थ में प्राणार्पण किया, धधकती आग में अपने आप को भस्म किया, परन्तु विधर्मियों के हाथ में जाकर के स्वाधीनता को तिलांजली न दी, अपनी संस्कृति की पराभूति न होने दी। राजपूतों ने चाहे अपनी वेश-भूषा को बदला हो, चाहे मुगलों से निकट सम्बन्ध स्थापित किया हो, चाहे उनके शिल्पों में मुग़लपन का समावेश हुआ हो; पर उन्होंने भारतीय संस्कृति को खतरे में नहीं डाला, उसके तत्व को जीर्ण-शीर्ण अवस्था में भी कायम रखा और उसको सर्वनाश से बचाया। स्वाधीनता और संस्कृति को निष्कलंक रखने के लिए बप्पा रावल और कुम्भा ने विधर्मियों के छक्के छुड़ाये; राणासांगा और बाबर के बीच घमासान युद्ध हुआ, उन्होंने भले हर तरह स्वाधीनता और संस्कृति पर कलंक न लगने दिया। पर भारत का दुर्भाग्य था। दिल्ली का साम्राज्य मुगलों के हाथ में गया। ऐसी अवस्था में भी जब २ मुग़ल सम्राट ने महिलाओं के मान को कुचलना चाहा, भारतीय संस्कृति के उदात्त भावों का लोप करना चाहा, तब २ राजपूत शासकों ने अपने प्राणों को हथेली पर रखकर मुग़ल सम्राट को बता दिया कि भारतीय संस्कृति को कुचलना टेढ़ी खीर है। पर अफसोस, अन्त में राजपूतों का

भी आकर्षित किया। उसको अपना साधन बनाया। उस समय भी राजपूत शिरोमणि महाराणा प्रताप ने को रोक दे बराबर को लगाया भारत में वैवाहिक सभ्यता की नींव डालने की कोशिश करने वाले मुगल सम्राट् अकबर को चैन की बंसी नहीं बजाने दी। इससे भारतीय संस्कृति का बड़े विकट समय में संरक्षण हुआ। राजपूताने के सिवाय अन्यत्र भारत में मुगलों का काफी प्रभाव पड़ा है। आज भारत के गाँव २ में मस्जिदों और मकबरों का दर्शन होता है पर राजपूताने में दूसरा ही दृश्य है।

हिन्दू जाति ने भारत में आने वाली अनेक की जातियों को अपने में मिला लिया है और ऐसा मिला लिया है कि उनका विभेद करना कठिन है। भारत में आज अनेक जातियाँ हैं पर उन सब में आन्तरिक एकता है। प्रत्येक जाति अपने को हिन्दू कहेगी, वेद के सामने सिर झुकायेगी, सभी समय में अपने धार्मिक-पर्व मनायेगी। यह है अनेकता में एकता का सुन्दर उदाहरण। प्रत्येक जाति अपना पृथक् अभिमान भी रख सकती है। पृथक् मान्यता भी रख सकती है पर अन्त में सब जाकर हिन्दुत्व में विलीन हो जायेंगी। आज शक, हूण, कुषाण आदि जातियों के वंशजों से पृथक् करना एक समस्या बन गई है। ऐसी हिन्दू जाति के पालित होते हुए

भी विजित जाति को अपने में मिलाने की कोशिश की। अल्लोपनिषद् की रचना हुई। अरब को अवतार माना गया। पर रोमों को अपनी संस्कृति का गर्व था। अतः मेल न हो सका। पराजित, प्रपीडित हिन्दू जाति ने विजेताओं की संस्कृति को अपनाया नहीं। विजित जाति के साथ संस्कृति का संघर्ष हुआ पर फिर भी पराजित जाति ने अपनी संस्कृति की जड़ न हिलने दी।

यूरोप का इतिहास बताता है कि रोम ने ग्रीस को जीत लिया। ग्रीस की संस्कृति बहुत ऊँची थी। रोमनों ने ग्रीकों की विचारधाराओं को अपनाया और उनके आधार पर रोमन सभ्यता का प्रसार किया। सांस्कृतिक विजय ग्रीस की रही। यह ग्रीक सभ्यता संसार में ८०० वर्ष तक रह सकी और रोमन सभ्यता १००० वर्ष तक अपना शासन रख सकी। पर, भारतीय संस्कृति विजित जाति के साथ संघर्ष में भी हुई होने पर भी जीवित है।

तो क्या कारण है इसकी अमरता का? इसका कारण यही है कि भारतीय सभ्यता धार्मिक आधारों पर चलती है। भारत ऋषि एवं धर्म को सम्पन्न मानते हैं। यहां राजा और शक्ति की इतनी प्रतिष्ठा नहीं जितनी एक धार्मिक आचार्य की।

भारतीय राजा केवल ब्राह्मण की सहायता से सीधा शासन करता था। केवल एक ही ब्राह्मण, एक हजार के बराबर गिना जाता था, क्योंकि वह पवित्र ज्ञान का भण्डार होता था, इसलिए द्वेष से मुक्त स्वार्थ रहित और परार्थ चिन्तन में लीन रहता। राजा ब्राह्मण पुरोहित से अपनी विधि विधानों का शासन करते थे। पुरोहित भी राजा को सत्य और हितकारी मार्ग पर ले जाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करता था। उसके जैसा स्वार्थत्याग संसार के इतिहास में ढूंढ़ा नहीं मिलता। आत्मत्याग की भूमि राजपूताना की यह घटना आत्मत्याग की पराकाष्ठा का प्रदर्शन कराती है। -

१६वीं शताब्दि के अन्तिम भाग में एक दिन दो राजकुमार जंगल में शिकार खेल रहे थे। दोनों युवकों की मुखाकृति अभिन्न थी। दोनों के शरीरों से यौवन टपक रहा था, दोनों ही सुदृढ़ शरीर, सौन्दर्य सम्पन्न एवं तेज पुञ्ज थे। उनके बाल का सौन्दर्य अनुपम था। दोनों में बन्धु प्रेम था। वे आजतक कभी झगड़े नहीं थे, पर प्रेम तभी तक रहता है जब तक ईर्ष्या न हो। आज एक में ईर्ष्या का प्रादुर्भाव हो गया है।

ये दोनों भाई कुमार प्रतापसिंह और शक्तिसिंह हैं। प्रताप को आज राज्य मिला है। अतः शक्तिसिंह ईर्ष्यान्वित है। आज इस जंगल में दोनों एक दूसरे के बारा पर

तुले हुए हैं। दोनों के बीच द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ। चमकती तलवारें उछलने लगीं। दोनों एक दूसरे से परास्त होने वाले नहीं थे। युद्ध भीषणतम धारण करने लगा। इसी बीच एक वृद्ध ब्राह्मण, मेवाड़ का कुल पुरोहित आया। उसने राजकुल का नाश निकट पाया। वह गम्भीर स्वर से कहने लगा "महाराज, यह क्या हो रहा है, समझते नहीं। भ्राता से भ्राता का युद्ध भाइयों के लिये शोभाजनक नहीं, यह कलंक रूप है। तुम्हारे तीक्ष्ण भाले शत्रुओं के हृदय में प्रवेश करें, तुम्हारी तेजस्वी तलवार दुश्मनों के रक्त से रंजित हो, इसी में कुल की शोभा है, परस्पर लड़ने में नहीं।"

पर, इस ब्राह्मण के वचन का कोई प्रभाव न पड़ा। आखिर उसने तलवार निकालकर अपनी छाती में भोंक दी। दोनों भाई स्तब्ध हो गये।

क्या ऐसा आत्मत्याग का उदाहरण कहीं मिलेगा? क्या इतना आत्मत्याग इतनी निरीहता कहीं देखी गई है! उस पुरोहित की आत्मत्याग की कथा अवर्णनीय महिमा से भरी हुई है।

ऐसे 2 निःस्वार्थ ब्राह्मण जब राज्य की बागडोर अपने हाथ में लें तो फिर राज्य क्यों न शान्ति से चले, प्रजा क्यों न सुखी रहे।

आज प्राचीनकाल से अधिकार का [illegible]

यहां आध्यात्म बल को प्रधानता दिया गया है। एक ही व्यक्ति ईश्वर-विश्वास और सत्य के बल पर खड़ा होकर सारे समाज का मुकाबला करता रहा है। राजपूताने का इतिहास इसका एक उदाहरण पेश करता है।

भारत में मुग़लों का बोल-बाला था। भोले भारतीय अकबर के फंदे में फंस गये थे। सारा राजपूताना अकबर की दासता में जा बैठा था। राजपूतानाकी स्त्रियाँ धर्म कर्म को छोड़कर सम्राट् के रनिवास की संख्या बढ़ाने में गौरव समझती थीं। राजपूत राजा भी अपनी बहिनों और लड़कियों के सौन्दर्य मुग़ल सम्राट् की कृपापात्रता पाने में व्याकुल-आतुर रहते थे। ऐसे समय स्वतन्त्रता और संस्कृति का तो कहना ही क्या? स्वतन्त्रता अरावली की गिरिगह्वरों में अपने को जीवित करने जा रही थी। पर सहसा उसकी दृष्टि प्रताप पर गई। उसे आश्चर्य[illegible]

प्रताप अकेला था। फिर उसने दूसरों से सहयोग की कामना न की। उसमें आत्म-विश्वास था, आत्मबल था। भगवान एक लिंग पर दृढ़ विश्वास था। उसका साथी केवल सत्य था, शक्तिसिंह नहीं, वह तो मुग़लों की चरण-शरण में गया था। अकेला प्रताप सम्राट् अकबर के मुकाबले में खड़ा हुआ। उनके थोड़े से सिपाही उनके साथ थे। आध्यात्मिकता और नैतिकता में

भीख माँगना सिद्ध हुई। भौतिक कोण दृष्टि से देखने वालों ने अकबर को समर्थ कहा, वे भी तो निजामी नहीं कर सके। वास्तव में आध्यात्मिक पलड़ा ही समर्थ था। आज के कलि-युग में भी देख लीजिये? उन मुगल साम्राज्य के वंशजों की क्या स्थिति है? आत्मविश्वासी और कर्तव्यप्रिय प्रताप के वंशज आज भी उदयपुर के अधीश्वर हैं। आज के युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द के जी ने सत्यार्थ प्रकाश लिखा है। भौतिक विजय क्षणिक है। आध्यात्मिक भावना वाले चिरस्थायी हैं। आप ही देख लीजिये प्रताप और अकबर में कौन समर्थ है?

इस प्रकार उसने स्वतन्त्रता के लिए अपना सब कुछ स्वाहा कर दिया और भारतीय संस्कृति को शुद्ध रखा। इसके लिए वह ऋषि के समान सहिष्णु हुआ। ऐशो-आराम को उसने तिलाञ्जलि दी और कष्ट को गले लगाया। त्याग और तपस्या का अद्भुत उदाहरण इसने समक्ष रखा।

राजपूताने के प्रत्येक क्षत्रिय ने कैसी भी विकट परिस्थिति में रहते हुए भी अपनी संस्कृति को धब्बा नहीं लगने दिया। अकबर ने जब मानसिंह को तीर्थ इस्लामी धर्म को स्वीकार करने के लिए कहा तो उन्होंने इनकार किया। मैं मुसलमान धर्म का मान कर सकता हूँ क्योंकि मैंने उसे पढ़ा है,

परन्तु उस धर्म को कैसे स्वीकार करूँ। मैं तो हिन्दू हूँ।

यही नहीं राजस्थान दूसरी दृष्टि से भी भारतीय संस्कृति में बहुत ऊँचा स्थान रखता है। यहां भाटों ने राजपूताने के वीरों के चरित्रों का गीतों में चित्रण किया है। ये गीत इतिहास की खोज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। राजपूताने के अनेक सिक्के और शिलालेख मिलते हैं, जिससे इतिहास का ज्ञान होता है और जिस इतिहास पर भारतवर्ष गर्व करता है।

किसी ने कहा है जितने परिमाण में शिल्प और विज्ञान की उन्नति हुई है उतने परिमाण में रीतिरिवाजों में भी उन्नति होती ~~हुई~~ है। इसलिए राजपूताने के शिल्प को भी देख लीजिये। 'बाडोली' नामक मेवाड़ के एक गांव में प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। उसकी प्रशंसा करते हुए टॉड ने कहा था कि "उसकी शिल्प और भव्य बनावट का यथावत् वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। यहां मानो कला का खजाना खाली हो गया है"। इसके सिवाय चित्तौड़ का महाराणा कुम्भा का कीर्तिस्तम्भ एवं जैन स्तम्भ दर्शकों की बुद्धि को चकित करते हैं। आबू दिलवाड़ा में हिन्दू-भारतीय संस्कृति का सम्मिश्रण है। वह चौदह वर्षों में बना है।

शिक्षा भी राजपूताने में दयनीय दशा में थी। यहां ऐसी शालाओं का संभव नहीं जहां ऋषि लोग वेद पढ़ाते हों।

उच्च घराने के राजपूत लोग पढ़ते थे। चाणक्य अर्थशास्त्र के श्लोक अक्षर घुटवाये जाते थे। राजपूताने के कवियों को ढूंढने पर ओझा जी के राजपूताना के इतिहास में 'शिशुपाल वध' का रचयिता कवि माघ जोधपुर राज्य के भीनमाल का निवासी विदित हुआ। काव्य का रस यहां पर ऐसा फैला प्रतीत नहीं होता। हां, भाटों के वीररस से भरे गीत अब भी यहां के साहित्य में वृद्धि करते हैं। भक्तिनी मीराबाई के भजन भावनाओं पर बहुत आदर्शशाली हैं। उन्होंने प्रभु को आत्म-समर्पण किया था। भारतवर्ष के आध्यात्मिक इतिहास में मीरांबाई का बहुत ऊंचा स्थान है। उनके बनाये गीत आज भी भारत में बड़े चाव से गाये जाते हैं।

संस्कृति की चर्चा करते हुए चित्रकलादि अनेक विषयों पर लिखा जा सकता है। क्योंकि सम्यक् कृति ही संस्कृति है। इस प्रकार से जो प्राचीन लोग, ब्राह्मण का मान, गौ की रक्षा और स्त्रियों का आदर करते थे। वह राजपूताने में भी रहे। उन्होंने क्षत्रिय धर्म का पूरा 2 पालन किया है।

इस समय मैं आपको राजपूताने की एक आदर्श कृति की एक कहानी सुनाना चाहता हूं जिसमें उनकी आध्यात्मिकता प्रतिबिम्बित होती है -

४०० वर्ष पुरानी बात है। वीरभूमि मेवाड़

की एक रूपवती कन्या अश्व पर सवार हो किसी स्थान पर जा रही थी। उसने योद्धा का वेश धारण किया था। वह अपना अश्व निर्भयता-पूर्वक द्रुतगति से दौड़ा रही थी। अश्व पवन से छूटे तीर के समान जा रहा था और उस पर बैठी सौन्दर्यवती एवं मनोहरमूर्ति अपनी अपूर्व प्रभा चारों ओर फैला रही थी। इसी बीच एक युवक भी योद्धा वेश में सुसज्जित हुआ जा रहा था। दोनों ने एक दूसरे को देखा। अपूर्व से अपूर्व का सम्मेलन हुआ। भीषणता में अपूर्व भीषणता का सम्मिश्रण हुआ। वह युवक योद्धावेशधारिणी युवती की अश्व चलाने की चातुरी और सौन्दर्य को देखकर दिङ्मूढ़ हो गया। उसके हृदय में आशा और निराशा का प्रायः आविर्भाव हुआ। पर, यह कोई उपन्यास की भूमिका नहीं। निर्मितकल्प कथा नहीं। एक तथ्य वार्ता है। सच्ची हकीकत है।

यह युवक कौन है? मेवाड़ के अग्निकुलदीपक महाराणा पुत्र जयमल्ल है, और वह युवती कौन है? वह तोडा के रावसुरतान की कन्या ताराबाई है।

बप्पारावल का वंशज आज उस योद्धा वेश-धारिणी लावण्यमयी मूर्ति के लावण्य में बह गया।

राजा रावसुरतान ने यह घोषित किया था कि मेरा प्रदेश जो कि इस समय पठानों के आधीन है उसको जो

स्वतन्त्र होगा उसके साथ मेरी कन्या का विवाह होगा।

जयमल्ल ने टोडाप्रदेश को स्वतन्त्र किये बिना सुरतान की पुत्री से ब्याह करने की इच्छा की। इससे उसने क्रोधित होकर जयमल्ल का सिर धड़ से अलग कर दिया। मेवाड़पति रायमल्ल के पुत्र की हत्या की गई। उनके तीन बेटे थे। उनमें यह होनहार और लाडला बेटा था। आप सोचिये उसका क्या परिणाम आना चाहिए? क्या रायमल्ल अपने पुत्र के हत्यारे को अवध्य बनायेगा? नहीं! क्या मेवाड़पति उस छोटे से राज्य को क्षमा प्रदान करेगा? नहीं, कदापि नहीं।

जब रायमल्ल ने यह समाचार सुना तो गम्भीरतापूर्वक कहा, जो कुलकलंक पुत्र पिता की प्रतिष्ठा नष्ट करने को उद्यत होता है उसको यही दण्ड मिलना चाहिए।

महाराणा रायमल्ल ने ऐसा कहकर अपने पुत्र के मारने वाले को पारितोषिक दे और उन्हें बेदनोर का राज्य दिया।

सच्चे वीरों के चरित्र ऐसे ही उदात्त-भावों से भरे होते हैं। वास्तविक वीर ऐसी ही महाप्राणता और तेजस्विता से विभूषित होते हैं। क्या इस धर्मप्राण भारत की संस्कृति की उदात्तता को प्रकट करने के लिये इससे अधिक -

युद्ध मे मारा गया प्रत्येक राजपूत वीर धर्म की बलिवेदी पर बलि हो गया है। उसी के द्वारा आज भारतीय संस्कृति बची हुई है। राजपूत वीर लुट-छिप कर अपना प्राण बचा सकते थे। पर यह तो तब हो सकता था जब वे धर्म के सिवा किसी दूसरी चीज़ के लिये जी रहे हों। राजपूत अपने स्वार्थों के लिए, अधिकारों के लिए, नहीं जीते थे। वे धर्म के लिए जीते थे। राजपूताने के इतिहास मे ऐसा आदमी ढूंढा नहीं मिलेगा जो अपने स्वार्थ और अधिकार को पाने के लिये जीवन दान किया हो। उन्हें तो अपने धर्म, अपने चरम उद्देश्य को अन्त तक पालने की चाह थी।

भारतीय संस्कृति में जो २ उदात्त भावनाएँ हैं उनके रक्षण के लिए राजपूतों ने अपने प्राण तक गंवा दिये। इन उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। भारतीय संस्कृति के उन्नतम भावों के संरक्षण में राजपूतों का बहुत ऊँचा स्थान है।

आधुनिक युग में भी महाराणा प्रताप की जन्मभूमि में बैठकर ऋषि दयानन्द ने भारतीय संस्कृति

का पुनरुज्जीवन किया है। वह सत्य का दूत, सत्य का प्रकाश देने के लिए अनेकबार कष्ट हुआ होगा, स्थूल दृष्टि वाले उसे हिंसक भाव भी कहेंगे पर यह सच्चा उसने अपने हत्यारों के प्रति उदारता दिखाकर दूर कर दिया है। आज उसी सत्य का अहिंसा का भारत में बोलबाला है। विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी उसी के लिए अपना जीवन समर्पित कर चुके हैं।

खादी का मन्त्र

<u>महात्मा जी का उपदेश</u> —: कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को उपदेश देते हुए महात्मा गान्धी ने वर्धा में कहा - अहिंसात्मक संग्राम में खादी के गोला बारूद के बिना भद्र अवज्ञा निष्फल हो जावेगी। हिंसात्मक संग्राम में खादी के लिये कोई स्थान नहीं। विधान-परिषद् हमारे सब झगड़े दूर कर देगी। हमें तब तक सूत कातना होगा जब तक थक न जायें। यह नहीं हो सकता कि निश्चित सीमाओं में सूत तैयार करने की शर्त रखी जाय। हम भद्र अवज्ञा तभी करते हैं जब कि वह अनिवार्य मालूम हो और उसे धर्म समझें। मैं जीवन पर्यन्त खादी का मन्त्र जपता रहूँगा और वही काम आयेगी।

उद्धृत

हा! प्रसाद

ब्र. सूर्यदेव जी

['प्रसाद' जी के निधन पर, आंसुओं से पलकों को आर्द्र करते हुए, अपनी कुशल कलम द्वारा, कविवर सूर्यदेव जी ने निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं —]
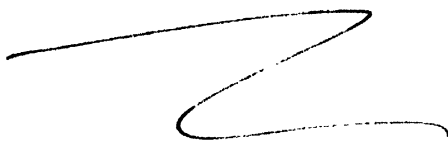
तुम थे 'प्रसाद', अवसाद कहां से लाये?
थे मर्त्य, अमर-संवाद कहां से लाये!
जिससे जगती जन युग युगों तक अब रोयें,
वह कसक, वेदना, याद कहां से लाये?
तुम भूतकाल को वर्तमान काल में लाये;
उस छिपी प्रभा को नव-विहान में लाये;
जो विश्वमञ्च पर हर दम जाये खेला,
वह नाट्य, काव्य, गीतिका, गान में लाये।
थे काव्य सूर्य; पर छायावादी छाया-
से युग परिवर्तन किया; अतुल यह माया।
तुम चिरजीवित हो, अजर, अमर हो; चाहे
मिट गई तुम्हारी है नश्वर यह काया।

तुम निद्रा की अचल शान्ति में सोये;
हो कालचक्र से पञ्चतत्व में खोये;
निज कृतियों में साकार रहोगे लेकिन,
जन कौन न तुमको खोकर के अब रोये?

अज्ञात हीरा

ले. श्री. भीष्मदेवजी १३
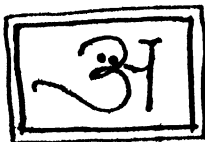
शिक्षित ग्राम में शिक्षित व्यक्ति का स्थान, मोरों में कौए का सा है। क्योंकि उस व्यक्ति की शिक्षा उस असन्मार्गदर्शी पुजारी के तुल्य नहीं है। उसकी शिक्षा सनातन शिक्षा है। जो कि उसे दिनों दिन उन्नति के पथ पर ले जाती है। उस उन्नति के पथ पर जाने वाले का धर्म हो जाता है कि वह अपने पुत्रों को भी इसी शिक्षा से दीक्षित करे। इस प्रकार के व्यक्ति को लोग पागल कह दिया करते हैं यदि सचमुच पागलपन यही है तो मेरी परमात्मा से प्रार्थना है कि उस पागल पन को मुझे भी दे। अस्तु!....

अस्तु ! आजकल छोटा सा भी जमींदार अपने कार्य को नौकरों द्वारा ही करवाता है। ऐसे समय यदि कोई जमींदार अपने हाथ से काम करता हो तो उन जमींदारों की दृष्टि में उसका स्थान होता है। कृषि जैसे कार्य का यदि अच्छी प्रकार निरीक्षण तथा स्वयं न किया जाय तब तक पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। कुरुक्षेत्र जमींदारों के भांग इत्यादि पीते होने पर उनमें एक व्यक्ति का अलग होना एक बहुत बड़ा साहस है, इस प्रकार के साहस के नमूने बहुत से हैं। सोती हुई दुनियां में जागते हुए का महत्व बहुत है चाहे वह महत्व प्रकट हो या नहीं, परन्तु उस प्रभु के दृष्टि में तो है ही। उसने अपने जीवन का लक्ष्य पुत्रों को सुशिक्षित करने का बनाया था। इस लक्ष के लिये उसने जो युद्ध किया वह मुझे जीवन पर्यन्त याद आता रहेगा। प्रातः ४ बजे से लेकर रात के १० बजे तक जिसने दुनियां की तरफ निगाह उठा कर भी नहीं देखा कि दुनियां क्या कर रही है, उसको तो अपने कर्तव्य की ही धुन थी। कोई त्यौहार मनारहा है तोकोई मेले का स्वांग

भर रहा है, परन्तु उसे तो अपने खेत में खड़ी घास का ही ध्यान था। कपड़े, जूते इत्यादि बाह्य आडम्बर की ओर ध्यान भी न था। पुस्तक पढ़ने की बहुत ज्यादा धुन थी, जिस किसी दिन भी खेत इत्यादि का काम न हो सकता था या परमात्मा की तरफ से वर्षा के कारण बाधक होना पड़ता था तो उस दिन पुस्तकों का स्वाध्याय चलता था। कुछ मतवाले उनके पास पुस्तकों के सुनने पहुंच जाया करते थे। परन्तु इसकी तरफ लोग कहा करते थे कि जो पढ़े "महाभारत उसका घर गारत"। पुत्र जो कुछ सीखता है वह उन तीनों अपने माता-पिता और आचार्य। कहा करते थे कि खूब ध्यान से पढ़ा करो। परन्तु न जाने उन दिनों क्या नशा चढ़ा हुआ था कि उस उत्तम सीख को न ग्रहण करता था। कभी भी इस बात को न सोचा था कि सिखाने वाला चला भी जायेगा। यदि मैं

उस पूजनीय की बात मान लेता तो आज मुझे बहुत से कष्ट न उठाने पड़ते। पाठको! दिया जला और बुझ गया परन्तु जलना उसका श्रेयस्कर है जो कि हमें यह पाठ पढ़ा जाय "मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः न च धूमायितं चिरं" और साथ ही उस प्रकाशमान दीपक ने पढ़ाया कि "कार्यं वा साधयेयम् देहं वा पातयेयम्" ये यह दोनों टुकड़े भटके को मार्ग के दिखाने का काम करते हैं।

-श्री "अग्रज"

हिन्दोस्तान का उत्तरीय मैदान जिन अक्षांशों के बीच स्थित है उन अक्षांशों में संसार के बड़े से बड़े रेगिस्तान पाए जाते हैं। यदि भारतवर्ष के सिर पर भी हिमालय का चमचमाता ताज और उससे निकलजाने वाली सरितायें न होतीं तो आज उत्तरीय-भारत का यह विशाल मैदान भी उन रेगिस्तानों का ही सम्बन्धी होता, किन्तु उस महामहिम प्रभु की यह अपार कृपा समझनी चाहिए कि उसने इतने विशाल - महाकाय - उच्च अदम्य और स्वाभिमानी हिमालय जैसे निठुर - क्रूर

और विस्तृत पर्वत में भी इस को एक विशेष परिमाण में स्थान दिया है। हिमाचल भी संसार में एक ही है, जो अपनी स्थिति - फैलाव - प्राकृतिक सौन्दर्य - उच्चता आदि में प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता। यह अनेक बड़ी से बड़ी नदियों और मनोहर से मनोहर दृश्यों - स्थलों का जनक .. जननी या उत्पादक है। आश्रयदाता है। इन स्थलों में काश्मीर, बद्रीनाथ, केदारनाथ, कैलाश, नैनीताल शिमला, मंसूरी आदि उल्लेखनीय स्थान हैं। सबका अपना २ महत्व, अपना २ सौन्दर्य तथा अपना स्थान है, काश्मीर इनमें से अपने ढंग का एक ही है। यह वह स्वर्ग है जिसे देखने मात्र के लिए कई - कई की-२ ऊँची, सीधी - ऊँचे पर्वत-तुल्य भयंकर ढलानें मारते

दूर सागर-समुद्रों को पार करके तथा अविश्रान्त
मार्ग निकटतम कालरुद्ध पहाड़ों को लांघ कर,
अपने जीवनों को खतरे में डाल कर हजारों
की तादाद में देश-देशान्तर से लोग आते हैं।
वस्तुतः जिन आँखों ने इस स्वर्ग को अपने में स्थान
दिया है वे धन्य हैं - वे शरीर धन्य हैं और उन
मनुष्यों का तो कहना ही क्या। वस्तुतः इसका मूल्य
आंक सकने वाले लोगों का हृदय, ऐसे
सुन्दरतम दृश्यों को अपने जीवन में कम
से कम एक बार और यहां आकर देख
सकने के लिए निरोही हो उठता है।
उनके दिमागों में कई बार विचारों का
बवण्डर ऐसी तेजी से उठता है कि वे

लोग पागल से हो जाते हैं और इस पागलपन में उड़ कर जा पहुँचने तक की असम्भव से असम्भव कल्पनाएं कर लेते हैं। विशेषकर कवि और रसिक लोग।

क्या ऐसे स्वर्ग को देखने के लिए आपके दिल में हूक नहीं उठती? क्या ऐसे स्वर्ग की अनेकों लोगों से गाई जाने वाली महत्ता को सुन कर आपका दिल हिलोरें मारने नहीं लगता? क्या ऐसे सुन्दरतम - मनोहारी स्वर्ग की कल्पना कर के भी आपके नेत्र तृषित रहने को राजी हैं! मेरी भी कई वर्षों से इस स्वर्ग को देखने की इच्छा थी। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि मुझ जैसे अभागे लोग भी ऐसे साक्षात् स्वर्ग देख सकेंगे। मनुष्य की आशा क्या है - कुम्हला हुआ (मिटिमाता)

दीपक । परिस्थिति मनुष्य को क्या नहीं बना सकती और कहाँ नहीं पहुँचा सकती? मुझे भी परिस्थिति ने या रोग-ग्रसित निस्वार्थिनी - सरलता - साधुता सौम्यता और साक्षात् दयालुता की प्रतिमूर्ति माता जी कृपा ने इस स्वर्ग के दर्शनार्थ प्रेरित किया- इस आशा से कि मैं इस स्वर्ग की सुन्दरता अनुपमता और मनोहारिता आदि का रसास्वादन कर, पारलौकिक स्वर्ग से तुलना कर अपने पुत्रत्व के सम्मुख कर जग में रख सकूँगी- किन्तु इत्तफाक से ठीक उसी दिन जिस दिन मैं उस स्वर्ग के श्रेष्ठतम स्थान गुलमर्ग में था- ने स्वर्ग सिधारी । शायद इस आशा से ठीक उसी दिन - कि दोनों स्वर्ग समानतः प्रलोक

के उस स्थान पर कांच के ऊपर-नीचे के पृष्ठ सदृश हैं। और, जो कुछ भी हो आरपार देख सका।

— ० —

— श्री "विनोद"

तेरी तन्त्री की झंकार —
झंकृत करती विश्ववृन्द को,
कर के मृदुल प्रहार —
नित नवीन स्वरों की जननी,
है निराकार साकार ।
तेरी तन्त्री की झंकार —

पर जब रुद्र रूप धरती हैं,

करती हैं हुंकार -

दिग्दिगन्त कम्पायमान हो

कर उठते चीत्कार -

ऐसी तेरी ही झंकार।

× ×

अविरत बजते रहते इनके,

नाना अद्भुत तार -

छेड़ी एक नवीन रागनी

हमें सुना इस बार —

ऐसी तेरी ही झंकार।

राजनितिज्ञों के द्वार पर

— श्री अशोक वेदालंकार

विचार बिना पूंजी की अनायास "उत्पत्ति" है। जब इसका तांता एकबार आरम्भ हो जाता है तब पीछा छुड़ाना मुश्किल है। यह भूत की तरह पीछे पड़ नाक में दम कर देते हैं। कहीं से चलो कहीं पहुंचो। मकड़ी का सा जाला। अत्यन्त सूक्ष्म और अनन्त लगता। खाली बैठे आदमी की खोपड़ी तो विचारों की ही उधेड़ बुन में घंटों गुजार देती है। इसी तरह आज मुझे भी फुरसत में देख दुनियां भर के विचारों ने गिरफ्तार कर लिया. छुटकारे के लिये हर तरह की सफाई पेश की, पर सब व्यर्थ। पूरी तरह से विचारों के जंजाल में निमग्न होगया। भोजन, घूमना या कोई और काम, सभी नदारद। मैं बिस्तर पर लेट गया परन्तु विचारों का सिलसिला यथा पूर्व जारी रहा। विचारों की गति; हवाई जहाज और रेलगाड़ी की कहां थी बिसाती। सर्र... सर्र... सर्र एक के बाद एक लोक धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी में चक्कर लगा मारा, पर विचारों की चाबी समाप्त होने में न आ

देश विदेश की परिस्थितियां, वहां के आदमी, नदी, पहाड़ भारत और सभी कुछ तेज़ी से दिखाई देने लगे। बहुत से मित्र और मिलने वाले भी इस विचार प्रवाह में साथ ही साथ बह निकले। आखिर देखा कि एक विशाल भव्य विद्युत प्रकाश से देदीप्यमान द्वार पर सहसा आ रुके थोड़ी देर द्वार पर खड़े हो देखने लगे। लोगों की भीड़ द्वार में प्रविष्ट होती चली जा रही है। बातचीत, शोर शोरगुल और चहल पहल की रौनक है। मधुर बैण्ड बाजा भी बज रहा है, पर, मानो वह अपने लिये ही चिल्ला रहा है। इस तमाशे को अभी समझने का ही प्रयत्न कर रहा था कि इतने में एक विशाल मस्तक वाले, बाल-रहित खोपड़ी के पुरुष ने आकर ज़ोर से धक्का मारा। और साथ ही - "तुम भी क्यों नहीं चलते"? कहते हुवे अपने रौब से दबाना चाहा। धक्के से गिरी हुई अपनी मैली पगड़ी को उठाते हुवे मैंने विनम्र हो पूछा - बाबू जी यह है क्या? "यहां बताई कि अन्दर से पता चलेगा? देखना हो तो चल ... चल ... चल। यह कह उसने मुझे पकड़ अन्दर धकेल दिया। बरसाती नाले के तीव्र प्रवाह में बहते शुष्क लकड़ बहते की तरह मैं भी कुछ न समझता हुआ

उस भीड़ में वह निकला। थोड़ी दूर चलने पर भीड़ को रुक जाना पड़ा, मैं भी रुक गया। आवाज़ आने लगी— "प्राचीन समय में असभ्य पुरुष इस प्रकार की (वक्ता महोदय पास में रक्खी हुई नर खोपड़ियों की ओर इशारा करके) खोपड़ियों की पूजा करते थे। मृत पुरुषों के मुण्डों को जमाकर अनका उत्सव रचते थे। और मुंह में नित्य रहने वाले "विचार देव" की प्रतिवर्ष बलि चढ़ाते थे। इस सबका तात्पर्य भी यही होता था कि विचारों की पूजा प्राचीन समय से होती चली आई है। अर्थात् संसार में सदा से विचार ही शासन करते चले आरहे हैं ......"।

"चलो ... चलो ... बढ़ो" के शब्द के साथ भीड़ आगे खिसकने लगी। अब यहां से चार मार्ग चारों ओर को फटते थे। एक मार्ग पर लिखा था "भारतीय विचार"। मैं बिना विचारे इधर होलिया, साथ में भीड़ का एक बड़ा भाग भी। मालूम पड़ा भारत का प्राचीन भण्डार पुस्तकों के रूप में जमा है। पुस्तक पर पुस्तक चुनी थी, भोजपत्रों के प्रतिलिपियों के ढेर लगे थे। यत्र तत्र बड़े २ तिलकधारी कथा बांच रहे थे। बीच बीच में भक्तगण "बोलो कृष्ण बलदेव

की जय" के नारे लग रहे थे । इस सब में मेरी बिल्कुल
रुचि न थी, अतः उल्टे पैर लौटा । दूसरी तरफ़ चलो विभा-
ग देखा जिसमें चरखों की घूं घूं से कान फटने लगे ।
लाचार वहां से भी बैरंग ही लौटा, अबकि एक गली में
घुसे तो विविध प्रकार विभूषित पण्डाल दीखे । सभी स्थानों
पर व्याख्यानों की अनवरत झड़ी लगी थी । पागलवत्
श्रोतागण झूम रहे थे. कुछ सुनने की इच्छा हुई, एक
जगह जा बैठे । अन्धाधुन्ध धुंआधार स्पीच की बौछार
आने लगी । - " मुस्लिम संस्कृति और हिन्दू संस्कृति का
संघर्ष देर से चला आरहा है । यही नहीं, अपितु अन्य
भी छोटी मोटी संस्कृतियां बीच बीच में उदय होती रही
और हैं । परन्तु स्थिर रूप से कोई संस्कृति, हिन्दू सं-
स्कृति के समान देरतक न ठहर सकी । उदाहरण के लिए
ईसाइयत का प्रचार भारत में हुआ सही, परन्तु वह
भारतीयता के रंग में रंगता जाता है । और ··· इत्यादि
इत्यादि को छोड़ मैंने आगे रास्ता नापा, एक जगह जो बैठा
---- मेहरबान ! मुस्लिमों का जब तक पाया न जम जायगा
हम चुप नहीं बैठेंगे । हमारी कौम अव्वल से ही ---

(इतने में ही सभा में दंगा शुरू हो जाता है।। आर्य श्रोता एक तरफ बाकी दूसरी ओर। मैं भी इस धक्कामेल से जल्दी ही निकल आगे बढ़ा। फिर एक जगह जा बैठा — सुनने में आया अल्लाहो अकबर; ... हम साफ तौर पर कह देना चाहते हैं कि अगर जल्दी ही आर्यों ने हैदराबाद में अपना रवैया बदल न दिया—

यहां से भी जल्दी ही आगे बढ़े। ज़रा रुका कि बौछार आई — "हैदराबाद ... हैदराबाद में हमारी लड़ाई नागरिक अधिकारों के लिये है और उन्हें हम लेकर ही छोड़ेंगे। हमारा उद्देश्य हृदय परिवर्तन ...।

इसे छोड़ अबकि "सर्वधर्म सम्मेलन के पिण्डाल" में रुकना पड़ा। यहां पर अत्यन्त सूक्ष्म तर्क द्वारा प्रतिपादित किया जा रहा था ... उस परमात्मा का पुत्र प्रभु ईसा मसीह पृथ्वी पर आया और उसने विचार किया कि दुनिया के लोगों को परमात्मा के राज्य में ले जाने के ...। इस प्रकार का कोई भी प्रोग्राम मुझे पसन्द न था इसलिये उठा कर आगे चला। एक खिड़की से निकल विस्तृत मैदान में प्रवेश किया, ठन्डी हवा लगी, ज़रा विश्राम ले एक तरफ चल पड़ा।

सामने "ह्वीलर का बुक स्टाल दीखा। वहां से एक पत्र लेने की इच्छा हुई कि एक छोकरे ने आवाज़ लगाई ..... महायुद्ध की तैयारी। १ मरा .. २ घायल ... देश विदेश के ताजे समाचार ...। कुछ भीड़ उधर भी लपकी। मुझे रास्ता मिला तो मैं जरा आगे निकल गया। अब मैं एक ऐसी जगह था जहां भीड़ अत्यधिक थी। कन्धे से कन्धा छिलता था, लीडरो और व्याख्यातओं की घोर घटा छाई हुई थी। विविध बातों की टर्रबू चारों ओर से दादुर ध्वनि के समान जान पड़ती थी। सभी वातावरण गरम था। एक जगह जाकर देखा कि साक्षात् गान्धी जी विराज रहे हैं। लोग प्रश्न करते हैं. गान्धी जी अपने श्री मुख से उत्तर देते हैं

प्रश्न - स्वराज्य कब मिलेगा ?

गान्धी जी - जब देश इस योग्य होजावेगा।

प्रश्न - भारत में बढ़ती हुई फैशन परस्ती और आवारगी को रोकने का क्या उपाय है ?

गान्धी जी - ब्रह्मचर्य और सादा जीवन।

प्रश्न - हिन्दू लोग मुसलमानो के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करते हैं। इसलिए आपने कोई आन्दोलन खड़ा क्यो नहीं किया ?

इतने में दूसरा प्रश्न - राष्ट्रभाषा प्रचार के विरोधी आन्दोलन को...

इतने में तीसरा प्रश्न - क्या अमुक रियासत का सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय?

चौथा और पांचवां प्रश्न भी - राजकोट के सत्याग्रह की योग्यता राजनीतिक दृष्टि से क्या है?

इस प्रश्न राजी को सुनने की जरा भी इच्छा न थी, अतः यहां से भी सरकना पड़ा, समीपस्थ पण्डाल की शांति से प्रभावित हो उसमें स्थिर रूप से विराज गये। कुछ देर पश्चात् खद्दर का एकमात्र अंगोछा धारण किये हुये क्षीणकाय कोई एक सज्जन व्याख्यान मंच पर पधारे। करतल ध्वनि के मध्य उन्होंने विवेचन करना प्रारम्भ किया।

"अहिंसा को समझने की योग्यता अभी देश में नहीं फिर... धारण करने का समय अभी बहुत दूर है। गान्धी जी के एक अंग्रेज मित्र ने सलाह दी है कि पिछले सत्याग्रहों में देशवासी इस लिए अहिंसक नहीं थे कि उनके हृदयों में अहिंसा का वास था अपितु इसलिये थे कि वे निःशस्त्र थे"। इस सलाह को गान्धी जी ने स्वीकार किया है और वस्तुतः उस अंग्रेज ने अहिंसा का मर्म ठीक समझा।

इसलिये अहिंसा का पाठ अभी देश को सीखना है। यह मत समझो कि इस वक्त लड़ाई बन्द है या दिया सतो का सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया है। अहिंसा की लड़ाई कभी समाप्त नहीं हो सकती। हृदय परिवर्तन करना सत्याग्रह का उद्देश्य है, किसी से द्वेष करना नहीं। एक समय आयगा कि अंग्रेज शासकों का हृदय बदल जावेगा और वे भारत का पूर्ण शासन हमारे हाथो में सौंपकर अपने घर चले जायगे। फिर शायद इंग्लैण्ड में भी अहिंसा के सिद्धान्त पर सरकार स्थापित हो --- ।

इस विचारधारा में गोता लगते ही मेरी बुद्धि चक्कर खाने लगी। अत्यन्त वेग से विचारों का उबाल - आने लगा। मेरे लिये यह समझना कठिन होगया कि क्योंकर अहिंसा से स्वराज्य मिल सकेगा? या कोई लड़ाकू योरोप का वासी अहिंसा का तत्व क्योंकर भारत को सिखा सकता है? पहेली को ज्यों ज्यों सुलझाने लगा त्यों २ वह उलझने लगी। लाचार, मुझे यहां से भी उठना पड़ा और पहेली को सुलझा हुआ देखने की इच्छा से अगले पण्डाल में जा बैठा। यहां पर साफ सुनने में आया— " देश को विचार स्वातन्त्र्य भी प्राप्त नहीं है। आखों पर पट्टी बांधकर साधारण जनता अपने किसी नेता के पीछे चलती है।

यह दशा शोचनीय है। "गान्धीवादी कान्ग्रेस" के विरुद्ध कोई विचार रखना साम्प्रदायिकता समझा जाने लगा है अब समय की यह पुकार है कि लोगों को राजनीतिक विषयों पर स्वतन्त्र विचार रखने का अवसर दिया जावे यह मानी हुई बात है कि गान्धीवाद में अविश्वास रखने वालों की देश में अच्छी संख्या है। उन लोगों में संगठन भी आवश्यक है। दूसरी बात, आज वैदेशिक परिस्थिती अच्छी नहीं हैं। इससे हमें लाभ उठाना चाहिए, एक दम हमें लड़ाई छेड़ देनी चाहिये। केवल घर में बैठकर "कान्ग्रेसी मन्त्रीमण्डलों" के कार्यों के प्रशंसा के पुल बान्धने से काम नहीं चलेगा। इत्यादि २ —

यह विचारधारा गरम २ अनुभव हुई। इसमें गोता लगाने से ऐसा मालूम पड़ा मानो थकान उतर गई विचार का झोंका आया और समझा कि किसलिये गान्धीवाद की निष्क्रिय नीति से थक कर भारत इस नवीन धारा में स्नान करना चाहता है। विचार देवता की पूजा के लिए आगे बढ़े। एक सुसज्जित पण्डाल में जा पहुंचे। सुनने लगे —
"...... सहारा से लेकर सहारनपुर तक। इसीलिये हिन्दुस्तान में पाकिस्तान और पाकिस्तान में हम ....

यह भी कुछ मौराठी जंची। अतः इसको छोड़कर भी आगे बढ़े। यथापूर्व नवीन पण्डाल में घुसे और बैठ गये। चाव से सुनने लगे— "...रूस में प्रजातन्त्र स्थापित हो गया और सफलता पूर्वक चल रहा है। सोवियट रूस के प्रजातन्त्र ने संसार के सामने समाज की व्यवस्था को नए ढंग से रक्खा है। समाज का शासन इस ढंग से स्थापित किया गया है कि उसमें से "छोटा"... "बड़ा" निकल गया है। हिन्दुस्तान में श्रेणी युद्ध को प्रारम्भ हुवे अभी थोड़ा समय हुआ है। श्रेणी युद्ध को यहां चालू करने में सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि यहां पर मजदूरों की संख्या पर्याप्त नहीं, और किसानों से काम इसलिए नहीं चलता कि वे अंग्रेज़ी नहीं जानते होते। जिससे कि रशियन साहित्य का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ सकें। और इसीलिये....।

"कितनी भद्दी और मैली विचार धारा है। पता नहीं किस गन्दे-नाले में से निकली है। यह बड़बड़ाता हुआ मैं और अन्य बहुत से सज्जन पल्ला झाड़ बाहर निकल आए। यथापूर्व आगाड़ी लेकर अगले पण्डाल में घुसे। सानन्द वक्ता महोदय का मुख देखते हुवे सुनने लगे—

"... मानवेन्द्र नाथ राय का गान्धी जी के पहिले रहे ही मतभेद चला आरहा है।

गान्धी वाद की बेसिर पैर की स्कीमों पर हमें प्रारम्भ से ही अश्रद्धा है। फारवर्ड ब्लोक की स्थापना से पूर्व जो हमारा सिद्धान्त था वही अब भी है। हमें .... इस विचार धारा को सुनने वालों की अत्यल्प संख्या पर तरस खाते हुवे और यह विचारते हुवे कि संभव है कि यह विचार धारा सृष्टि के आदि से आई हो हमने यथा पूर्व उसके पण्डाल का रास्ता नापा। अब हम एक कोने वाले तथा कुछ छिपे से पण्डाल में प्रविष्ट हुवे। पण्डाल में बैठे हुवे मनुष्यों की संख्या अधिक न थी। हां व्यवस्था और नियन्त्रण गान्धीवादी पण्डाल की तरह केवल श्रद्धा पर अवलम्बित न था। पण्डाल की सजावट भी कुछ वर्णनीय नहीं। अब हम धैर्य से व्याख्यान सुनने लगे।

"... काल कोठरियों में सड़ सड़ कर जेलों के नारकीय जीवन में उमंग भरी जवानी को बिता कर और फांसी के तख्तों पर हंसते हुवे झूलकर सैकड़ों युवकों ने प्राण गवां दिये। और आखिर भारतीय राजनीति के आन्दोलन के मूल भूत "बङ्गाल विच्छेद" के काले निर्णय को लोगों ने भङ्ग करा दिया। आज समय बदल गया है, और कुछ लोग यह कहने लगे हैं कि भगतसिंह आदि पागल थे

परन्तु मैं कहता हूं कि आजकल भगतसिंह जैसे दो चार पागल और पैदा होजावें तो पागलों का क्या मूल्य होता है, मालूम पड़ जाय। इस समय कान्ग्रेस का स्वतन्त्रता का ध्येय मन्त्रिमण्डलों की गद्देदार चौड़ी कुर्सियों के पीछे छिप गया है। भारतीय सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा का "रोमान्चकारी इतिहास" नामक पुस्तक आज भी ज़ब्त ..."।

आगे सुनने की हमें हिम्मत न हुई, और हम उक्त उपरोक्त विचार धारा में अपने अश्रु जल के दो बूंद श्रद्धा सहित मिला चलते बने। अब किसी भी पण्डाल में जाने की इच्छा शेष न थी। किन्तु विचारों की बाढ़ शैतान की आंत की तरह विकराल रूप धारण करती जारही थी। अनेक क्रान्तिकारियों की विचार धारा ही खोपड़ी में चक्कर काटने लगी, अनेकों प्रश्न - । क्या कभी किसी क्रान्तिकारी का इतना स्वागत हुआ जितना कि आजकल किसी कांग्रेसी लीडर का होजाता है ? क्या उनका भी कई घोड़ियों की गाड़ी का जलूस निकला ?

सभी का उत्तर नकारात्मक है। प्रश्न हुआ फिर ! उत्तर मिला - " फिर क्या क्रान्तिकारी का कभी यह उद्देश्य ही नहीं होता कि वह इस प्रकार का स्वागत चाहे ... लेकिन सब फ़िज़ूल ।

इसी विचार से गुत्थम गुत्था कर रहा था कि इतने में वही पूर्व परिचित बाल रहित खोपड़ी वाला आपहुंचा । उसने फिर आते ही पूछा — " अरे ? अभी तक यहीं हैं ? क्या यह सब कुछ देख लिया या देखना बाकी भी है ?

" - बहुत कुछ देख लिया और बाकी भी है । पर अब देखना कुछ नहीं चाहता " । मैंने उत्तर दिया । " देखो ! जो मनुष्य एक बार इस "विचार प्रदर्शिनी" में घुस जाता है वह सदा इसी में उलझे रहता है । अतः अब तुम इसी निकल नहीं पाओगे । मैंने जोर से कहा " मैं बलपूर्वक बाहर ही जाऊंगा " देखो ? अभी इसी द्वार से बाहर जाता हूं ।

ज्योंहि जोर लगाया कि मैं चारपाई पर से लुढ़क पड़ा । नींद खुल गई । अब सब दृश्य साफ था अब मन में केवल यही विचार आया कि अभी तक के सभी विचार स्वप्न के थे ।

कहां कितना सुवर्ण है

गत १९३८ के अन्त में पोकपदे निम्नि न राष्ट्रों में कितना सोना था, उसका विवरण उपयुक्त है :-

इंगलैण्ड	३४४ करोड़	२०	लाख	डॉलर
फ्रांस	२६६ ,,	६०	,,	,,
बैलजियम	६२ ,,	५०	,,	,,
हालैण्ड	९९ ,,	५०	,,	,,
स्वीजरलैण्ड	६९ ,,	९८	,,	,,
जर्मनी	२ ,,	९०	,,	,,
इटली	१९ ,,	३०	,,	,,

अमेरिका और जापान के क्रमशः १ हजार ६१० करोड़ डालर और १६ करोड़ ८० लाख डालर।

उद्धृत —

भारत में खद्दर की खपत

१९३६ में भारतीय चरखा संघ के तत्वावधान में खादी तैयार करने के १० हजार २८० केन्द्र थे। १९३८ में उन केन्द्रों की संख्या बढ़कर १३ हजार हो गयी। उन सब केन्द्रों में १९३८ में १ करोड़ २८ लाख गज खद्दर तैयार हुआ था। १९३६ में कत्तिनों की संख्या १ लाख ६२ हजार और बुनकरों की १३ हजार थी। वही १९३८ में क्रमशः २ लाख ८८ हजार और १८,००० हो गयी। कत्तिनों और बुनकरों को मजूरी में गत वर्ष ३० लाख रुपया दिया गया था

उद्धृत —

विभिन्न प्रान्तों के जनसंख्या वृद्धि -

~~सन्~~ १९३८ में भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रति मील मनुष्य की जन्म और मृत्यु की संख्या का हिसाब था, और प्रत्येक प्रान्त में जनसंख्या की वृद्धि किस प्रकार हुई, उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

प्रान्त	प्रतिमील जन्मसंख्या	प्रतिमील मृत्युसंख्या	प्रतिमील जनसंख्या की वृद्धि
पंजाब	४१.८४	२१.३४	२०.५०
बम्बई	४०.६८	२६.५०	१३.१८
मध्यप्रदेश	४४.६५	३२.६३	८.०२
युक्त प्रदेश	३५.९२	२१.३८	१४.५४
मद्रास	३८.६२	२३.९९	१४.६३
उड़ीसा	३४.५६	२८.६३	६.२०
बंगाल	३४.२०	३४.६०	९.२०
बिहार	३४.१३	२२.५३	११.६०
आसाम	३१.३१	२२.२१	९.१०
सीमाप्रदेश	३०.६४	२१.२६	९.८६
सिन्ध	१९.९६	१२.०९	७.८६

कांटों पर नाटक खेला

— श्री "करुणेश"

निस्तीर्ण विश्व पर किसकी, करुणार्द्र कथा है रोती
नैराश्य दुःखी जीवन में, है कौन पिरोता मोती
अन्तर प्रदेश में किसके, उठला कर भीषण पीड़ा
सर्वस्व लुटा क्यों करती, भीगी पलकों पर क्रीड़ा
यह मर्मभरी आहों से, वेदना चित्र क्यों खींचा
तुम कौन! सिसकियां भरते, क्यों आज छिपे सिर नीचा
अरे! ज्ञात नहीं क्या कुछ भी, ये भग्न हृदय का धन है
इन जीर्ण शीर्ण कृषकों का, सर्वस्व यही क्रन्दन है
जठरानल में जल जल कर, हम कहो कौन सुख पाते
हा! तरस-तरस दाने को, यों निराहार सो जाते
अनश्वर अस्थि-पंजर को, चिथड़ों से ही ढक लेते

उस घासफूस के घर में, जीवन नैया हैं खेते
हम शीत, तापक्रम, वर्षा सब, जर्जर शरीर पर सहते
खाना समान पशु के रहना, सौभाग्य उसी को कहते
हैं विश्वदीनता हरते, पर दीन बने रोते हैं
दुर्दम कठोर रोड़ों पर, असहाय हाय सोते हैं
शिशु फूट-फूट रोते हैं, कहते मां! लाओ रोटी
निर्धनों के धन सो जाओ, कह-कर दुखिया मां रोती
हो क्षुधित कुसुम से बालक, लाखों प्रतिवत्सर मरते
पर धनी निठुर हंसते हैं, अपनी तिजोरियां भरते
नित नव्य आपदाओं ने, करके विराट आयोजन
है छीन लिया सुख सारा, गौरव-प्रशस्यमय भोजन
हा! उदासीनता का भी, साम्राज्य हृदय पर छाया
हम दीनहीन दुःखियों का, रोना बस उसको भाया
इस मूक वेदना का क्या, परिचय कोई जानेगा
उद्भ्रान्त हृदय कैसा है, दुखिया ही पहचानेगा
नहिं मिला स्वप्न में भी सुख, दुःखों का रहा झमेला
जीवन में सभी गवां कर, कांटों पर नाटक खेला

— o —

- श्री रणवीर जी [illegible]

यदि हम से पूछा जाए कि आज भारत-वर्ष की स्वराज्य के बाद भी कोई पेचीदा समस्या क्या है तो हम कहेंगे बेकारी। आज भारत की ७५% आबादी कृषी खेती अपना निर्वाह कर रही है और अधिकाधिक आदमी कृषी की ओर झुक रहे हैं, जिसके कारण से आदमियों की संख्या बढ़ रही है और किसान के भूमि का हिस्सा प्रत्येक किसान के भाग में कम कम होता जाता है। इस अवस्था में अधिकांश किसानों के पास तो पूरी एक एकड़ ज़मीन भी नहीं होती इसी में से उनको अपना [illegible] लगान और इधर उधर के खर्च करने होते हैं, स्पष्ट

इंग्लैंड के मजदूर का आधा रोजगार हिन्दुस्तान के हाथ में है इसलिए उन्हें पशुओं के दूध के लाभ न लेने पर उनको मार कर उनके चमड़े और मांस से वे लाखों रुपये कमाते हैं। परन्तु हिन्दुस्तान जैसे देश के लिए यह लाभ नहीं है। इसके विपरीत हिन्दुस्तान को चाहे अन्य किसी चीज की आवश्यकता न हो परन्तु कपड़े और अन्न के बिना तो यह जीवन असम्भव ही है। इसलिए चर्खा ही एक ऐसी चीज है जिसकी मदद करोड़ों मनुष्य तेजी के साथ रहती है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि चर्खा ही एक ऐसी चीज है जिससे भारत की बेकारी में कम से कम कुछ कमी तो अवश्य होती है यहां तक और युक्ति रखी जाती है कि चर्खे से आमदनी बहुत थोड़ी होती है। इसके विषय में हम इतना ही कह सकते हैं कि चर्खा ऐसी चीज नहीं है कि जिससे आदमी धनी हो सके। यदि कोई चर्खे से धनी होने की आशा रखता हो तो यह अत्यन्त मूर्खता ही है फिर भी यदि हम मान लें कि एक आदमी को अपना कौटुम्ब उठाना पालन करते हुए चर्खे से १ आना प्रतिदिन की आमदनी

११६५० लाख टं. कुल चाहिये। यदि एक आदमी पीछे
२५ टं. कुल करें तो अगले वर्ष ४ करोड़ ६६ लाख
आदमियों को कर्ज चलाना पड़ेगा। अब इनमें छोटे
बच्चों, बूढ़े वालों, बुड्ढों को छोड़ दें तो हिन्दुस्तान
के किसानों की आबादी में १० वर्ष से कम उम्र
वाले बालकों या ६ करोड़ लोगों घटा देने पर उनकी
सारी आबादी की आधी संख्या के बराबर यह लोग
होते हैं। इनके अलावा मिलों में करीब ४०-५०
करोड़ की पूंजी भी लगानी पड़ेगी इसलिए बहुत ही
थोड़ी पूंजी लगानी पड़ेगी। इसका मतलब यह कि
मिल की अपेक्षा चर्खे से भारत के करोड़ों ही
बेकारों को और गरीब किसानों को काम मिल
सकता है। इसी से इनकी उपयोगिता है कि यह अकाल
के दिनों में बहुत ही अधिक लाभदायक है यदि इसे
"अकाल का बीमा" कहें तो कोई अतिशयोक्ति
नहीं होगी। अभी कुछ वर्ष हुए बंगाल में दुर्भि-
क्ष की हालत में एक भयंकर काण्ड हुआ था जिसमें
यह पता लगा था कि चर्खा जीवन देने को कितना
काम दे रहा है - I. अकालपीड़ित क्षेत्रों में चर्खा योजना

हम पैसे खर्च करते हैं और दूसरा हमें बढ़िया चीज़ भी नहीं मिलती। दूसरी ओर मिल के कपड़ों में कम पैसों में अधिक अच्छी चीज़ मिलती है। इस विषय में एक ही बात कहनी है कि मनुष्य जितना अच्छा और महीन कपड़ा तैयार कर सकता है उतना मिलें तैयार नहीं कर सकतीं। इसके विषय में ढाका प्रसिद्ध ही रहा है - आजकल मिलें थोड़े ही थीं मिलें फिर भी इतने अच्छे और महीन कपड़े बनते थे कि एक थान का थान बाँस की पतली नली में रखा जाता था इससे अधिक उत्कृष्टता का नमूना और क्या हो सकता है?

दूसरी बात है स्वार्थ साधना। इससे स्वार्थ साधने वाले मिलों के मालिक होने से उतना ही मिलता बढ़ाएँगे जितना कि उन को अधिक तादाद में खरीद कर निकाले जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से भी खादी विशेष महत्व रखती है यदि कोई आदमी रोज़ एक गज़ के हिसाब से

कते तो सालभर के बद अपने परिजनों के लायक
कपड़े तैयार कर सकता है और इस अवस्था में
उसे सिर्फ कपड़े की बुनाई ही देनी होगी और
खादी मिल के कपड़े से भी सस्ती पड़ेगी और किसान
लोग का लेने पर आदमी को प्रचलित अन्य मिलके
सस्ते कपड़े खरीदने की ओर हरगिज नहीं जायेगा
इसप्रकार हम सभी पर हरएक दृष्टिकोण से विचार
कर इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि मौजूदा परिस्थ-
तियों में और आगे भी जनता की भारत की
बेकारी हटाने के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है और
रहेगा।

प्रताप और मुग़लों की नीति

ले. ब्र. नरेन्द्र जी १४

राज्य परिषद् (काउंसिल ऑफ स्टेट) की कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष श्रीयुत रामदास जी पन्तलु ने एक बार एक शिक्षण संस्था की इतिहास की कक्षा में विद्यार्थियों से पूछा था — भारत का भला अंग्रेजों के शासन में अधिक हुआ या मुस्लिम काल में। एक विद्यार्थी ने एकदम उत्तर दिया — "मुस्लिम काल में भारत का अधिक भला हुआ है।" माननीय पन्तलु जी ने कहा — इस बारे में तुम कोई प्रमाण उपस्थित कर सकते हो? वह विद्यार्थी पहले तो कुछ हिचकिचाया फिर उसने कुछ डरते हुए कहा — मेरे पास इस बारे में कोई प्रमाण नहीं, कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं जिसके द्वारा

जिसके द्वारा मैं अपनी बात को सिद्ध कर सकूँ. किन्तु इतना जरूर कह सकता हूँ कि मुस्लिम शासन में प्रजा और राजा के सम्बन्ध का माध्यम तलवार थी- अंग्रेजों के शासन में वही माध्यम कूटनीति रूप में परिवर्तित हो गया है।

माननीय पन्त जी ने हंस कर कहा - "मुख में राम बगल में छुरी। अंग्रेजों की नीति है और मुस्लिम शासन का आधार शक्ति में निहित था। पन्त जी ने कहा - मैं तुम्हारे इन विचारों से सहमत तो नहीं हूँ पर इतना जरूर है कि मुस्लिम शासन में स्वतः प्रजा को शासन का विरोध सीखना. और अंग्रेजी शासन में यह प्रतिक्रिया शासन से सीधी सम्बन्धित नहीं है।

+ + + +

मुगल शासन भारत में शताब्दियों तक रहा.

है इसका आधार धर्म तथा तलवार रहा है। मुस्लिम शासन शक्तिशाली केन्द्रीय आधार पर खड़ा था। केन्द्रीय शक्ति जब तक मजबूत रहती थी. शासन चक्र अच्छी तरह चलता जाता था. परन्तु ज्यों ही बागडोर जब कमजोर हाथों में पड़ जाती थी सारी व्यवस्था छिन्न भिन्न होजाती थी.। यही कारण है कि मुस्लिम शासन का इतिहास गुलाम खिलजी, तुगलक, लोदी, मुगल आदि विभिन्न वंशों की शक्ति प्रदर्शन का इतिहास है। एक वंश कमजोर होता था. दूसरा तैयार होकर उसका स्थान लेलेता था।

मुस्लिम शासन की इस वास्तविकता ध्यान से ही अकबर की महान नीति को देखा जासकता है। अकबर ने यह देखलिया था कि बिना हिन्दू प्रजा के सहयोग के मुगल शासन स्थिर नहीं होसकता है उसने हिन्दू प्रजा से सहिष्णुता की नीति को व्यवहार में लाया. उसने सर्व प्रथम मुस्लिम शासन में प्रचलित जजिया कर को उठा दिया। हिन्दुओं पर से अनुचित यात्रा कर भी बन्द करवादिया। उसने

चुटकुला

एक दफा अकबर ने बीरबल से ~~कुछ~~ कहा कि "बीरबल, अगर मैं दो बार दफा पानी में हाथ डालूँ तो मुझे जुकाम हो जाता है।"

इस पर बीरबल बोला कि महाराज, शायद आप फिर तो पाखाने के बाद 'आबदस्त' भी न लेते होंगे।

विद्यार्थी

छोटी सी नैया लगे उस पार.

लख है जो उस सुमहान 'अक्षय वट' की सुशीतल छाया में बैठ कर नहीं पा सकता।

समय स्रोत का कूड़ा और काल की जमी धूल को साधना से हटा कर यदि हम देखते हैं तो हमें यही भारत भूमि नाना महर्षियों की सुमधुर वेद-ध्वनि की याद दिला देती है।

गीता के अत्यन्त प्रसिद्ध यदा यदा हि धर्मस्य० के अनुसार समय पाकर भारत के पश्चिमोत्तर सीमा पश्चिमप्रान्त में नव भारत के भावी शुभ दिन के प्रथम उषः काल की झलक दिखाई दी। मेघाच्छन्न आकाश के मेघों के फटने पर सहसा बाल-रवि के उदय होने के समान अज्ञानान्धकार रूपी मेघों को फाड़ कर विद्या मरीचि माली विद्यासागर बाल शिशु के रूप में प्रादुर्भूत हुए।

महात्मा विद्यासागर का जन्म बड़े ही विकट अनाचार-पूर्ण समय में हुआ था। उनके जीवन का तथा उनके सुधारों का पुंखानुपुंख रूप से वर्णन करना लेखनी और वाणी दोनों की सामर्थ्य से बाहर-परे की बात है। ऐसे महापुरुषों के गुणों और जीवन के प्रति आश्चर्य विमुग्ध और प्रेम पुलकित होकर ही संस्कृत कवि लिख गए हैं कि—:

"तदपि तव गुणानां देव (ईश) पारं न याति।"

महात्मा विद्यासागर को जन्म देने वाले महासौभाग्यशील पिता का नाम श्री ठाकुर-दास तथा स्नेहमयी माता का नाम श्रीमती भगवती देवी था।

आश्विन-कृष्णा द्वादशी मंगलवार को दोपहर के समय सन् १८२० में इस महात्मा ने अपना प्रथम दर्शन पापपूर्ण-प्रजाजनों को दिखाकर भागीरथी के जल के समान सचमुच पवित्र और शुद्ध कर दिया और मेदिनीपुर जिले का अन्तर्गत वीरसिंह नामक गाँव तो वस्तुतः स्वर्गभूमि ही बनाया और अनन्तकाल तक उसका नाम बड़े ही आदर और प्रेम से लिया जायगा। महात्मा विद्यासागर को जीवनका प्रत्येक क्षण गरीबी में ही गुजारा। सारा घर ही गरीब था। फिर भी उस अलौकिक लेखनी ने अपना ऐसा जादू किया कि सारा भारत ही नहीं - ब्रिटिश-साम्राज्य भी उसमें फंस गया। उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगा।

माता-पिता का अनन्य भक्त, परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ उपासक, सम्पन्न पतियों का प्रिय, देश-वासियों का दुलारा वह महात्मा उस कलियुग में मिलना सर्वथा असम्भव है। उनके दिवंगत होने के बाद तो आजतक

कोई भी उनका उच्च स्थान ग्रहण ही नहीं कर सका है।

उनका पारिवारिक जीवन तथा नित्य-जीवन कितना आदर्श जनक था। यह बताने के लिए अलग एक निश्चित विषय और समय चाहिए। उनके जीवन को पढ़ कर उनका कट्टर से कट्टर दुश्मन भी - पत्थर का कलेजा भी पिघलकर एकदम यह कह देगा - दावे के साथ कि - "इनके जैसा मातृ-पितृ भक्त और सहृदय तथा स्वाधीन विचारों वाला पुरुष ढूँढने से भी न मिलेगा।" यह बात मन-गढन्त नहीं है परन्तु अक्षरशः सत्य है। इसके हजारों प्रमाण उनके जीवन में मिलते हैं। उनको यहीं समाप्त कर अब उनके सामाजिक सुधारों का पर्याप्त दीर्घ-दृष्टि से पर्यवलोकन तथा सिंहावलोकन किया जाता है।

महात्मा ईश्वरचन्द्र के सामाजिक सुधार ऐसे हैं जो कि अन्य सब समाज को उठाने वाले सुधारों के आधार भूत कहे जा सकते हैं। उनके मुख्य २ सुधारों का ही यहां पर वर्णन किया जायगा। उनके मुख्य-तम सुधार 1. विधवा पुनर्विवाह का आन्दोलन 2 बहुविवाह प्रथानिरोध का आन्दोलन 3, सामाजिक शिक्षा व ज्ञान का प्रचार 4 जाति भेद भाव के अभाव का आन्दोलन 5 तन

गत धन से गरीबों की सहायता का आन्दोलन। द. अशिक्षा का सुधारान्दोलन। ७. बंगला साहित्य का पुनर्निर्माणान्दोलन। ८. लोक सेवा तथा शारीरिक सुधारान्दोलन आदि २।

स्वर्गीय राममोहन राय के पश्चात् बंगाल देश के सद्भाग्य ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ही थे। वे ही अन्तिम उज्ज्वल हुए हैं। उनके बाद आजतक उनका स्थान कोई नहीं ले सका है।

सृष्टि के सम्पूर्ण इतिहास में यदि ऐसा व्यक्ति ढूंढा जाय, जिसने कि अपने देश - धर्म और जाति की तन - मन - और धन से वस्तुतः पूरी और निष्काम सेवा की है और परोपकार पूर्ण जीवन व्यतीत किया है तो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम - समाज परिस्थिति आदि सब की उपेक्षा करके सहसा सबके ऊपर और आगे स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। सत्ययुग और त्रेता के महापुरुष भी उनके मुकाबले में फीके प्रतीत होते हैं। इस कथन में लेशमात्र भी अत्युक्ति नहीं है

उनके सामाजिक सुधार ये हैं-:

बंगला साहित्य में विद्यासागर-:

जातीय जीवन के प्रधान लक्षण दो हैं - धर्म और भाषा।

जिस जाति का एक धर्म नहीं है, जिस जाति का समाज शरीर-धर्म की आलोचना में सिर से पैर तक उद्वेलित नहीं होता, जिस जाति के धर्म सम्बन्धी आन्दोलन की लहरों से समाज शरीर में सजीवता की झलक नहीं पाई जाती वह जाति मुर्दा है। उस जाति से जातीय जीवन के संगठन में सहायता मिल ही नहीं सकती। इसी प्रकार माता की गोद में दूध पीते समय सबसे पहले जिस भाषा में माता को सम्बोधन करना या पुकारना सीखता है; जिस भाषा से उस की जिह्वा की जड़ता दूर हो जाती है, जिस भाषा में शोक और दुःख प्रकट किया जाता है, जिस भाषा में छोटे २ बालक और बालिकाएँ आनन्द मग्न होकर जय पराजय का परिचय देते हैं, जो भाषा बचपन के क्रीड़ा कौतुक और आनन्द प्रमोद के साथ सीखी जाती है, आनन्द और कष्ट की कहानी अपने बन्धुओं से जिस भाषा में कही जाती है वही उसकी मातृभाषा है। माता और मातृ-भाषा एक ही चीज़ है। जिस जाति की मातृभाषा एक नहीं, जिस जाति के लोग एक शब्द और एक स्वर से माता को पुकार नहीं सकते उनके जातीय जीवन की ~~नाट्य~~ नाट्यशाला में उपस्थित

होने में अभी बहुत विलम्ब है।

बंगला साहित्य को सर्व-साधारण देशवासियों के योग्य बनाने में सबसे पूर्व विद्यापति, चण्डीदास, उनके बाद चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावनदास, फिर चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज और चण्डी काव्य के लेखक मुकुन्दराम चक्रवर्ती आदि प्रवृत्त हुए थे। इन सब कवियों में मुकुन्दराम सबसे अधिक भाषा प्रयोग में सफल हुए कहे जा सकते हैं। उन्होंने खुद अपनी कविता को 'स्वर्णमण्डित गजदन्त' कहा है। एक समालोचक ने लिखा है कि उनकी यह अपनी उक्ति होने पर भी बहुत ही समीचीन है।

इसके उपरान्त बंगाल के आदिकवि कृत्तिवास और काशीराम ने रामायण और महाभारत बंगला में लिख कर हमको अपना चिरऋणी बनाया। हमारे देश के छोटे और निम्न श्रेणी के लोग प्रायः नम्र और धार्मिक हैं, इसका कारण महाभारत और रामायण ही हैं। इन दोनों को क्रमशः बंगाल में वाल्मीकि और व्यास का सा श्रेय तथा उच्च स्थान प्राप्त है। इसके बाद रामप्रसाद और रायगुणाकर बंगाल के प्रसिद्ध गवैये हुए। इन्हीं के संगीत

सब से पूर्व बंगला भाषा में रचे गए थे।

बंगाल में अंग्रेजी-राज्य का सूत्र-पात हुए कुछ अधिक डेढ़ सौ वर्ष होते हैं। सन् १७७८ में चार्ल्स विल्किन्स ने बंगला अक्षर बनाये थे। हालहेड साहब अंग्रेज का व्याकरण सबसे पूर्व बंगला में उसी प्रेस में छपा। सन् १७९३ में एच. पी. फार्स्टर ने बंगला भाषा का कोश तथा लार्ड कार्नवालिस के संगृहीत और अनुमोदित कानूनों का बंगला में अनुवाद किया।

श्रीरामपुर के पादरी सब से अधिक बंगला के प्रचारक सिद्ध हुए हैं। सन् १८०० में अंग्रेज सिविलियनों को बंगला की शिक्षा देने के हेतु फोर्ट-विलियम college की कलकत्ता में स्थापना की गई थी। रामराम राजीवलोचनादि बंगाली लेखकों ने प्रारम्भिक बंगला पुस्तकें पाठार्थ रची थीं पर यदि उनको आज पढ़ कर देखें तो हम बिना हँसे रह न सकेंगे।

बहुत लोगों की धारणा है कि ब्राह्मसमाज के संस्थापक स्वर्गीय राजा राममोहन राय ही बंगला गद्य-रचना के पथ-प्रदर्शक हैं पर बंगाल के Govt. के Librarian श्री

हरप्रसाद शास्त्री से ज्ञात हुआ कि राममोहन राय के इस क्षेत्र में पदार्पण करने से पूर्व भी उनके पास बंगला की कई पुस्तकें छपी हुई थीं जो कि काफी प्राचीन समय की प्रतीत होती हैं। उनके पत्र से या स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्व. राममोहनराय से पूर्व भी बंगला साहित्य के अच्छे ग्रन्थ-रत्न विद्यमान थे- पर वे अज्ञात दशा में थे। राममोहनराय को यदि ब्रह्म-ज्ञान प्रचार और शास्त्रों के अर्थ प्रचार करने के योग्य गद्य लिखने का प्रवर्तक कहें तो शायद किसी के साथ अन्याय न होगा। राममोहनराय के अनुवर्ती श्री. गौरीशंकर भट्टाचार्य जी गद्य-रचना के प्रवर्तक समझे जाते हैं। इन सब बंगला भाषा कवियों और कतिपय चुने हुए गद्य लेखकों के होने पर भी जो सुमधुर सुललित भाषा आज बंगालियों के कानों में अमृत की वर्षा करती है, जिसके भी सम्पादन के लिए अतुल प्रतिभाशाली बंकिम चन्द्र के लेखनी उठाई और उसे अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया; जिसका माधुर्य बढ़ाने के लिए रायबहादुर कालीप्रसन्न घोष ने अपना जीवन अर्पण कर दिया और जिसकी सेवा में आज बंगीय अनेक सपूत लगे हुए हैं उसके संगठन और संभालने तथा उसके श्वासहीन शरीर में प्राण-संचार करने के लिए हम उस महात्मा विद्यासागर के ऋणी हैं जिन्होंने कि अपने हृदय का रक्त चढ़ाकर, बहुत चिन्ता और परिश्रम करके, अपनी कन्या के समान भाषा का लालन-पालन किया। उन्होंने ही महर्षि कण्व की तरह 'शकुन्तला' का पालन किया है। उन्हों ने भी

वाल्मीकि की भाँति सीता के आँसू बनवास में पोंछे। उनके आश्रम में सीता और शकुन्तला के समान शोभित बंगभाषा कई ही गौरव को प्राप्त हुई।

पं. विद्यासागर जी का पहला ग्रन्थ 'वासुदेव चरित' है परन्तु उनकी प्रथम प्रकाशित पुस्तक वेताल पंचविंशति है। महाकवि शेक्सपियर के जीवन भर में सिर्फ 'पैराडाइज लास्ट' का आदर नहीं हुआ था। इसी प्रकार फोर्ट विलियम कालेज में पाठ्यपुस्तक के तौर पर यह पुस्तक रखी जाय या नहीं इस विषय पर एक महालेखक को भी बड़े आदमियों ने नहीं पूछा, पर विदेशी अंग्रेजों ने ही सर्वप्रथम उनकी प्रथम पुस्तक का आदर करके पाठ्य पुस्तक के तौर पर रखा।

इस पुस्तक का तथा अभिज्ञानशाकुन्तल नामक प्रसिद्ध पुस्तक का अनुवाद - ये दोनों पुस्तकें आज भी बंगला साहित्य में अत्यन्तोत्कृष्ट रचनाओं में समझी जाती हैं।

'विधवा विवाह विषयक पुस्तक', 'सीतावनवासादि' बहुत सी पुस्तकें विद्यासागर ने लिखीं। एक के बाद एक पुस्तक में उनकी विद्वता की ओर बढ़ती ही जाती थी। इनके कुल ग्रन्थ 52 हैं। बालकों के लिए सुबोध पुस्तकें बनाना बड़ा कठिन काम है। विद्यासागर ने ऐसी बहुत सी पुस्तकें बनाकर अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। संस्कृत का अनुवाद इसका उज्ज्वल प्रमाण है।

विद्यासागर से पहले बंगला साहित्य 'साहित्य' नामके योग्य ही न था। उनसे पहले साहित्य की कितनी बुरी हालत थी और उनकी बेतालपचीसी ने साहित्य संसार में कैसा युगान्तर उपस्थित कर दिया, इसके सम्बन्ध में पण्डित रामगति न्यायरत्न महाशय लिखते हैं कि — "इस समय जो सरल सुश्राव्य संस्कृत शब्दमयी बंगला भाषा लिखने की शुद्ध रीति प्रचलित हुई है इसका कारण पं. विद्यासागर की बेताल-पचीसी ही है। बेताल-पचीसी के पहले वैसी भाषा नहीं लिखी जाती थी, इसके जन्मदाता विद्यासागर ही हैं।"

विराम चिह्न, विस्मयादि चिह्नादि का सबसे पूर्व बंगला भाषा में प्रचार इन्हीं महात्मा विद्यासागर ही का है।

साहित्य चर्चा में लोगों की रुचि पैदा करने और लोकशिक्षा का मार्ग सुगम और सहज साध्य बनाने के जितने उपाय हैं, उनमें समाचारपत्रों का प्रचार एक प्रधान उपाय है। इनके द्वारा बहुत ही थोड़े दिनों में इस देश की जातीय उन्नति में युगान्तर उपस्थित हो गया। समाचारपत्रों में उपन्यास, आख्यायिका, समाजतत्व, इतिहास और विज्ञान के अनेक लेख प्रकाशित होने के कारण उनके पाठक लोग हमेशा अगली संख्या देखने के लिए उत्सुक बने रहते हैं। जिस समाचार-पत्र को पढ़ने के लिए लोगों को जितना

अगर होता है उतनी जनसमाज पर प्रभाव डालने की ताकत भी उतनी ही अधिक होती है। यह सच है कि विद्यासागर से पहले भी अनेक पत्र बंगला में निकलते थे, परन्तु ऊँचे दर्जे का सर्वजनप्रिय पत्र भी पहले-पहल विद्यासागर ने ही निकाला था उस पत्र का नाम 'सोम-प्रकाश' था। जैसे वर्तमान बंगला गद्य-ग्रन्थों की भाषा का आदर्श बैताल-पचीसी है वैसे ही ऊँचे दर्जे के सुरुचि-संगत और प्रांजल भाषा में लिखे गये बंगला अखबारों का पथ-प्रदर्शक 'सोम-प्रकाश' है। विद्वान् राजनारायण बाबू ने अपनी "बंगला भाषा और साहित्य" शीर्षक वक्तृता में कहा है "अब हम बंगला भाषा के जन्मदाता माननीय श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी और अक्षय उपस्थित होते हैं। अनेक लोगों को मालूम नहीं है कि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और विद्यासागर ने बंगला के उद्भट लेखक अक्षय-कुमार दत्त का कितना उपकार किया है। अक्षय बाबू के लेख को पहले-पहल ये ही दोनों महाशय देखकर शुद्ध कर देते थे। विद्यासागर के संस्कृत साहित्य विषयक प्रस्ताव और विधवा विवाह प्रस्ताव को पढ़कर यह धारणा एकदम बदलनी पड़ती है कि विद्यासागर में उद्भाविनी शक्ति ही नहीं थी और जो कुछ उन्होंने लिखा है केवल अनुवाद मात्र है। विद्यासागर ने बंगला के गठन और परिमार्जन का बहुत कुछ काम किया है। बंगला भाषा उनके निकट बहुत कुछ

मानते हैं। स्व. पूर्णचन्द्र-मित्र की ग्रन्थावली की भूमिका में रायबहादुर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय सी. आई. ई. महोदय लिखते हैं- इस संस्कृतमयी भाषा को पहले-पहल महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बाबू अक्षयकुमार दत्त ने सहजबोध्य-मधुर शब्दों से अलंकृत और श्रीमण्डित बनाया। संस्कृत की अनुगामिनी होने पर भी स्वभाव का विद्यासागर की भाषा अत्यन्त मधुर और मनोहर है। उनके पहले कोई ऐसा मधुर गद्य बंगला में न कोई लिख सकते हैं और न आगे कोई लिख सकेगा।

श्री चण्डीचरण बन्द्योपाध्याय से एक बार प्रसंगवश बंकिम बाबू ने कहा था कि - विद्यासागर के हाथों से गठित और सुसंस्कृत भाषा ही हम लोगों का मूलधन है। उन्हीं की सम्पत्ति लेकर आज हम बंगला साहित्य की श्रीवृद्धि का प्रयत्न कर रहे हैं।

अन्त में विद्यासागर की साहित्य प्रतिभा को बहुत से ग्रन्थों के लेखक बाबू रजनीकान्त गुप्त के "महर्षि-ईश्वरचन्द्र विद्यासागर" नामक लेख में दी गई सम्मति को उद्धृत कर इस साहित्य चर्चा को यहीं पर समाप्त करूँगा। वे लिखते हैं-

विद्यासागर और किसी काम में हाथ न डालते तो भी वे अपनी अमृतमयी लेखनी से निकली ग्रन्थावली के द्वारा बंगसाहित्य

से चिरकाल तक ऋणी बने रहते। वे बंगला साहित्य के पिता न होने पर भी स्नेहमयी माता की तरह उसके पोषक और उसे संवारने-निखारने वाले अवश्य हैं। उन्हीं के प्रयत्न से गद्य-साहित्य की उन्नति और पुष्टि हुई है। दशभुजा दुर्गा की प्रतिमा के

रस्सी के ढांचे पर मिट्टी लेपी गई थी। विद्यासागर ने उस मिट्टी को चिकनाकर, उस मूर्ति पर रंग फेरकर उसे प्रकाशित और श्रीलावण्य और मनोरम बना दिया। उनके अपूर्ण महाभारत और बैताल पचीसी की भाषा में जैसी ओजस्विता और शब्दप्रयोग वैचित्र्य देखपड़ता है वैसी ही उनके सीता वनवास और शकुन्तला के ललितपद विन्यास के साथ असाधारण माधुर्य गुण उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। उनमें गद्यरचना की असाधारण शक्ति थी, उसका बढ़िया उदाहरण उनका 'सीता वनवास' और 'शकुन्तला' है।

स्त्रीशिक्षा और विद्यासागर- बंगदेश में सबसे पहले स्त्री शिक्षा प्रचार करने वाले प्रातःस्मरणीय भारतबन्धु J.E.D बैथून साहब थे। बंगाल की १८२० सन् की शिक्षा रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि उन्होंने उत्तीर्ण गरीब ४० विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर और भी अपने स्त्रीशिक्षा को प्रोत्साहन और स्फूर्तिमय जीवन प्रदान किया था।

निश्चय ही जो गुरु होता है वैसा ही शिष्य भी मिल जाता है। और यही सार्थकता की सूचना रखती

जाती है। बेथून साहब आपको खूब पहचानते थे। विद्यासागर की महत्ता इसी बात से समझी जा सकती है कि वे ही साहब महोदय की नज़रों में ऊँचे थे। बेथून साहब के स्त्रीशिक्षा में प्राण रहने वाले महात्मा विद्यासागर ही थे।

एक परीक्षा में पं. विद्यासागर जी ने बालिकाओं को "स्त्री शिक्षा की आवश्यकता" पर निबन्ध लिखकर प्रथम आने वाली बालिका को उचित पुरस्कार देना इस उस विषय में भी अपने विचारों को भी जनता के सम्मुख स्पष्टतया रख दिया था। बंगाल शिक्षा समिति के सब विद्वान् बिना पं. विद्यासागर जी की सलाह के कोई काम न करते थे।

बेथून विद्यालय आज भी अपनी ख्याति से जगमगा रहा है। इसके अलावा भी विद्यासागर ने अनेकानेक स्कूल स्त्रियों तथा बालकों के लिए खोले। सी-बीडमार बंगाल के पत्र आज भी मिलते हैं जिनमें कि वे लोग यहाँ से सन् 300/- रुपया बालिका शिक्षा फण्ड में प्रतिमास विद्यासागर जी के पास भेजा करते थे।

मेरी कार्पेन्टर १८६६ में इंगलैण्ड से भारत में भारतीय शिक्षणालयों को देखने आई थीं। वह भी विद्यासागर की

इस प्रकार अपने शत्रुओं का नाश करने के बाद सूर्य का एकछत्र राज्य था, वह मदमस्त हो आकाश में इधर उधर घूम रहा था, सारा मानवजगत उस के क्रोध से बचने के लिये, अपने आवरणों (घरों) में छिप रहा था। धीरे धीरे सूर्य की मस्ती दूर हुई, और उस का क्रोध भी जाता रहा। उस के अंत का प्रारम्भ होना प्रारम्भ हुआ, अर्थात् वे उत्तुंग शिखर से नीचे लुढ़कने लगा, साथ ही साथ उस का प्रकाश भी मद्धम पड़ने लगा। अन्त में दुनिया के लोगों पर ढाये हुए पाप कर्मों का स्मरण करते हुये, कुछ पश्चात्ताप किये हुए, क्रोध से प्रताड़ित रक्त भरा दिल लिये पाताल लोक को चले गये।

"ऊषा भटकती फिरती प्रियतम की खोज में फिर आई, लेकिन वह अब मौजूद नहीं था, वह दूसरे लोक को प्रयाण कर चुका था। अतः दुःख से व्याकुल हुई व्याकुल हो रही थी, इतने में उस की सखी संध्या उसे सान्त्वना पहुंचाने आई, और किसी प्रकार समझा बुझा कर ऊषा को अपने घर भेज दिया।

संध्या, रात्रि और दिन को मिलाने आई, वह नीतियों में निपुण थी, क्योंकि उन की परीक्षा टूटे हुओं को मिलाने में ही होती है। संध्या लोगों को सिखाती है कि तुम दिन में असत्य प्रकाशमान - ज्ञानवान परमात्मा से परे घोर अन्धकार रूपी अज्ञान में पड़े हुए हो, मैं तुम्हारा साधन हूं, मेरे द्वारा तुम परमात्मा के दर्शन लोकों का प्रकाश कर सकते हो। इसलिये, आओ और मेरी आराधना कर ईश्वर भक्त बनो।

जब संध्या इस प्रकार लोगों में धार्मिक भावों का संचार कर रही थी, और उन्हें सत्य मार्ग पर चलने का उपदेश दे रही थी, राक्षसी रात्रि से यह देखा नहीं सहा गया, वह चाहती थी, कि लोग अन्धकार में ही पड़े रहें, और उन्हें ज्ञान का

ज्ञान का प्रकाश प्राप्त न हो। इसलिये वह रात्रि आई और अपने अन्धकार रूपी वस्त्र से सारे प्राणि-जगत को ढक लिया। और इतना प्रगाढ़ तम फैला दिया, कि हाथ को हाथ नहीं दिखता। इसी में लम्पट, बटमार, चोर, डाकू आदि पापकर्मी अपने २ काम में प्रयत्नशील हुए।

जगत में यह नियम है, कि कोई भी वस्तु कितनी खराब हो, पर वह खराबी की चरम सीमा तक नहीं पहुँच सकती, उस में कुछ गुण का प्रकाश छिपा रहता है, केवल उसे अभिव्यक्त करना होता है। इसी प्रकार यद्यपि रात्रि का अन्धकार चारों तरफ विस्तृत हो जाता है, तो भी चांद और तारे उस में कुछ ज्योति और आशा भर देते हैं। तारों के पुञ्ज आकाश इस प्रकार लगता है, कि मानो छोटे २ बच्चे अपने पिता उस चन्द्र से शिक्षा ग्रहण कर रहे हों। आकाश में एक विस्तृत राजसभा सी ऐसी मालूम देती है, जिस में मनुष्यों के समूह के समूह ही दिखाई दे रहे हों।

चन्द्र भी अपने जीवन से दूसरों का उपकार करता हुआ, अन्त में वृद्धावस्था को पहुँच कर, ज्योति हीन हो आकाश में ही विलीन हो जाता। तारे धीरे २ आकाश से खिसकने लगते हैं। रात्रि भी अपने शत्रु दिन के आने को जानकर हिमालय की गिरि गुहाओं में शरण लेने पहुँच जाती है, फिर वही दिन का समाचार पहुँचाने वाला ब्राह्म मुहूर्त आता है। यही प्रकृति का अटल नियम है। और यही प्राकृतिक नाटक है। इसी में मनुष्य के लिये एक शिक्षाओं का भण्डार है। यही प्रकृतिदेवी का प्रेम सन्देश है।

प्रभात

— श्री "निगम" १३

ईश्वर की सुन्दर रचना पर
रे एक सिपाही खड़ा हुआ।
पर प्यारी सुन्दर रचना को
वह नयन एक से देख रहा॥

बाल उषा अम्बर थाली में
रक्तोत्पल ले आती है।
धीमे धीमे ऊपर चढ़ती
प्रभु का गाना गाती है॥

गरमी लेने को दिनेशने
लाल दुशाले ओढ़े हैं।
प्रिय रजनी के वियोग में
श्वास गरम सा छोड़े हैं॥

प्रभात-3

या शरमाती नवयुवती ने
लाल ओढ़नी ओढ़ी है।
जौहर को जाते युवती के
पति ने दुनियां छोड़ी है॥

एक चपल चञ्चल बालक ने
अरुण गुलाब ही तोड़े हैं।
परवश मात को देख अरे
शोणित के आंसू छोड़े हैं॥

गुरुकुल में हिन्दी ही क्यों

ले. श्री. सतीश १३

सन् उन्नीस सौ अड़तीस का दिसम्बर मास था। सवेरे का समय था। सर्दियों की मीठी धूप का आनन्द लेने के लिए मैं अपने एक उत्साही, जोशीले गुजराती भाई के साथ अपनी कुर्सी बाहर निकाल कर, आ बैठा। मेरे हाथ में न्याय दर्शन की पुस्तक थी। शब्द की नित्यानित्यता का प्रकरण चल रहा था। मेरे साथी के हाथ में अष्टाध्यायी की पुस्तक थी। ऐसे आनन्द के समय में, ये नीरस पुस्तकें हमारा ध्यान अपनी ओर कैसे आकृष्ट कर सकती थीं। हमने पुस्तकें एक ओर रख दीं और सामयिक राजनीति की गम्भीर समस्याओं पर विचार करने लगे। कुछ देर बाद, एक और भाई जो गुजराती जान पड़ते थे आए और मेरे मेरे पास बैठे हुए गुजराती भाई से उन्होंने एक पुस्तक मांगी। इसका उत्तर गुजराती में दिया गया कि मेरी मेज की दराज में है। यह उत्तर पाकर वह लड़का कमरे में चला गया।

मेरे सामने कोई विशेष प्रोग्राम नहीं था। मैं खाली सा बैठा था। इस थोड़ी सी देर में जो एक साधारण सी घटना हो गई उसने मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया। मेरे मन में यह बात आई कि ये दोनों सूरत-शक्ल से, चाल-ढाल से, रीति रिवाजों से और यहां तक जन्म से भी गुजराती हैं फिर क्या कारण कि एक हिन्दी बोलता है और एक नहीं। उसका गुजराती में दिया गया उत्तर भी हिन्दी से कुछ विशेष अन्तर नहीं रखता था और न ऐसा ही था कि मुझे समझ में न आया हो। खैर, - हमारी बात का विषय बदला, मैंने अनेक प्रमाण उदाहरण तथा उन पर अपनी टीका द्वारा और साम, दाम, दण्ड भेद आदि से बहुत प्रयत्न किया कि किसी तरह उनके दिमाग में ठूंस दूं कि क्यों उनको गुरुकुल के साहित्यिक वातावरण का ध्यान रखते हुए तथा उसकी उन्नति में, एक अंग के रूप में प्रविष्ट होने के लिए गुजराती बोलना छोड़ देना चाहिए। गुरुकुल ने जिस उद्देश्य को लेकर हिन्दी को माध्यम बनाया हैं, उस आदर्श को उनको भुलाना नहीं चाहिए और सबसे अधिक उन्हें अपने कर्तव्य और सुविधा को ध्यान मे रखते हुए, गुजराती बोलना छोड़ देना चाहिए। इन ४ सालों में वे अपनी मातृभाषा भूल नहीं सकते, प्रति वर्ष घर जाते हैं, गुजराती की पत्र-पत्रिकाएं

भी आती हैं, इत्यादि…। मेरे भाई की ओर से यह युक्ति दी जा रही
थी कि हम को गुजराती भूलने का डर है, और जो लोग अंग्रेजी और
संस्कृत बोलने का व्रत लेते हैं उन उनको क्यों नहीं रोकते, साथ
ही साथ वे अपनी बात को इस तरह आधार पर भी सिद्ध करने का यत्न
कर रहे थे कि अन्य पंजाबी, मुलतानी, मराठी और पूर्वी की शीघ्र
ही भिन्न रूपों को धारण करने वाली हिन्दी का प्रचार होना चाहिए
सब को अपनी मातृ-भाषा को बोलने का अधिकार होना चाहिए। मैं
उनकी इस अन्तिम बात से सहमत था परन्तु फिर मातृभाषा की
ममता विशाल राष्ट्र भाषा के संगठन में बाधक नहीं है? इसलिए
संस्था में पढ़ने वालों को राष्ट्र भाषा को ही अपनी मातृभाषा—
समझना चाहिए। मैंने उनकी बात पर कुछ और विचार किया, मुझे
हंसी आगई कि यदि सब अपनी २ भाषाओं को बोलने लग जांय तो
चिड़िया घर के प्राणियों से कहीं अधिक विस्मयोत्पादक हो जाय, परन्तु
क्या यह बात हमारे में एकता रख सकेगी? हमें अपनी प्रान्तीय एकता
के एक भाषा करनी होगी, भाषाओं की भिन्नता ने ही इतने प्रान्त बना
दिए हैं, यह बात गुरुकुल में नहीं आनी चाहिए, हम तो एक देश के
हैं हमारी भाषा राष्ट्र भाषा है। मैंने अपने भाई से केवल इतना निवेदन
कर दिया कि प्राणी होना तो पसन्द नहीं करोगे, यह कह कर मैं हंस पड़ा—
पर्याप्त लम्बे; केतु या प्रिय विवाद के बाद, मेरी यह हंसी आज शाम के

वे रूप में निकली, मेरे भाई संयम में नहीं रह सके, कहा - तुम इन्दु
प्रस्थी लोग - हम गुजरातियों को मिलाना नहीं चाहते, हम भी तुम से
मिलना नहीं चाहते हैं; हमारा तुम्हारा साथ ही कितने दिन का है
थोड़े ही दिनों में तो अलग 2 हो जाना है, इ बहुत आश्चर्य की बात
था ई अपनी हिन्दी का प्रचार अपने घर में करो हमारे पर उसका
कोई प्रभाव नहीं हमें गुजराती के बोलने से कोई नहीं रोक सकता
इन शब्दों ने मुझे अकस्मात् वज्रपात के समान अत्यन्त चौंका दिया
~~[illegible]~~ "तुम लोग हमको मिलाना नहीं चाहते. तुम्हारा हमारा साथ ही
कितने दिनों का है" ये शब्द मुझे रह रह कर चुभ रहे थे. मुझे समझ में
नहीं आया कि इसमें कहां तक सत्य है, दूसरी बात का तो उत्तर
यही था - कि मनुष्य शीघ्र मरने के भय से अपने कामों को छोड़
नहीं देता है। मैं और अधिक बात न कर सका, मैं उठ गया
मेरा गुजराती पढ़ने का भी समय हो गया था।

यद्यपि मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि -
केवल दो-चार आदमियों के हिन्दी न बोलने से हिन्दी की बढ़ती हुई
उन्नति रुक नहीं सकती, पर यह भी स्पष्ट है कि उन के गुजराती
बोलने से केवल भी [illegible] का [illegible] नहीं हो सकती है। हमको यह
मानने में भी संकोच नहीं होना चाहिए कि कम से कम गुजरातियों
हिन्दी ज्ञान पर तो इसका प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा। फिर गुजराती

में गुजरातियों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है।
इस स्थिति में १०० में ५ की उपेक्षा की जा सकती है परन्तु
उसी कक्षा को यदि २५ करने लग जांय तब उनकी उपेक्षा नहीं
की जा सकती उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। स्वागतोत्सव
का निमन्त्रण भी ऐसा है और कुछ ऐसा सम्बन्ध है कि हमारी [illegible]
एक का प्रभाव दौड़ जाती है।

गुरुकुलीय वायुमण्डल में यह विचार प्राय
चल पड़ता है। यह आन्दोलन इसी वर्ष नहीं किन्तु पहले भी चल
चुका है। गुजराती भाइयों को यह शिकायत है कि हम उनको नहीं
मिलाते हैं, यह शिकायत प्रारम्भ में प्रत्येक शासक [illegible] को होती
वस्तुतः यह बात नहीं है कि हैं हम उनको मिलाना नहीं चाहते हों।
किन्तु शासक वालों के, अपनी उस शासन के रीति रिवाज आदि की
मिलता ही उन्हें कुछ बोलने के लिए ऐसा प्रतीत करवाती है कि हम
उन्हें नहीं मिला रहे हैं। परन्तु ज्यों २ हमारी प्रथाओं को तथा हम
उनकी प्रथाओं को अपना कर पक्षपात का भाव नहीं रखते हैं
मिल जाते हैं, और यहां विद्यालय में आने पर तो शासनाई
सब पूर्ण रूपेण मिल जाती हैं। केवल मात्र उनकी शासन का प्रेम
ही अपना अलग व्यक्तित्व लेकर रह जाता है। यह तो होना भी
चाहिए। किन्तु गुरुकुल के नाम पर उसको भी छोड़ सकते हों
परन्तु हमारे गुजराती भाइयों की यह शिकायत हमें ठीक प्रतीत-

— होते हुए भी चार सालों के निश्चित अनुभव के बाद असाध्य सी लगी क्यों कि अन्य भाषा वाले विद्यार्थियों के व्यवहार पर वहां के नियमों की भिन्नता के कारण ही कुछ विभेद होता है। किन्तु इनकी प्रकार जहां भिन्न होती हैं वहां इनकी भाषा की भिन्नता एक विशाल भेद स्थापित करती है। आपस में सहृदयता स्थापित करने के लिए भाषा एक बहुत ही उत्तम साधन है। जब कोई न रहा तब फिर किस बात की आशा की जा सकती है। हम तो यह समझते हैं कि जिस प्रकार अब तक अन्य धाराएं मिलकर एक हो गई हैं इसी प्रकार यह भी यदि भाषा का भेद न हो तो सम्मिलित हो जायगी। इसका स्पष्ट उदाहरण है जो गुजराती आदि जितना अधिक हिन्दी का प्रयोग करते हैं वे उतने ही अधिक वे हमारे तथा हम उनके सम्पर्क में आकर, अन्यों की अपेक्षा, एक दूसरे को भलिभांति समझते हुए अधिक सद्भाव स्थापित कर सके हैं। इससे हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं लेना-चाहिए कि हम उनकी मातृ भाषा छुड़वाना चाहते हों मातृ भाषा तो एक स्तन की तरह है जिससे व्यक्ति ज्ञान दुग्ध को पान करता है। हम से किसी ने कहा था कि किसी की मातृ-भाषा छुड़वाना अस्वाभाविक है, क्रूरता है। हम समझते हैं कि इसी प्रकार के यदि इससे भी कठोर शब्द मिलते हों तो

उसका इसी अर्थ में प्रयोग करते हुए हम नहीं सकुचाते और
अपने मन्तव्य से कुछ आगे हटते, परन्तु सोचने की बात है कि यह
मनोवृत्ति कहां तक ठीक है? इस संकुचित मनोवृत्ति को हमें
छोड़ना होगा। हम तो उस समय को लेना चाहते हैं जब कि —
भारत की एक भाषा ही मनुष्यों की मातृ भाषा होगी, हमको
अपनी मातृ भाषा और राष्ट्र भाषा को एक कर देना होगा -
तभी हम विश्व संघर्ष में आ सकते हैं। हम से एक भाई
ने कहा था कि किसमें शक्ति है कि हमारी मातृ भाषा को
हमसे ले छुड़वाये। ठीक है। हमारी किसी से लड़ाई नहीं है और
नहीं हम उस आह्वान को स्वीकार करना ही उचित समझ
ते हैं। फिर भी हम पूछना चाहते हैं कि संस्कृत इत्यादि —
प्राचीन भाषाएं किन की मातृ भाषा थी? और हम उसे
क्यों छोड़ बैठे? कौनसी शक्ति थी जिसने इसको इस बुरी
तरह से नष्ट कर दिया अब इसकी पुनः कुछ कल्पना करने
का भी साहस नहीं होता। इसका उत्तर केवल काल की
गति कह कर नहीं दिया जा सकता, यह तो मनुष्यों पर ही —
अवलम्बित है मनुष्य ही बनाते और नष्ट कर देते हैं। सं-
संस्कृत को बचाने के लिए कितने व्याकरणों द्वारा भरसक
प्रयत्न किया गया, भाषा तो प्रवाहशील है. इस को
मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार ढाल लेता है। इसी में

उसकी मान्यता पुष्टि हो जाती है। इस तथ्य को जानते हुए भी कि एक दिन हिन्दी के स्थान को भी कोई अन्य भाषा ले लेगी इसके मार्ग को अवरुद्ध नहीं बनना चाहिए। इस नई भाषा को आने में सदियां लगेंगी। समय के साथ हमारी भी सत्ता है, समय का निर्माण मनुष्यों के इतिहास ने किया है। इस समय हमारे देश को आवश्यकता है एक राष्ट्र भाषा की 'एकता' की, इसी उद्देश्य के लिए गुरुकुल का निर्माण था। गुरुकुल को अपनी इस विशेषता को भूल नहीं जाना चाहिए। हम से भारत- हमारा राष्ट्र- कुछ आशा करता है हमें उस आशा को पूरा करने का यत्न गुरुकुल में नहीं करेंगे तो फिर कहां कर सकेंगे?

~ ◦ ~

यह लेख बहुत पहले लिखा गया था- अब इस बात की प्रसन्नता है कि अधिकांश गुजराती भाई हिन्दी में ही बोलते हैं- अतः वे इस प्रयत्न के लिए धन्यवाद के पात्र हैं हम उनका स्वागत करते हैं।
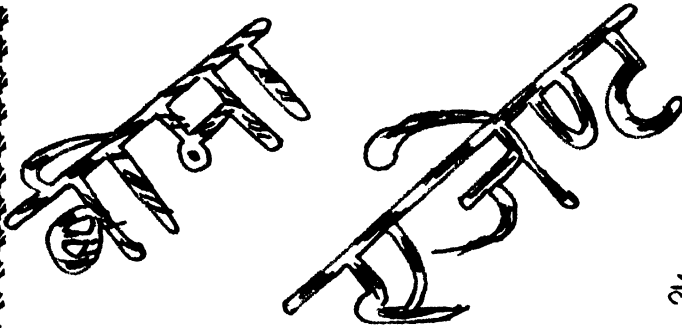
ले.— श्री सत्यपाल जी
विद्यालंकार

जब सब तरफ़ से रोज़ी की तलाश करके हार गया तो मुझे विश्वास हो गया कि दुनिया में गुणों की कद्र करने वाले बहुत थोड़े हैं। और मैं भी दिल से सूरदास का यह पद गाने लगा— "मूरख मूरख राज करते हैं, पण्डित फिरें भिखारी" पर मेरे सामने एक दरवाज़ा भी खुला था। मेरे एक मित्र ने मुझे चन्द दिन पहले सुझाया था कि मैं किसी बीमा कम्पनी का एजेंट बन जाऊं तो काफ़ी कमा सकता हूं। तब से इधर-उधर कोशिश जारी रखने पर भी इस विचार को मैं इस तरह कायम किये हुए था, जैसे नदी के एक पत्थर पर पैर जमाये पानी में डूबने से पहले आदमी इधर-उधर हाथ-पैर मारता है।

मैं अपनी बेकारी से इतना परेशान नहीं था, जितना अपने उन मित्रों से जो देखते ही पहला सवाल करते हैं — आजकल आपका शग़ल क्या है? मैंने सोचा कि बीमा का काम हाथ में ले लेने से कम से कम अपना शग़ल बताना तो आसान हो जायेगा।

हाँ, तो मैं बीमा-कम्पनी का एजेंट बन गया और

कम्पनी भी न: जो देश की सबसे चोटी की स्वदेशी कम्पनी थी, जिसके स्थानीय हेड ऑफिस की इमारत दिल्ली की शान थी। एजेंट बन जाने के बाद पहला काम मैंने यह किया कि अपने विज़िटिंग कार्ड, लैटर फार्म, और लैटर बक्स, साइन बोर्ड आदि के उम्दा सूट बनवाने का आर्डर दे दिया। चमड़े के शानदार अटेची बाज़ार से खरीद लाया जिसका चमड़ा इतना मुलायम था कि वैसी मुलायम में बाप के रजाई भी कभी न नसीब हुई होगी।

यह सब हो गया पर सवाल यह पेश था कि बीमा के लिए किसी के पास जाना करना क्या चाहिए। मैं उतर और नीचे की दुकान का टैलीफोन डायरेक्टरी लेकर देहली की तमाम बड़ी २ कम्पनियों का नाम खटखटाता चला गया। सब को यही बताया कि मैं एक भारी रकम का बीमा कराना चाहता हूं, मेहरबानी करके अपना कोई खास एजेंट भेजिए कि मैं पूरी तौर पर अपनी दिल-जमई कर लूं। यह सब तो अपने टाइप के अन्दाज़ से किया गया था।

धीरे २ से जब सबकी इन्क्वायरी खतम हो गई तो मुझे मालूम हुआ कि मेरी कुछ कितनी भोले की थी। बीमा के लिए नई से नई प्रक्रियाएं, नये से नये रास्ते सब मालूम हो गए। और, उन सब की जानकारी किसी भी एजेंट के लिए कितनी ज़रूरी है। पर सब से बढ़कर मुझे खुशी इस बात की हुई - इसे आप

Inferiority Complex भी कह सकते हैं — पर मुझे कितना गर्व अनुभव होता था, जब आध आध घंटे के बाद सिनेमा के जादू बाक्स की तरह एक २ भला आदमी सजा-धजा अन्दर आता और लैक्चर झाड़ कर चला जाता।

मैंने अपनी अटैची संवारी। एजेण्ट बन जाने के बाद अब ६-८ दिनों में ज़रा भी कामयाबी न मिलने से जो दिल बैठ जाता था वह अब खड़ा हुआ। मुझे कम से कम इतना मालूम था कि उन तमाम एजेण्टों के जोड़ में मेरी वाणी, मेरी प्रतिभा, मेरा हाव-भाव, शक्ल सूरत, सब अच्छा था। और अटैची उठा कर रवाना होने से पहले एक साफ़ स्वच्छ दर्पण में देखकर मैंने इस की तसल्ली भी कर ली।

नीचे उतरा। एक ट्राम गाड़ी जा रही थी; मैं उसमें सवार हो गया। भीतर तरह २ के लोग बैठे थे; जैसे इस ज़मीन पर तरह २ के लोग रहते हैं।

वहां दिल्ली के वेश्यालयों और शराबियों की चर्चा छिड़ी थी। मैंने अन्धों में काना देखते हुए कहा — आप लोग कितने ही इलाज सोचें पर जब तक हमारे देश में बाल विवाह का आम रिवाज़ ख़त्म नहीं हो जाता तब तक अबला विधवायें पेट की ज्वाला से तंग आकर बुरा रास्ता अख़्तियार करेंगी ही। मेरी आंखों में न जाने

आँसू किस तरह मौके से आ आये। मैं कहने लगा, — भाइयो, मुझे भी एक हिन्दू स्त्री का सच्चा किस्सा मालूम है जो पति के जीते जी एक आदर्श पतिव्रता था। खाती थी, पीती थी और घर में स्वर्ग का वातावरण। पर पति के अचानक रोगी होने और मैं गुज़र जाने पर उसका जीवन ही बदल गया। अपने छोटे 2 बच्चों की तालीम की खातिर अपने दिल पर पत्थर रखकर आज वह बेचारी चावड़ी बाज़ार के कोठे पर बैठी है। इतना कहते ही मेरी दोनों आँखों से आँसुओं की दो धाराएँ फूट 2 कर बहने लगीं और मुझे पहली बार ज्ञात हुआ कि मेरी कल्पनाशक्ति इतनी तेज़ है कि मैं एक सफल कहानी लेखक भी बन सकता हूँ।

सब मुँह बाये आँखें फाड़े मेरी ओर देख रहे थे जैसे सीता भगवान का किस्सा छिड़ने पर भक्तों की आँखें उधर की ओर लग जाती हैं। मैं भरी आँखों से कहता चला गया — "अब आप ही सोचिये यदि उसके पति उस देवी के नाम पाँच-छः सौ रुपया का बीमा करा जाते तो उसे आज इस तरह अपना धर्म बेचने की ज़रूरत क्या पड़ती?"

सब श्रोताओं के मुँह से निकला — "बेशक बेशक"। पर उनमें से एक अधेड़ भला मानस मेरी बात को शुरू से ही बड़े ध्यान पूर्वक सुन रहा था, बोला — "बिलकुल ठीक फरमाते हैं आप। मेरे अपने रिश्तेदारों में से ऐसे बहुत हैं कि जिनको विधाता ने अपनी पूरी चोट

कितनी नई पालिसियाँ मालूम हुईं। न मैं पूछ सकता हूँ कि आपने खुद अब तक कितने का बीमा कराया है ?"

उस अधेड़ भले आदमी ने अपनी ऐनक आँखों से उतार कर करीने से मेज़ पर रख दी, जिसका मतलब था कि आप की बात अब उनके दिमाग तक पहुँच चुकी है और उसकी बातचीत का वेग सादगी से अब कम नहीं होगा।

वह बोला — "आपको आश्चर्य होगा कि मैं उस वक्त तक ५००० का बीमा करा चुका हूँ और अभी इतना ही और कराने का इरादा है।"

मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा। मेरे लिए किसी न किसी बात को ज़ोर से बोलना ज़रूरी हो गया है; नहीं तो मैं खुशी के मारे मैं शायद लोट-पोट हो जाता। मैंने चिल्लाकर नौकर को आवाज़ दी — "बाज़ार से जाकर कुछ नमकीन और मिठाई क्यों नहीं ले आता — चुपचाप क्यों खड़ा है ?" नौकर के चले जाने पर मैंने बड़ी नाज़ुकी से कहा — "आप को यह जानकर खुशी होगी कि अपना बीमा कराने के लिए आप को किसी दूसरी जगह तकलीफ करने की ज़रूरत नहीं। बन्दा आपके सामने हाज़िर है। और किस्मत की बात, मैं एक ऐसी कम्पनी का एजेन्ट हूँ, जैसी कि आप चाहते हैं।"

मेरे मेहमान मुस्करा कर बोले — "ओह! यही तो मैं आपसे कहने वाला था। तो क्या आप भी किसी कम्पनी के एजेन्ट हैं?"

मुझे अपनी ग़लती मालूम हो गयी। हम दोनों एक दूसरे को कुछ ऐसी नज़र से देखने लगे, जैसे दो साइकल सवार आमने सामने तेज़ी से साइकल दौड़ाते हुए और बाज़ार में एकाएक रुक जायें और एक दूसरे की ओर देखें। मेरा नौकर न जाने मेरे कितने पैसे बाज़ार वाले मिठाई और नमकीन ले आया था। मनुष्य का अभिमान देखो कि मैं अब भी यह सोच रहा था कि दूकान गया तो वह जो भोले भाले चेहरे का नवयुवक मेरी बात को तन्मय होकर सुन रहा था, यदि उसे फंसाने की मैंने कोशिश की होती तो आज का दिन यों देखना न आता।

संसार का पशुधन

वर्तमान समय में संसार में विभिन्न प्रकार के पशुओं की संख्या इस प्रकार है -

घोड़ा 6 करोड़ 50 लाख

गाय-बैल 60 करोड़

भेड़ 62 ,,

बकरी 8 ,,

सुअर 29 ,,

गधा 2 ,, 80 ,,

खच्चर 1 ,, 30 ,,

ऊँट 60 लाख

बत्तख 16 करोड़

मुर्गी 140 ,,

हाथी 1 लाख

सिंह 1 लाख

बाघ 1 लाख 50 हजार

गोरिल्ला 1 हजार 200

और नाना प्रकार के पक्षी 1 हजार करोड़ ।

उद्धृत

ओ राही

श्री नन्दन.

बढ़े जा राही बढ़े जा,

बस एक कदम और,

इतना लम्बा रास्ता तू चलकर आया है। थकावटों से तेरा शरीर चूर-चूर हो रहा है। अँधेरे रास्ते में तूने ठोकरें खाई हैं। काँटों ने तेरे पैरों को छलनी बना दिया है। कड़कड़ाती सर्दी ने तेरे शरीर को काँटे की तरह कँपा दिया है। जलती धूप ने तुझे झुलसा दिया है। भूख-प्यास से तेरा शरीर जर्जर हो गया है। और इस सब दुःख के बीच में भी तू अनवरत रूप से

जी तोड़ कर चलता ही आया है।—

अब न रुक।

बस एक कदम और,

और फिर —,

हैं, तू रुआँसा सा क्यों होरहा है?

तेरे स्वच्छ पर परेशान नैनों से ये बूंदें क्यों टपक रही हैं? क्या काँटों की पीर अब तुझे सता रही है? क्या अँधेरे में खाई ठोकरों की वेदना अब तुझे व्यथित कर रही है? क्या भूख-प्यास अब तुझे परेशान कर रही है? .... तो फिर रोता क्यों है? हिम्मत क्यों हारता है?

एक ज़ोर और,

और फिर —,

हैं, तू फिर ठहर क्यों गया? भावों की शृंखला में उलझ गया तू? अरे, तुझे सोच केसा? क्या,

हार गया? क्या पिछली याद ने तुझे विह्वल कर दिया? क्या पिछली यातनाओं ने तेरे कदम पकड़ लिये? और ओह, क्या फिर तुझे अपने पिछले रास्ते की वह सुनहली याद आने लगी? ना, — ना, — वह सब तो तू भूल आया! अरे, तुझे सोच कैसा? — तू तो इन सब आफ़तों को पैरों तले रौंद कर रफ़्तार आगे बढ़ आया है, — अब तेरे लिये रोक कैसी?, तू तो पर्वतों को ठेल कर चला आया है, — तेरे लिये संकोच कैसा?

हाँ, कदम बढ़ा,

और फिर —,

ओह, चलता-चलता फिर तू क्यों रुक गया? कैसे हिम्मत हार के बैठ गया? किसने तेरे पैर पकड़ लिये? क्या आगे जाते डर लगता है? — डर? तुझे? और अब? ना — ना —

चल उठ, चल दे —

एक कदम और,

और फिर —,

हैं, तू फिर आखिरी बार, क्यों ठहर गया? क्या लौटेगा? ना - ना -,

वह देख तेरी मंज़िल धुँधली सी दीख रही है। चल पड़ हिम्मत से अपने रास्ते पर! यों, सिर उठा कर, छाती फुला कर! वह देख तेरा उदय दीख रहा है, चल - चल!

मंज़िल पे तेरी जीत हो! चमकता सूर्य तेरा पथप्रदर्शन करे! हिम्मत तेरे बाजू चढ़े! और मग़, हवाएँ तेरी आरती करें!

बढ़े जा राही, बढ़े जा —

बस एक कदम और।

- [illegible]
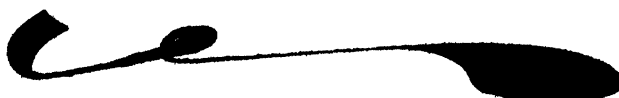
छाया के पीछे भरमाया
विश्व समुत्सुक विश्व युद्ध को, रोटी की यह माया।

- श्रीरंगा

वेद में इतिहास

— श्री धर्मवीर जी उपन्यासक.

यूं तो आजकल आर्य समाज के पचास प्रतिशतक सिद्धान्तों पर नित्य नये २ आक्षेप होते रहते हैं, परन्तु उन में से बहुत से सिद्धान्त अपने सहधर्मियों (सहधर्मी से तात्पर्य उन से है जो कि वेदों को तो मानते ही हैं, परन्तु साथ ही साथ अन्य ग्रन्थों को अथवा देवता के रूप में अपने महापुरुषों को अपने धर्म का आवश्यक अंग मानते हैं, इन में पौराणिक तथा जैन इत्यादियों की गणना है) को वेद के युक्तियुक्त और तर्कानुकूल सिद्ध बता देने पर किसी एक परिणाम पर पहुंचा देते हैं, परन्तु जब कोई अन्य धर्मावलम्बी वैदिक धर्मावलम्बियों पर

यह आक्षेप करता है कि "वेदों में तो अनित्य तथा काल विशेष में उत्पन्न हुए २ राजाओं तथा व्यक्तियों का वर्णन उपलब्ध होता है" यह एक ऐसा आक्षेप है जो कि आर्य समाज के मौलिक तथा आधारभूत सिद्धान्त पर सीधा कुठारा-घात करता है। हमारे मनों में सहसा यह विचार उठता है कि नित्य तथा अपौरुषेय वेदों में इतिहास कैसा? इस युक्ति का बल तब तो और पराकाष्ठा तक जा पहुंचता है जब कि हमें याज्ञिक वेदार्थ दीपक तथा वेदों के अर्थों के विषय में परम प्रमाण महर्षि यास्क ऐसे उद्धरणों को पेश करते हैं जिन में कि न केवल इतिहास शब्द का (इति ऐतिहासिकाः) ही उल्लेख है अपितु स्पष्ट रूप से कथानकों का भी वर्णन है। वेदों का कोई भी प्रारम्भिक अध्येता जिस समय ऋग्वेद के (१०.६८) सूक्त में देवापि और शन्तनु की कथा को पढ़ता है,

निरुक्त का कोई भी अध्येता जिस समय निरुक्त (६अ.,३पा.,२०श्लो.) में गंगा यमुना इत्यादि ऐतिहासिक नदियों का, तथा ऋग्वेद (१०म., १०सू.) और अथर्ववेद (१८.१) में यम यमी सूक्त में यम और यमी, भाई और बहन (किसी के मत में पति और पत्नी) का संवाद पढ़ता है तो वह कहे बिना नहीं रह सकता कि वेदों में इतिहास है।

वर्तमान भारत में इतिहास के बारे में जो वाद फैला हुआ है, मेरे विचार में उस का मुख्य कारण निरुक्त में इतिहास का प्रतिपादन है। यद्यपि कइयों का ऐसा ख्याल है कि यह इतिहास वर्तमान में ही नहीं अपितु जब से निरुक्त बना है, उस से भी पहले से एक पक्ष ऐसा रहा है जो कि वेदों में इतिहास मानता रहा है। वह पक्ष बहुत प्रबल रहा है, इस का मुख्य प्रमाण यही है

कि चरक मुनि भी उस की उपेक्षा न कर सके, और स्थान २ पर ऐतिहासिकों का नैरुक्तों से मत भेद भी दिखाते रहे। कहने का मतलब यह है कि जब "वेदार्थ प्रक्रिया का प्रतिपादक" ग्रन्थ निरुक्त स्वयं ही वेद में स्पष्ट इतिहास बताते तो कौन वैदिक धर्मी वेद में इतिहास के होने से इन्कार कर सकता है। जब स्पष्ट रूप से निरुक्त में भिन्न २ व्यक्तियों का इतिहास उन की कुल परम्पराओं तथा तात्कालिक परिस्थितियों सहित स्पष्ट वर्णन पाया जाता है (उदाहरण के तौर पर वेद में इन्द्र, मरुत्, आङ्गिरस, परुच्छेप, वसिष्ठ, विष्णु, ब्रह्मा इत्यादि का बहुत्र नाम आता है तथा विश्वामित्र इत्यादि ऋषियों का उन के संबंधियों समेत तथा सम्बन्ध इत्यादि का नाम भी आता है "मेरे प्राचीन पूर्वजों ने वैसा किया, मेरे प्राचीन पूर्वजों की फलाने देवता ने यह सहायता की", "फलाने राजा ने

उन्हें यह दान दिया, इत्यादि वर्णन भी है, इस प्रकार अनेक वर्णन मनुष्य व्यवहारवत् वेद मंत्रों में आते हैं) ऐसी स्थिति में यह कैसे माना जाय निरुक्ताचार्य वेदों में इतिहास नहीं मानते। ~~अन्~~

ऊपर वेदों के जो भी उद्धरण दिखाये गये हैं, वे वैसे नहीं है, ऐसा कहना असम्भव है ~~और~~ अयथार्थ है और इन वर्णनों को साधारण जनता से छिपाकर रखना वैदिक विद्वानों की अपने सह-धर्मियों के प्रति अत्यन्त धोखेबाजी है। जब तक कोई विद्वानों का संघ कटिबद्ध होकर आगे नहीं आता, और सम्पूर्ण ऐसे स्थलों का यह अर्थ है और ये मन्त्र इस तरह खुल सकते हैं, ऐसा नहीं कहता, तब तक निरुक्तादि ग्रन्थों के पढ़ने से सामान्य बुद्धि को ये अर्थ इसी रूप में ही बहुत जोर से अपील करते हैं, और बहुत से वेद प्रेमी वेदोन्मार्गगामी हो जाते हैं, इस में कोई शक नहीं। इस प्रकार वेद ~~में~~ ~~[illegible]~~ वेद ~~में~~ के मन्त्र-भाग में मनुष्यों का इतिहास है या

नहीं, यह एक गम्भीर विषय है, जिस का समाधान् किये बगैर आर्य समाज जड़ से कट जायगा और अपनी मौत आप मर जायगा।

अब हम निरुक्तोक्त दो ऐतिहासिक कथाओं के वर्णन के बाद सरसरी दृष्टि से "इतिहास" शब्द तथा उन कथाओं के वास्तविक कथाओं तत्व का उल्लेख करने का प्रयत्न करेंगे। कथायें निम्न हैं-

तत्रेतिहासमाचक्षते – देवापिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः। स शन्तनुः कनीयानभिषेचयाञ्चक्रे, देवापिस्तपः प्रतिपेदे। ततः शन्तनो राज्ये द्वादशवर्षाणि देवो न ववर्ष। तमूचुर्ब्राह्मणा अधर्मस्त्वया चरितः, ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितं, तस्मात्ते देवो न वर्षतीति। स शन्तनुर्देवापिं शिशिक्ष राज्येन। तमुवाच देवापिः, पुरोहितस्तेऽसानि याजयानि च त्वेति। तस्यैतद्वर्षकामसूक्तम्।

तस्यैषा भवति –

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्। देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत्। ऋ. १०.९८.6

इस मन्त्र के ऊपर लिखी कथा अपने आप में बहुत स्पष्ट है। यास्क के इन्हीं प्रवचनों के कारण महाभारत के शन्तनु और देवापि की इन वेदोक्त मंत्रों से घनिष्ठता आ गयी है और वेद में इतिहास प्रतीत होता है।

दूसरी कथा भी निम्न है –

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्। ऋ१.४५.३.

प्रस्कण्वः = कण्वस्य पुत्रः (नि. अ. ३, पा.३, वत् शब्द

इस का अर्थ बहुत से व्यक्ति ऐसा करते हैं कि – हे ईश्वर! जैसे तुम ने प्रियमेध आदि ऋषियों की प्रार्थना को सुना है, उसी प्रकार तुम कण्व के

पुत्र (प्रस्कण्व) की भी प्रार्थना को सुनो।

इस के अतिरिक्त "तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति" ऐसा पाठ भी हमें ब्राह्मणों में उपलब्ध होता है। (ब्रह्म = वेदः)

इस प्रकार वेद में जब हमें स्थान २ पर इतिहास प्रत्यक्ष दिखाई देता है, तो हमें बाधित हो कर इतिहास मानना पड़ता है, ऐसा कुछ पूर्वपक्षियों का कहना है। इस का ठीक २ समाधान (अर्थात् यास्काचार्य की दृष्टि में इतिहास की परिभाषा और इस का अर्थ क्या है, तथा इन मन्त्रों का वास्तविक अर्थ क्या है इत्यादि -) क्या है, इस विषय में निरुक्त, ब्राह्मण इत्यादि ग्रन्थों तथा आचार्य स्कन्द, वररुचि और महर्षि दयानन्द के क्या विचार हैं, इत्यादि बातों के स्पष्टीकरण के लिये पाठक आगामी लेखों की प्रतीक्षा करें।

इति वेदे इतिहासविषयको पूर्वपक्षः

— श्री आनन्द कयोदश.
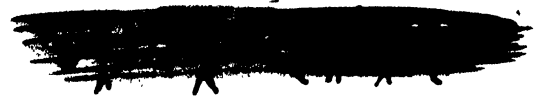
जब कभी मैं दिवाली का नाम सुनता हूँ; मैं सोचने लगता हूँ—

एक महान् अन्धकार है; अन्धकार के एक कोने में एक छोटा सा मिट्टी का दिया है। दिये में तेल है, तेल में बत्ती है, बत्ती में आग है, आग में एक लौ है! लौ में प्रकाश है, प्रकाश में स्नेह है, स्नेह में समाधि है, समाधि में आत्मा और परमात्मा का मिलन है, और मिलन में एक मज़ा है! इस मज़े को यत्न-पूर्वक प्राप्त करो। यही इस दिवाली का शुभ-सन्देश है।

मैं उस महान् के अमर सन्देश-वाहक इस छोटे से दिये को नमस्कार करता हूँ।

— इति

५१.

आवश्यकता

गुरुकुल आयुर्वेदमहाविद्यालय के 'आउट-डोर' के लिये एक 'कम्पाउडर' की आवश्यकता है।

~~जिसकी योग्यता बी. ए. एस. सी~~

वेतन योग्यतानुसार दिया जावेगा।

पत्रव्यवहार निम्न पते पर :-

प्रबन्धकर्ता आयुर्वेदमहाविद्यालय
गु. कु. कांगड़ी
(सहारनपुर)

विभिन्न देशों में टैलीफोनों की संख्या

इस समय संसार के किस देश में कितने टैलीफोन व्यवहृत हो रहे हैं और किस देश में प्रति १०० आदमियों के पीछे कितने टैलीफोन हैं, उसका विवरण इस प्रकार है:–

देश	टैलीफोनों की कुल संख्या	प्रति १०० आदमियों में टैलीफोन संख्या
संयुक्त राज्य अमेरिका	१८५००,०००	१४.०४
जर्मनी	२७९१०००	५.०८
इंगलैण्ड	३११६६५२	६.५३
कनाडा	१२६६०००	११.४८
आस्ट्रेलिया	५६३०००	८.३१
न्यूजीलैण्ड	१६९०००	११.[illegible]५
दक्षिण अफ्रीका	१७००००	१.७५
स्वीडन	६८८०००	१०.९६
डेनमार्क	४०९०००	१०.८९
फ्रांस	१४८२०००	३.५१
इटली	५६१०००	१.३१
रूस	९५००००	.५५

अर्जेन्टाइन	३८४०००	२.66
जापान	११९६०००	१.60
ब्रेजिल	२२२०००	.८५
ग्रीस	३८०००	१.५५
अमरीका	३८०००	१.30
भारतवर्ष	६८०००	.02
न्यूज़ीलैण्ड	८१२०००	१.८५
पोलैण्ड	२१५०००	.६१

उद्धृत —

(ले. [illegible])

कालेज के विद्यार्थी ही तो ठहरे। छुट्टियों के दिन बोर्डिंग में बिता दें, तो खासियत ही क्या रही! असल में बेचारे लाचार थे। दिल लगता ही न था। इस बोर्डिंग में जहां चौबीसों घण्टे बिता देना रोज़मर्रा का काम है, कुछ नवीनता ही नहीं रही। वही मकान, वही आराम, वही प्रातः सायम् का राम नाम। वही शक्लें और वही लेले। आज भी वे ही!, एक दल का संगठन किया। प्रिन्सिपल से आज्ञा ले कर चल ही तो निकले।

X X X X

प्रात ही इस नये नगर में घूम रहे थे। जिस दुकान पर भी जाएं, वहां पर घण्टों लग जाएं। एक एक वस्तु का अच्छा अच्छा तोल मोल, परख कर लिया जाएगा। कहीं दुकानदार ठग ही न ले! जुराब ली, तो एक बनियान भी खरीद ली थी

जाती। फिर रूमाल की भी तो कभी कभी आवश्यकता पड़ ही जाया करती है। ताला न लगाने से क्या हानियां होती हैं, यह सोचते हुए एक बढ़िया पेंचदार ताला भी थैले के भार को बढ़ाने लगा। चाकू लिया तो कैंची भी ले ली। शायद एक के बिना दूसरी वस्तु रह नहीं सकती। एक तो चीज़ें लेने में ही इतनी परख, फिर उनकी भी भरमार। सारा बाज़ार छान मारा। जिसने भी आकृष्ट किया, उसे अपनाने के लिये झपटे। किसी ने एक रूमाल लिया। दूसरे के जेब में दूसरा रूमाल बदाम के जाने में भी भला कुछ देर लगती है! अच्छी चीज़ों के दाम थे — "परिश्रम का फल"। यह कोई निन्दनीय चीज़ नहीं। चुस्ती और चालाकी तो हरएक कॉलिजियेट को आनी ही चाहिये। अन्यथा वह कॉलिजियेट ही क्या ठहरा। परिश्रम का फल मीठा ही तो होता है।

X X X X

खेल-कूद, दौड़-धूप, ऊधम-मस्ती में जो हो वह थोड़ा! और अगर कुछ न हो तो खेल खेल ही क्या रहा। बिल्कुल किरकिरा। और आज के साफल्य बनी में रहा राज की एकता का प्रेम बिल्कुल बीच में से — अर्थात् नाक पर सुनने के स्थान से एकदम दो हो गया।

यहां से वहां

मैं अब भी चुप रहा। मेरे मन में केवल यही था कि आज प्रेस लेना है। अगर प्रेस न लिया तो उसमें कितनी कठिनाई होगी! दूसरों की चिन्ता ज्यादह जो करता हूं।

उसके लिये भी मेरी अनुमति की, मेरी सहानुभूति की भी आवश्यकता नहीं समझी गई।

दिन को ढलते देखकर झुंझलाते हुए मैंने कहा—

"आखिर प्रेस भी लेना है या नहीं।"

"ओ हां, वह तो मैं भूल ही गया था।" उसने फिर कहा— "तो वहां से होते, मालूम तो कोई दुकान है?"

मैं झुंझला रहा था। कुछ देर ठहर कर आप बोले— "आगे एक डॉक्टर की दुकान है। वे मेरे वाकिफ़ हैं। उनके पास तो प्रेस नहीं हैं, पर वे रास्ते अवश्य दिखा देंगे।"

हम सड़क चौक से गए। वे वहां थे नहीं। उनकी भी इन्तजार करनी पड़ी। मुझे एक एक मिनट भारी प्रतीत हो रहा था। किस आफत में पड़ गया हूं। मुझे भी तो कई काम करने हैं। उनमें से क्या एक भी न होगा?

डॉक्टर साहब आए। उन्होंने एक स्लिप से छोटा कागज़ का टुकड़ा पकड़ाया। उसे लेकर हम चले। बोर्ड पर देखा, कि आप विराजते हैं। दुकान पर कोई भी तो नहीं था। आवाज़ लगाने पर एक छोटा-सा लड़का आया। वह बुलाने

गया और हम सामने की बेंच पर बैठे।

उस समय हम बैठे क्या करते। राज ने पास पड़े हुए रजिस्टर को उठाया। अन्तिम रोगी की तारीख साल भर पुरानी थी। रुचि रोग का नाम पढ़ा। अभूतपूर्व था। शायद किसी नये रोग का ही आविष्कार हो! और पथ्य + मिष्ठान्न! अब रुकना असम्भव था। सब खिलखिला पड़े। खूब! खूब!!

रजिस्टर के पृष्ठ समाप्त हुए। थे ही दो। एक व्यक्ति आकर हमारे सामने खड़ा हुआ। ठिगना कद, काली शकल, नोकीली नाक, भरखीचुआं मूंछें। श्वेत धोती, सफेद कुर्ता कमीज और घिसी हुई चप्पल। हम न जाने क्यों खड़े हो गए। शायद सभ्यता वश।

"कहिए।" उसने कहा।

राज ने वह चिट्ठी उनके सामने कर दी। पढ़ कर बोले — "आज मैच हो रहा है। प्रेम मेरे पास तो नहीं, पर मेरे मित्र के ने पास हैं। वे भी मैच देख रहे हैं। दस मिनिट में ही मैच समाप्त होगा। चलिए आप भी।"

मैच समाप्त हुआ। स्वच्छ वाली दुकान पर गए। रास्ते में ही राज ने पूछा — "वैद्य जी की दुकान कैसी चलती है।"

"अच्छी चलती है।" उनके कहने में नम्रता थी या विषाद!

दुकान पर नौकर तो उपस्थित थे। पर मालिक-मित्र

यहां से वहां

उपस्थित नहीं थे। फ्रेम देखे गए। एक में तुम्हारे घर का बाहर आकर बनानी उठी-सी रहती थी। किसी की गोलाई ठीक न थी किसी का रंग ही पसंद न आया। किसी की मोटाई को देखकर उसे रख और खरीदना लिहाज़ा कल आने की बात ही मेरी

लौटते हुए बिजली जल चुकी थी। उनसे उनका नाम पूछा तब बहुत ही मजबूरन पड़ा। आप ही कविराज हैं। अन्तिम बार प्रणाम कर उनसे विदा ली। राज ने औषध को स्वीकार करते हुए कहा- "धन्य हो कविराज जी!"

मैंने राज से कहा - "हां, अच्छी चलती है।"

आज वापिस आना था। "उड़ उड़ पंछी फिर उड़ान पर आते। आज आखिरी बार बाज़ार में घूम रहे थे। एक के बाद एक सुन्दर दुकानें गुजरती गईं। बाज़ार के बीच में अंका एक व्यक्ति जिसके शरीर पर मैली धोती, कुरता और गांधी टोपी थी, मिला।

"आप D. A. V. कालेज के छात्र हैं?"

"हां।" हमने कहा। हमें आश्चर्य हो रहा था कि उसने हमें पहिचान कैसे लिया।

"आपके यहां देव नाम का एक गांव वाला विद्यार्थी था।"

"जी हां, था।"

"आज कल कहाँ है।"

"मर गया है।" उसने को दुःखित कहा।

"ओह, मर गया! जीवन का क्या आसरा है। किसी को कुछ भी नहीं मालूम कि क्या होगा। मैं आपसे एक बात कहूं?

मैंने उस की ओर देखा। वह कह रहा था "हूं"।

उसने अपने थैले में से एक फोटो निकाला। कहने लगा – This is हंसराज and this is I. फिर दूसरा फोटो निकाला – This is जवाहरलाल and this I. उस ग्रुप फोटो में जवाहर लाल और श्री हंसराज तो थे पर, उस वह 'I' कह कर इशारा करता था, उस शकल में और सामने वाली शकल में कुछ भेद हो था।

"देखिए," वह फोटो को अपने थैले में अन्दर रखते हुए बोला – "जीवन का क्या भरोसा। आज और कल का क्या मालूम। आज मेरी स्थिति जरा अच्छी नहीं है। मुझे थोड़े से ही पैसों की आवश्यकता है। अगर आप मुझे केवल आठ ही आने दे सकें, तो भी भला होगा।

अपनी जेब पर इस प्रकार से सभ्यतापूर्ण आक्रमण देख कर हम एक दूसरे के मुख की ओर निहार ही रहे थे कि राज बोल उठा –

"ओह, बम्बई में आप मुसीबत में हैं। आप की इस हालत को देख कर किसका दिल दुख

न हो पाएगा । इस समय मुझे बड़ा अफसोस है कि इस समय हम भी माली-तंगी में हैं। अगर हमारे पास वापसी-टिकिट न होता तो हमारा वापिस आना ही असम्भव था । इसलिये हमें आज वापिस जाना पड़ रहा है। अगर आप हमें कल मिलते तो भी हम आपकी सहायता अवश्य करते।" उसने सांत्वना देते हुए उसने कहना आरम्भ रखा - "आप तो हमें जानते ही हैं। फिर मिलते रहिएगा। हम आपकी अवश्य सहायता करेंगे।"

उसके कृत्रिम-उदास चेहरे पर निराशा के कारण स्वाभाविक-उदासी और खिद की रेखाएं दीख रही थीं।

समस्या

— श्री "अशोक"
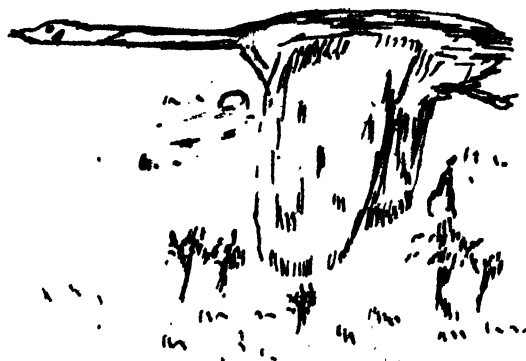
उस दिन भी दीपावली का त्यौहार था — दीपावली आई थी, प्रतिवर्ष की तरह अपनी निराली अदा के साथ, अलबेली पर मनमोहक शान के साथ, हर्ष-आनन्द-उत्साह और उमंग की लहर को लिये, जीवन और जागृति का अमर संदेश विश्व के कोने २ में फूंकती हुई। मादकता और माधुर्य से प्राणीमात्र को मोहित करती हुई। हाँ, सचमुच आज संसार विमुग्ध था।

× ×

पूजा का समय हो गया, मन्दिरों के घण्टे बज उठे। भक्तलोग थाल में पूजाद्रव्य तथा दीपक लेकर चल पड़े। मैं भी मां की पूजा के लोभ से वंचित न रह सका - अपना पूजा का थाल तथा छोटा सा दीपक लेकर घर से निकल पड़ा। मन में उत्साह था, हृदय में उमंग -

संकीर्ण पथ - रास्तों भक्त जन हाथों में पूजा का थाल लिये जिन से धूप और अगरत की सुगन्ध फूट रही थी। सारा मार्ग सुरभित हो रहा था और भक्तजनों का समूह आगे और आगे बढ़ता चला जा रहा था। भय था कि कहीं अर्चना का समय गुज़र न जाए।

× ×

उसी छोटे से मार्ग में एक ऊँची अट्टालिका गर्व से अपना सुरव ऊँचा उठाये और उस में से छन छन कर आता प्रकाश। मैंने देखा - अन्दर महल हज़ारों विद्युद्दीपकों से जगमगा रहा था।

भिन्न २ किरणों की भीनी २ सुगन्ध पथिक का ध्यान खींचती हुई और घर के सभी नरनारी देवी की पूजा को तत्पर। मैं और भी तेजी से आगे बढ़ने लगा।

× ×

वही संकीर्ण मार्ग - वही भवनों का समूह - उसी तत्परता से आगे की ओर बढ़ता हुआ। मन्दिर पास ही था - जिसके के पुजारियों का स्तुतिगान सुनाई पड़ रहा था - उसी पथ के किनारे एक छोटा सा झोंपड़ा, जीर्ण शीर्ण जहाँ एक भी दीपक न जल रहा था। मैं आगे न बढ़ सका। पास पहुँचा - एक पतली सी, दीनतापूर्ण आवाज सुनाई दी - माँ, आज दीपावली है क्या दीपक न जलाओगी? आवाज गूंज कर रह गयी - मैंने मन्दिर के प्रकाश को देखा दो गर्म २ गीले आंसू पृथ्वी को चूम रहे थे। मेरा थाल हाथ से गिर पड़ा। दीपक का तेल-

बिखर गया, दीपक मिट्टी में मिल गया।

भक्तगण अब भी वही पूजास्थल लिये दीपक जलाये मन्दिर की ओर बढ़ जाते हैं - उसी भाव से, उसी तत्परता से और मैं सोचता रहा कि मैं किस के लिये दीपक जलाऊँ?

युग बीत गये, दीपावलियाँ आईं और चली गईं। लोगों ने दीपक जलाये, घरों को सजाया, भक्तजनों ने अक्षत पुष्पों से पूजा की, लेकिन मेरे लिए वही सवाल, वही समस्या - मैं किस के लिए दीपक जलाऊँ?

एक ऐतिहासिक गवेषणापूर्ण लेख :—
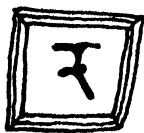
रणजीतसिंह

— श्री दयानन्द एमादश.

र णजीतसिंह - जिन का नाम याद कर पंजाब निवासियों के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष के भावुक हृदयों में श्रद्धा तथा भक्ति की लहर दौड़ जाती है - सचमुच राजनैतिक संसार में बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। यदि भूत का इतिहास वीर बोनापार्ट, विश्वविजयी सिकन्दर तथा महाराष्ट्र केसरी शिवाजी की गौरवमय स्मृति को नहीं भुला

सकते । समा के प्रलय से जब अंग्रेजों के साम्राज्य सूर्य की मन्द २ किरणें अभी पंजाब पर गिर रही थीं - उस समय से अकेले, अपना कृष्णवर्ण बादल ने उसे इस कदर ढक लिया कि उधर प्रकाश करना तो दूर दृष्टिपात करना भी खतरनाक था । लेकिन उसके पश्चात् के बादल इतने इकहरे के थे कि सूर्य के प्रकाश को तनिक भी न रोक सके । अनंगपाल के राज्य के पश्चात् हिन्दुस्तान टुकड़े २ होकर इधर उधर बिखरे ही न हुआ था अपितु नष्टभ्रष्ट हो चुका था - उसके पश्चात् पराक्रमी रणजीतसिंह के राज्य से ही हिन्दुओं का उदित होने का चक्र घोषकर, छोटे २ राजाओं के जीर्णशीर्ण बिखरे हुए राज्यों को ले विशाल साम्राज्य बना हिन्दुओं की प्रतिष्ठा को भी पुनः स्थापित किया है, लेकिन अफ़सोस, उस वीर का अतुलनीय प्रताप - तेज - बिजली की क्षणिक चमक के समान कुछ देर में नष्ट होगया।

दुनिया में एक ही type के आदमी तो पाये जा सकते हैं किन्तु भिन्न २ गुणों वाले एक ही व्यक्ति का होना कुछ कठिन है। रणजीत-सिंह उन्हीं पुरुषों में से एक थे जिन्हें दूसरी तरह के व्यक्तियों में गिना जा सकता है, उनके अन्दर थी वीर बोनापार्ट की सी रणकुशलता, शिवाजी की सी शूरता और साहस - औरंगज़ेब की सी कूटनीतिज्ञता - और था, अशोक सम्राट जैसा धर्मप्रेम - इन सब गुणों ने मिल कर उन्हें एक ऐसा सोना बना दिया था जो कठिन से कठिन कसौटी पर कसे जाने पर भी खरा उतरता था। महान आदमियों के सामने विपत्तियां तो उनकी परीक्षा के लिए हुआ करती हैं, जहाँ रणजीतसिंह ने विपत्तियों का सामना स्वतन्त्र अनुभव किया - वहाँ दैव के कोपभाजन से भी वह न बच पाये। सरस्वती देवी की उन पर कृपा न थी तो भी उन्होंने अपने जीवन काल में प्रजाहितार्थ जो कुछ कर दिखाया - वह सब काबिले

तारीफ़ बात है। उनका जीवन एक अत्यन्त साधारण
व्यक्ति के जीवन की एक कहानी है, वह व्यक्ति
जो आजकल के प्रमुख नेताओं की भाँति कोई
बड़ा वकील न था और जिसके पास धार्मिक
पुस्तकों की भाँति धर्मशिक्षा ही कण्ठस्थ न थी-
अपने एक अदम्य साहस और प्रबल उत्साह के बल
पर इतना ऊँचा और विशाल साम्राज्यशाली, राज्य
स्थापित कर गया - यह एक आश्चर्य की बात है
इस वीर के समय सुलतान और मुगलों की सतत लड़ाइयों
के कारण अपने राज्य की ओर दृष्टि दौड़ाने का
मौका ही नहीं मिला - किन्तु फिर भी इसके पीछे
राजाओं ने अपने अपने देश के शासन की
तथा प्रजा की इतनी उत्तम स्थिति कायम कर दी
कि शत्रु को भी इसका लोहा मानना पड़ा।
ऐसा उदाहरण इतिहास में विरला मिलता था. इस
के इसी गुण पर तमाम यूरोपीय इतिहासकार भी
एकस्वर से इसकी प्रशंसा करते हैं.

किसी भी मनुष्य के बड़े होने का एक ही

विश्व-शान्ति के लिए धर्म की आवश्यकता है या नहीं —

— श्री विद्यालंकार जी चतुर्वेदी.

अकबर ने अपने समय में एक सर्वधर्म-सम्मेलन करके तत्कालीन धर्मों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया था - दुनियां जानती है कि उनके प्रयत्न उनकी समाप्ति के साथ ही समाप्त होगए। उनके उन प्रयत्नों का आधार कौन सी महत्वाकांक्षाएं थीं उन्हें तो ऐतिहासिक ही बता सकते हैं परन्तु उन महत्वाकांक्षाओं में उनकी एक बलवती महत्वाकांक्षा धर्मप्रवर्तक बनने की थी। इसीप्रकार आज के राजनैतिक महत्वाकांक्षी अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए जनता को बहकाने का प्रयत्न दिनप्रतिदिन किया करते

हैं। अपने विचारों को, अपनी आकांक्षाओं को वे लोग ऐसी भाषा में, ऐसे शब्दों में रखते हैं तथा इस प्रकार भावनायें उपस्थित करते हैं कि साधारण जनता के कोमल हृदयों में विशेष ऊंचा स्थान बना लेते हैं। इस प्रकार के लोगों को प्रोत्साहन देने वाले भी कोरे आदर्शवादी होते हैं। वे लोग जनता से उत्साह पाकर आदर्शवादियों से प्रोत्साहन पाकर अपना उल्लू सीधा करने में ज़रा भी नहीं हिचकते।

हमारे समाज में विभिन्न सम्प्रदायों में उत्पन्न हुई कटुता को उपस्थित किया जाता है। हिन्दु मुसलमानों में होने वाले झगड़ों का मूल कारण धर्म की भिन्नता बताकर धर्म की एकता के लिये अपील की जाती है परन्तु हमने आज तक कभी भी उत्पन्न कटुता के कारणों को समझने का प्रयत्न नहीं किया, हमने हमेशा से अपनी बुद्धि को तिलांजलि देकर रूढ़ी की आड़ में शिकार खेलने वालों के वचनों को सिर आंखों पर चढ़ा कर उनसे आगे तो विचारने की चेष्टा नहीं की। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या आप इस सिद्धान्त को

मानते हैं कि वर्तमान संसार में जितने भी धर्म हैं उन
की पुस्तकों में या उनके साहित्य में अपने से-विपरीत-
धर्म वालों के साथ लड़ने के लिए लिखा है हिन्दू धर्म
ने इसमें उदारता, सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया है। हिन्दू
लोग - हां वही हिन्दू - जो अपने पेट में अन्न डालने से
पूर्व कौवे और बिल्ली को खिलाता है, जो चींटी का
बिल पर जाकर खाण्ड चढ़ाता है कि कहीं भूखी न
मर जाए, जो बानर देवता के पीछे चने भी जेबों में
लिये लिये फिरता है - कि कहीं हनुमान जी भूखे न रह
जाएँ - मुसलमान से बढ़कर जो जहरीले सांपों को
दूध पिलाता है - वही हिन्दू - धर्म के नाम पर
दूसरों का कतल करने जाएगा। बौद्धधर्म - जिसने
सर्वप्रथम आचार्य का हृदय पशुओं की हत्या को
देखकर विह्वल हो उठा था जिसके महाराज अशोक
से अनुयायी युद्ध में होने वाली हत्याकाण्ड को देख
कर बिलख २ कर रो उठे थे - जिनके शान्तिप्राप्ति
के लिए बौद्धधर्म के द्वार खटखटाये थे। जिस धर्म
के भिक्षुओं के लिए —

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय - बहुजनसुखाय
लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।

तरह पूछते थे, क्या इस लेख कि ने धर्म के उन शान्ति-
वादियों को सहायता नहीं दी? क्या यह सत्य है कि
अबूबकर ने खलीफा होने पर राजाज्ञा प्रचलित की-
"अत्यन्त कृपालु ईश्वर के नाम से प्रारम्भ करता हूँ-
अबूबकर शेष सब मुसलमानों को सलामती और
खुशी की दुआ देता है। ईश्वर तुम्हारे ऊपर दया करे
तथा तुम्हें आनन्द में रखे। मैं ईश्वर की प्रशंसा
करता हूँ। मैं उनके दूत मुहम्मद के हेतु विनय
करता हूँ। इस राजाज्ञा द्वारा तुम्हें सूचना दी जाती है
कि मैं सच्चे मुसलमानों को सीरिया देश में भेजना चाहता
हूँ कि वे जाकर उस देश को काफ़िरों के हाथ से
छीन लें और तुम्हें मैं जताना चाहता हूँ कि धर्म के
वास्ते लड़ना मानो ईश्वराज्ञा मानना है।" दमिश्क
निवासियों के सामने क्या यह शर्त नहीं रखी गई थी
कि या तो मुसलमान हो जाओ या लड़ो। उमर खलीफा
के ये शब्द कि —" यदि ये पुस्तकें ईश्वरवाक्य
कुरान के प्रतिकूल हैं तो वे अपकारी हैं उन्हें नष्ट
कर देना चाहिये और यदि अनुकूल हैं तो व्यर्थ
हैं और उनको बचा कर रखने की ज़रूरत ही नहीं।

इतिहास नहीं भुला सकता। इस प्रकार इस्लामी राजवंश द्वारा
संस्कृति कर्मों की मेहनत से के विद्या के भण्डार-
में राख में परिवर्तित कर दिए गए भारत के बाहर
भी विजित देशों में इन धर्मावलम्बी पर लादे गए
जजिया कर को इतिहास नहीं भुला सकता। इसी प्रकार
क्रूसेडर लोगों ने त्रिपोली के पुस्तकालय को
केवल इसलिए जला दिया कि वह अरबलोगों की लिखी
हुई पुस्तकें थी। भारतीय मुस्लिम शासकों ने तलवार के
बल पर ही तो धर्म का प्रचार किया। हिन्दू संस्कृति और
शिक्षा के केन्द्र ध्वंस कर दिए गए। कुख्यात बख्तियार
खिलजी ने नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविख्यात
विश्वविद्यालयों को आग की भेंट कर दिया। यदि
मध्य भारत में से बौद्ध धर्म हिन्दूधर्म में समाहित होने
से भाग था तो उसकी आकृत और प्राय बौद्धों के
बची खुची शक्तियों को तुर्कों और पठानों ने नष्ट
कर दिया था। भगवान बुद्ध के नाम पर जापान में
किसी को स्थान में ही रहे और अनेक सम्प्रदायों में
भयंकर लड़ाई हुई। मजा यह कि दोनों पक्ष ही यह
कहते थे कि वह भगवान बुद्ध के लिए लड़ रहे हैं

उसे मरने पर निर्वाण की प्राप्ति होगी। जापान के बड़े2 भिक्षु-मठ वहाँ की लड़ाइयों के केन्द्र बने हुए थे.

धर्म के नाम पर पैलस्टाइन की भूमि पर अनेकों ईसाई वीरों ने और तुर्कों ने खून बहाया है। तुर्कों ने मुसलमान होने के कारण पैलस्टाइन में आने वाले ईसाई यात्रियों पर अत्याचार आरम्भ कर दिये जिससे यूरोप भर में असन्तोष की लहर दौड़ गई। अर्बन द्वितीय, तत्कालीन पोप ने यूरोप के विभिन्न राजाओं से अपील कर इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने की अपील की। वहाँ आग बन उस भूमि को लांछित किया गया। यूरोप में चर्च ने इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि उसके विरुद्ध कोई सिर नहीं उठा सकता था। जिन लोगों ने चर्च की शक्ति और वैभव के विरुद्ध आवाज़ उठाई उनके विरुद्ध धर्मयुद्ध-की घोषणा कर दी गई। वाल्डो के अनुयायी वाल्डेनिसन लोग दक्षिणी फ्रांस में क्रूरता से कत्ल किये गये। बोहेमिया में जान हस के अनुयायियों के विरुद्ध [illegible] सेनायें भेजी गईं। हस को जीवित ही आग में जला दिया गया। विक्लिफ की हड्डियों को

कबर से निकाल कर जलाया गया। तत्कालीन विज्ञान विचारकों को धर्मद्रोही और काफिर करार दिया गया। उन्हें भयंकर दण्ड दिये गए। गैलिलियो तथा कोपर्निकस जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों को इन धर्म के ठेकेदारों ने भयंकर यातनाएँ दी। अपने भोगविलास के लिये ये पापमोचनपत्र जारी करके रुपया कमाते थे। जिसके परिणामस्वरूप ईसाई धर्म दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया और जिनके कारण कई सदियों तक दोनों सम्प्रदायों के लोग एक दूसरे के खून के प्यासे बने रहे। धार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजिशन कोर्ट) द्वारा दिये जाने वाले भयंकर दण्ड आज भी दिल को दहला देते हैं।

धर्म के नाम पर हुई भारत के मारकाट को कौन नहीं जानता। भारतवर्ष में प्रसिद्ध ब्राह्मणों और बौद्धों के झगड़ों को आज भी नहीं भुलाया जा सकता। वैसे ही अहिंसा के पुजारी थे पर अहिंसा धर्म रफूचक्कर हो गया। धर्म के नाम पर भारत में पशुओं का बलिदान चलता है, क्योंकि-

कल्पनाओं धार्मिक भावनाओं का प्रश्न उठाया जाता है। धर्म के नाम पर ही हिन्दू अपना गला काट कर अहित कर सकता है। धर्म के नाम पर औरंगजेब नित्यप्रति काफिरों के गले काट कर १¼ मन यज्ञोपवीत इकट्ठे करने का दृढ़ प्रण किया था। धर्म के नाम पर ही होने वाले ये अत्याचार और अनाचार विश्व-शान्ति के लिए मानवता की भलाई के लिए धर्म की सेवा के लिए क्या प्रीति नहीं करते? मैं इस सब का उत्तर पहिले दे चुका हूँ। धर्म के नाम पर ये अत्याचार नहीं होते होते, अपितु व्यक्ति विशेष की महत्वाकांक्षाएँ ही युद्ध का कारण हुआ करती हैं। कैसर ने उस भयंकारी महायुद्ध को शुरू करते हुए कहा था कि ईश्वर ने मुझे धर्म दिया है उसे मैं पुनः स्थापन करना चाहता हूँ परन्तु दुनिया जानती है कि उसने महायुद्ध धार्मिक कारणों से नहीं अपितु आर्थिक कारणों से शुरू किया था। इटली ने भी अबीसीनिया को सभ्यता सिखाने का बहाना ढूंढ़ा

था, पर क्या इन युद्ध के कारणों को आप नहीं जानते?

परन्तु फिर भी धर्म युद्ध का कारण रहा है। इसप्रकार का धर्म जो युद्ध का कारण रहा है या जो धर्म मानवता के नाश की ओर ढकेले जाते है. वह धर्म धर्म ही नहीं है। उसके साथ समझौता हो ही नहीं सकता। उसके साथ समझौता करने का अर्थ होगा कि हम भी उन नीच प्रवृत्तियों को मानते हैं। उसके साथ एकता स्थापित करने का अर्थ होगा मानवता के नाश करनेवालों को प्रोत्साहन देना। जब हम विश्वशान्ति के लिये धर्मों की एकता पर बल देते हैं तो शायद हम इन चीजों को भूल जाते हैं। आखिर धर्म की वह क्या वस्तु है जिसकी एकता के लिए इतना ज़ोर दिया जाता है? एकता के लिये आदानप्रदान बहुत आवश्यक है। कुछ एक पक्ष छोड़ता है, कुछ दूसरा। तो प्रश्न उपस्थित होता है

कि बौद्ध धर्म तो पूर्णरूपेण अहिंसावादी है और इस्लाम
में अहिंसा के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता, तो
इन दोनों में मेल कैसे स्थापित करेंगे। सच बात
तो यह है कि मेल के नाम पर हम इतने अधिक
कुछ हो जाते हैं कि हम बिलकुल विवेकशून्य हो
कर कार्य करना शुरू करते हैं। हम ऐसी अवस्था में
इतने बेहोश हो जाते हैं कि अपने घर बार सब को
छोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। हम तो यही
समझते होते हैं कि हमने किसी भी एक
अद्वितीय वस्तु को प्राप्त कर लिया है पर दूसरी
ओर इसलिए ऐसी कमी जारी होती है कि
अपने से ~~अद्वितीय~~ अद्वितीय विजय प्राप्त कर ली
हो।

S

पागल का प्यार

— श्री सुरेन्द्रनाथ जी [illegible].

वीरू! मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है कि जाकर रोगी को नियमपूर्वक दूध दे आया करो किन्तु तुम अपने में ही मस्त रहते हो — रोगी भूख के मारे चिल्लाता रहा है — अफसर साहिब ने झुंझलाते हुए कहा — वीरू बरामदे में एक कोने पर मीठी नींद में सो रहा था, मालिक की आवाज़ सुनते ही आंखें मलते हुए धीमे स्वर में बोला — साहब! इस पागल ने तो दर्द के मारे नाक में दम कर रखा है। इस

की सेवा करते २ ही मुझे नींद आ गई।"

अकबर साहिब ने सोचा चल कर खुद देखें आज काम ठीक कि नहीं, कमाल कहीं था मुझे पर करता रहा है, उन्होंने ताला न लगा। वीरू का जैसे किसी ने ठोकर मार दी हो उठ कर बर्तन में दूध ले सोमीर के कमरे की ओर चला और उसके जो कमरे की चिक उठाई तो सोमी उसे देखते ही — अब — अब कर माने लगा। वीरू पर से मालिक की डांट का गुस्सा अभी उतरा नहीं था। उसके आते ही दूध का बर्तन एक तरफ रखा और बढ़ के एक चपत उसकी गाल पर धर दी। सोमी के होश गुम यानी के लिये लौट आये और दूसरी चपत के डर से चुपचाप वीरू की ओर देखने लगा - देखते २ फिर मोम कर के अपना मुंह वीरू के मुंह के पास लाने लगा - वीरू के दूसरी चपत उठाई ही थी - सोमी चुपचाप लेट गया।

वीरू ने दूध का बर्तन सोमी के मुंह से लगा दिया और उसे पिलाने के लिये कोशिश किया। थोड़ा सा

(५).

युवक करवटें बदलने लगा। दो दुखी, दुखों की समानता ने उन्हें आपस के प्रेमपाश में बांध लिया। वे रोते थे तो एक साथ — गाते थे तो एक साथ थे। उनका रुदन क्रंदन, जीवन मृत्यु एकाकार [illegible] गया था।

एक दिन दोनों मित्र भी उद्यान के एक बेंच पर बैठे थे। फूलों की सुगन्ध से उद्यान सुरभित हो रहा था। एक ने दूसरे का — दुखी मित्र — हाथ अपने हाथ में लेते हुए बड़े प्रेम से कहा — "तुम्हारा तो आधार मैं हूँ"। दूसरे ने कृतज्ञता भरी आँखों से देख कर उसे गले लगा लिया।

'हिन्दुस्तानी' की पुस्तकें

छपरा म्युनिसिपलटी द्वारा अमान्य

गत २२ दिसम्बर की मासिक बैठक में छपरा म्युनिसिपलटी ने निश्चय किया कि वह भाषा की पुस्तकों को अपने अधीनस्थ किसी भी पाठशाला में पढ़ाना स्वीकार न करेगी। प्रस्ताव २ के विरुद्ध और एक के तटस्थ रहते हुए १५ वोटों से पास हुआ। आज्ञा जारी की गई कि कोई भी शिक्षक हिन्दुस्तानी भाषा की पुस्तकों को स्वीकृति न दे।

गत २४ तथा २५ दिसम्बर को ज़िला प्राइमरी शिक्षा सम्मेलन का अधिवेशन प्रो० जनार्दन प्रसाद झा द्विज के सभापतित्व में हुआ। जिसमें "हिन्दुस्तानी भाषा की पुस्तकों का बहिष्कार" सम्बन्धी प्रस्ताव बहुत बहस के बाद चार के विरुद्ध प्रबल बहुमत से पास हुआ। हिन्दुस्तानी पुस्तकों के कारण घोर असन्तोष फैलता जाता है।

उद्धृत –

पीपल

| ले. एक गुजराती

आंगन में एक पीपल है
पीपल में डालियाँ हैं।
डाल डाल पर पत्ते हैं,
पत्तों २ पर पीपलियाँ हैं।
चलो हम सब पीपलियां लेने चलें,
विजय घमू को गोद उठाया।
घमू तना पकड़ कर चढ़ गया
पीपलियाँ तोड़ पल्ले में भरे।
विजय कुमारी! उ हमें भी दो न
घमू बहिन हमें भी दो न।
लल्लू ने सब पिपली इकट्ठी करी,
विजय, घमू को पीपली बांध दी।
पीपली ले सब घर आये,
और अपना अपना भाग खाये।
फिरते जायें और खाते जायें,
खाते जायें और फिरते जायें।

हंसो—

तीन मनुष्य आपस में बैठे बातें कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा - क्यों जी, अगर तालाब में आग लग जाय तो ये मछलियाँ कहां जांय।

दूसरे ने उत्तर दिया - वाह! तुम बड़े गधे हो। तुम्हारे पास इतनी अकल कहां है, कि पास में पेड़ लगे हुए हैं उन पर चढ़ जांयगी।

पर अब तो तीसरे ने कहा - तुम दोनों बिलकुल मूर्ख हो। क्या वे गाय, भैंसे हैं जो पेड़ पर चढ़ जावेंगी।

राजर्षि श्रद्धानन्द

- श्री सत्यदेव जी १० म श्रेणी.
गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ.

परम पावनी गीता के इस शिष्ट गरिष्ठ एवं अमर वचन के अनुसार संसार में अनेकों महापुरुषों ने धर्म की या स्व-राष्ट्र की रक्षा के लिए इस वसुन्धरा पर कदम उठायें। इस संसार में जितने भी महापुरुष होते हैं, वे अपने पीछे अपना प्रभाव भी छोड़ जाते हैं। इनका प्रभाव अपने समय में ही नहीं, अपितु आगे की आने वाली सन्तानों और नस्लों की वाणी में भी अंकित रहता है। जीवन-मरण

संयोग-वियोग संसार की अजब पहेली है। शरीर विनश्वर है, आत्मा अमर तथा अजर है। लेकिन इन के साथ ही एक और वस्तु उदीयमान भास्कर एवं निशाकर के समान अमर है। जो इस दिवंगत आत्मा के पीछे उसके बन्धु बान्धवों, मित्रों तथा देशवासियों के हृदय में अंकित रहती है, वह है सारे जन्म भर का कमाया हुआ यश। जिन महापुरुषों ने इस संसार स्थली पर जन्म लेकर लोकोपकार के निमित्त अपने आप को समर्पित कर दिया है उन्हीं महापुरुषों में से हमारे कुलपिता अमर शहीद श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी भी हैं।

जिस प्रकार अपनी चमकती हुई चारु चन्द्र से अवलोचक जनों के लोचन निचयों को चकित करते हुए समस्त लोक को संतप्त करते हुए भगवान भानुमान उदीची में थके मांदे पथिक की भांति नित्य प्रति आनन्द में लेट लगाते रहते हैं, उसी प्रकार इस अज्ञानमय तथा विलुप्त वैदिक धर्म की मर्यादा वाले संसार में ज्ञानमयी गंगा बहा कर

अपनाने में विश्राम करने चले गए हैं। लेकिन आज हमने उस नीर सन्यासी की जीवन लीला के अनेक गुण देखने हैं और उन्हीं गुणों को अपने अन्दर धारण करके तद्‌वत् बनने का प्रयत्न करना है।

संसार के इतिहास का आध्यात्मिक व्याख्यान सन्यासी के अमर जीवन में परिमिसान के पांव होता है। यदि व्यास, शङ्कर और जनक ज्ञान की परीक्षा सरस्वती के किनारे पर हैं, यदि महावीर, मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, बुद्ध कर्म की किसी अपूर्व धवल जाह्नवी के तट पर हैं, यदि सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, चैतन्य महाप्रभु तथा रामकृष्ण परंपरा से भक्ति की किसी मधुर नीलसलिला कालिन्दी के कूल पर खड़े हैं तो मेरे स्वामि वीर सन्यासी ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी के हृदयंगमः प्रयाग सङ्गम पर खेल रहे हैं।

ईसाइयत के प्रचार में जो स्थान संट पाल का है, इस्लाम के विस्तार में जो स्थिति हज़रत मुहम्मद की है और बौद्ध धर्म के प्रचार

में जो स्थान अशोक का है; वैदिक धर्म के प्रचार में वही स्थान श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का है।

अयि पाठक वृन्द! क्या आप नहीं जानते कि स्वामी श्रद्धानन्द जी से पहले आर्यसमाज की क्या दुर्दशा थी। स्थान स्थान पर पौराणिक पण्डित आर्यों के दिलों से सच्चे वैदिक धर्म का लोप कर देने में भरसक प्रयत्न कर रहे थे और राम के नाम पर मर मिटने के लिए जनता को तैयार कर रहे थे। मानो वे संसार के नेता और शासक बन बैठे हैं और जन संस्कृति के ऊपर अपना अधिकार करने के लिए उत्सुक हो रहे थे। उस घोरान्धकार के समय "स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्" की करुण पुकार सारे भारत में दावाग्नि की भाँति चक्कर काट रही थी। स्त्रियों की समाज में अत्यन्त शोचनीय स्थिति थी; और नारिएं समाज में जाने का अधिकार भी नहीं रखती थीं। उस समय धर्म का सच्चा पथ प्रदर्शक भी कोई नहीं था।

देव दयानन्द तो पहले से ही देवलोक में स्थित हुए अपने भक्तों की बाट जोह रहे थे। और उन्हीं स्वर्गमार्ग में स्थित आंखें अपने अनुयायियों तथा भारतभूमि की दुर्दशा का अवलोकन करके. दुःखरूपी समुद्र में उमड़ रही थीं। लेकिन अब तो किसी सत्य एवं भीष्मप्रतिज्ञ देवता की ज़रूरत थी; जो देवभूमि को छोड़कर इस वसुन्धरा पर आकर पवित्र वैदिक धर्म की रक्षा करता। उस समय मेरे श्रद्धेय कुलपिता का ही इन सब कार्यों में हाथ था। वे ही धर्म की रक्षा में लगे हुए थे। उधर पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थों में आर्यजनों को पराजित करते जा रहे थे और उनके कमज़ोर हृदयों पर अपने धर्म की छाप अंकित कर रहे थे। स्वामीजी ने आर्यसमाज की ओर से, भारी शास्त्रार्थ किए। और

अन्य मतावलम्बियों के दिलों को कुछ शान्त किया। अभी तक यहां प्रतिनिधि सभा की भी स्थापना नहीं होने पाई थी। लाहौर समाज के सिवा और किसी भी समाज को शास्त्रार्थ करने का अधिकार न था। लाहौर के बाहिर कोई भी गृहस्थ धर्मप्रचार करने का धैर्य नहीं रखता था। बड़े बड़े नगरों में सत्य सनातन वैदिक धर्म का सन्देश सुनाना नितान्त दुर्लभ था। संस्कृत तो क्या हिन्दी भी आर्य पुरुषों ने न जानते थी। जन्म के पण्डित शास्त्रार्थ के अधिकारी माने जाते थे। इस सम्पूर्ण प्रथा को परिवर्तित करने का श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द जी को ही है। आर्यसमाज का खर्च चलाने के लिए "चारी प्रथा, आटा फण्ड, तथा रुई फण्ड" स्वामी जी ने ही चलाए थे। प्रभातफेरी की बुनियाद

से खोला था। इस समय इन के सामने जो समस्या

आती, उस को वे हल करते गए स्त्री शिक्षा

का प्रश्न आया तो इसके लिए भी उन्होंने

प्रयत्न किया। और जालन्धर में कन्या महा

विद्यालय की स्थापना स्वर्गीय श्री लाला

देवराज जी के कर कमलों से स्थापना करवाई

जो कि, क्या इतने से उन्हें संतोष था। उस

समय लार्ड मैकाले की नीति "भारतीयों के हृदयों

पर अपनी सभ्यता का प्रकाश डाल देना

चाहिए", सारे भारत में काम कर रही थी। उस

समय भारत की प्राचीन सभ्यता नष्ट [illegible]

दशा को प्राप्त हो चुकी थी। अब तो भारत के

बालक पाश्चात्य सभ्यता (Western civilization)

के गहरे रंग में रंगे जा रहे थे। उनके ऊपर

तो एक नया भूत सवार हो गया था। यूरोपियन

सभ्यता तथा शिक्षा में आर्य भूमि की रक्षा करना

आसान काम नहीं था। अब तो किसी राष्ट्रीय संस्था की ही इस समय आवश्यकता सिद्ध होती थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने पुण्य सलिला भागीरथी के तट पर ठेठ हिमाचल के आंचल में प्राचीन आदर्श के आधार पर गुरुकुल की स्थापना की। काम सुगम हो गया। वैदिक मत के प्रचार के लिए भी अब गुरुकुल से काफी सहायता मिल सकती है और मिली तथा मिल भी रही है। लेकिन इस विकराल कलिकाल में वैदिक संस्कृति का सूत्रपात करना कोई आसान काम न था। गुरुकुल की स्थापना तो हो गई। लेकिन इसके लिए जितनी विपत्तियां मेरे वीर सन्यासी ने झेलीं उन्हें तो सर्वान्तर्यामी, सर्वद्रष्टा परमेश्वर ही जानता है।

पाठक वृन्द! शायद आप न जानते होंगे कि उस समय जब कि गुरुकुल के लिए चन्दा प्राप्त करना था तो स्वामी जी की क्या दशा थी! स्वामी जी जहां भी जाते वहां तो लोग गुरुकुल के नाम से सर्वथा अनभिज्ञ थे। कई तो उनको दूर से आता देख यह कहते थे कि "वह गुरुकुल आ रहा है।"। हा! ऐसी दुर्दशा न जाने आर्यावर्त की कहां से टपक पड़ी। यह तो एक विकराल काल था यह भारत तो इस समय ~~गुरुकुल को~~ नरक के सदृश रौरव बन रहा था। इस समय गुरुकुल को चन्दा कहां प्राप्त हो सकता था। अब गुरुकुल चलाने के लिए खर्च कहां से आए यह भीषण समस्या उपस्थित हुई। चन्दा का किस्सा तो दूर रहा, परन्तु, कोई भी गृहस्थ अपने बालक को गोदी से अलग करके चौदह वर्ष के वनवास के लिए गुरुकुल में प्रविष्ट कराना नहीं चाहता था। लेकिन, "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" यह भाव भी सन्यासी को कार्य के लिए सतत उत्तेजित कर रहा था। पहले उन्होंने अपने ही दोनों लड़कों को

अपनी गोदी से उठाकर गुरुकुल माता की गोदी में स्थान दिया। तदनन्तर कुछ आर्यों ने अपने बालक भी प्रविष्ट करवाए। लेकिन धन की समस्या तो पीछा कभी छोड़ ही नहीं सकती थी। जिधर स्वामी जी जाते थे उधर ही लोग कहते थे "अरे! यह तो पागल है, चला है दु जियों को वेद पढ़ाने।" कुछ कहते थे कि "स्वामी श्रद्धानन्द वाल्मीकि व्यास राम और कृष्ण आदि भारत महात्माओं के विमल यश और कीर्ति को भारतीय हृदयों पर आच्छन्न करना चाहते हैं। अब तो अंग्रेजी राज्य में Shakespear और Nelson ही साधारण के हृदयों पर शासन करेंगे।" यह हृदय के उनके शब्द कम से कम मेरे तो हृदय पर काँटों की तरह प्रहार करते हैं। हाँ इस स्वार्थाभिलाषुकों की अविकल मनोकामना को धिक्कार है। जो अपने पाँवों पर आप ही कुठाराघात कर रहे हैं। ओह! ऐसी दशा में तो भारत स्वतन्त्रता का मुंह देखने में सर्वथा असंभव है। क्योंकि ये भारतीय भी अपनी संस्कृति को कोई महत्त्व नहीं देना;

चाहते। बङ्गाल के ब्रह्मसमाज के नेताओं ने तो यहां तक लिखा कि पाश्चात्य सभ्यता का सूर्य भारत में उदित हो चुका है। स्वामी श्रद्धानन्द असभ्यता के प्रभाव से भारत को बचाना चाहते हैं, मानो वह चलती गङ्गा की लहरों के सामने होकर उसे उल्टा चलाना चाहें। जैसे गंगा के प्रवाह को उल्टा चलाना दुष्कर है ठीक इसी प्रकार भारत में भारतीय सभ्यता का विकास या पुनरुत्थान असम्भव है। प्राचीन भारत की बातें प्राचीन भारत के लिए ही उपयुक्त थीं। परन्तु नव्य भारत इन बातों के लिए किसी प्रकार से उद्यत नहीं। इनके विचार में स्वामी श्रद्धानन्द आगे जाते हुए उन्नत भारत को अधोगति के गर्त में लेजाना चाहते हैं थे। लेकिन क्या यह बात सम्भव हो सकती है? गालियों की बौछार ने उनके हृदय पर कोई प्रहार नहीं किया। अन्त में धीर धुरन्धर ने ३ तीस हजार की धनराशि एकत्र करके अपने पाँवों पर गुरुकुल खड़ा कर ही लिया। वह बोया हुआ छोटा सा बीज सहसा अंकुर

सूद होकर एक उपवन का विशाल विटप बन गया। उससे अनेकों देवता स्वरूप एवं आदर्श ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करके निकले हैं। जिस कुल माता के पुत्रों ने संसार के कोने कोने पर वेदों का नाद गुंजाया है, जिन पुत्रों ने भारत की दीनता तथा हीनता का विचार करके उस धरती को सुसम्पन्न का प्रयत्न किया है, जिस माता के मंजे पुत्रों ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण में अनेकों विपत्तियों को झेला तथा समय समय पर अपनी जान को हथेली पर रखकर निःस्वार्थ भाव से कार्य किया वे पुत्र संसार के लोगों के लिए नहीं। यह एक नवीन क्रान्ति थी। संभवतः अब तो ऐसा जान पड़ता था कि अब भारत विक्रमादित्य के काल के स्वप्न लेने लगा है। अब तो भारत में राष्ट्रीय संस्था की स्थापना होगई। लोगों को कुछ भय हुआ। सरकार इसे भूत प्रेत जानकर कोसों दूर भागती थी। दुनिया का सारा नज़ारा तथा तार गुरुकुल के अधिकार में ही था। यह तो इन्द्र की पुरी प्रतीत होती थी। यहां दुष्टों का वास कहां? यहां तो प्राचीन तथा मध्यकाल की भांति पाश्चात्य

लोग इसकी करामात देखने आते थे। अब तो सचमुच ऐसा मालूम देता था कि भारत फिर से अपने ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेगा। इस संस्था में तो प्राचीन वैदिक संस्कृति की शिक्षा दी जाती थी। अमेरीका तथा इंग्लैण्ड आदि देशों से भी लोग आकर गुरुकुल की शिक्षा को पाते थे। सब देशों ने अपने प्रतिनिधि चुन कर गुरुकुल देखने के लिए भेजे। ब्रिटिश गवर्नमेंट के भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री, मि० रैम्जे मेकडॉनल्ड गुरुकुल का निरीक्षण करने के लिए यहां पधारे। गुरुकुल शिक्षा-पद्धति का निरीक्षण करने के पश्चात् 'डेली क्रानिकल' में एक गुरुकुल विषयक लेख भेजते हुए प्रारम्भ में ही आपने लिखा था कि :-

" Every one, who has read of ~~Indian~~ Indian sedition, has heard of Gurukul, where the children of Arya Samaj are educated".

अर्थात् भारत के राजद्रोह से जिसे ज़रा सा भी परिचय है उन्होंने गुरुकुल का नाम अवश्य सुना होगा।

ऐसी ऐसी विज्ञप्तियां गुरुकुल के नाम पर निकलती थीं

लेकिन, आज तक भी गुरुकुल देश के साथ सदा रहा है। आज यदि हैदराबाद की शोचनीय स्थिति का अवलोकन किया जाय तो वहां भी कुल माता के लाल ही अपने प्राणों को बेच रहे हैं। और अपने धर्म तथा मर्यादा की ही रक्षा के लिए वे अपने आप को धर्मवीर लेखराम तथा श्रद्धानन्द की तरह न्यौछावर कर देने को तत्पर हैं। यह सारा प्रताप मेरे वीर संन्यासी ही का है। सचमुच वीर संन्यासी ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति कर के अपने नाम को दुनियां में अमर किया है। स्वामिन्! तुम धन्य हो! कुल माता! तुम्हें प्रणाम! धर्म की बलिवेदी पर कुर्बान होने वाले कुलपुत्रों! वाह तुम तो साक्षात् अमर हो! तुम कुल मर्यादा की शान हो।

हिन्दु मुस्लिम ऐक्य :-

आज लोग हिन्दु मुस्लिम एकता के लिए शतशः प्रयत्न करते हैं, परन्तु, वह सारा आयास जल के बुद्बुदों की भांति तत्क्षण विलीन हो जाता है। परन्तु सच्ची एकता तो उस सन्यासी ने उत्पन्न की थी। वह एकता सारस पूर्ण उत्पन्न हुई थी। उस दिन दिल्ली की तारीखी मस्जिद के ~~अन्दर पर~~ मम्बर पर सन्यासी खड़ा था।

ईश्वर का वह पुत्र अल्लाह की पवित्र वेदी पर सुन्दर मुकुट की भांति लोगों के दिलों को रिझा रहा था। जिस मण्डप पर बड़े बड़े राजा महाराजा स्थित नहीं हो सकते, जिस पर किसी भी राष्ट्रीय नेता को नहीं बुलाया गया; उस पर यह सन्यासी खड़ा होता है। वह अरबी नहीं बोलता उर्दू नहीं बोलता परन्तु यहाँ पवित्र वेद के मन्त्रों से मण्डप को गुंजायमान कर देता है। जिस प्रकार मदमाते हाथी अलि वृन्दों के गुंजारव के परवश होते हैं इसी प्रकार उस मण्डप में स्थित सारा मुस्लिम समाज इस सन्यासी की मधुर दिव्य वाणी पर मुग्ध हो रहा है। सब श्रोताओं ने अन्दर से आती आवाज को सुना:—

त्वं नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अथाते सुम्नमीमहे।

दिल्ली का वह दृश्य याद करके आज छाती धड़कती है। सामने गोरखों की संगीनें हैं, कायर तो भाग जाता। लेकिन वह सच्चा वीर सन्यासी कर्तव्य पथ से तनिक सा विचलित नहीं होता। वह उस समय धीर धौरेय था। उसके दिल में "धीरा-

स्मरन्ति विपदां न तु दीन चेता:" की स्मृति धारण कर रही थी। उस समय वह राष्ट्र का नेता था। किसी भी नेता ने अपनी जान को हथेली पर रख कर ऐसी भयङ्कर परिस्थिति का प्रत्यवस्थान कभी नहीं किया जैसा कि उस सन्यासी ने किया था।

आज ग्यारह प्रान्तों में अपनी सरकार (Self Government) स्थापित हो चुकी है ~~~~ और राम राज्य स्थापित कर रही है। परन्तु इस सन्यासी ने बिना मन्त्रि-पद ग्रहण किये ही राम-राज्य स्थापित करके दुनियां के सामने अपना भव्य आदर्श रख दिया है। यह इतिहास में सुवर्णाक्षरों से अंकित किया जायगा कि उस दिन देहली में मूतालय बन्द रहे। शराबखानों में कुडुल लगे थे। नृत्य-गृह (Dancing Halls) उस दिन सोए हुए थे। कोई मिथ्याचार नहीं हुआ, कोई मारपीट की वारदात नहीं हुई। किसी देवी को कुदृष्टि से देखा तक नहीं गया। यह है राम राज्य का आदर्श। उस दिन इस धीर धौरेय स्वामी

का पहरा था। उसको राजा अश्वपति की तरह कहने का अधिकार था कि ——

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।

नानाहिताग्नि र्न विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

देख लिया रामराज्य का भव्यादर्श। यह आज एक नेता था और महान् नेता था। आज सब ओर राष्ट्रिय नेताओं का मान हो रहा है। और नेता भी प्रतिष्ठा लाभ कर रहे हैं यह देख कर सचमुच दुःख होता है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी को राष्ट्रिय-संस्थाओं ने वह स्थान उन्हें नहीं दिया जो कि दिया जाना चाहिए। वह आर्यसमाज का अशोक था, वह रामराज्य का संस्थापक था, वह विधवाओं तथा अछूतों का पिता था, एक शब्द में "वह कल्याण मार्ग का पथिक था"। यदि इस महान् आत्मा की राष्ट्र पूजा नहीं करता तो इस देश के लोग कदर न करने के पुतले हैं तथा अभागे हैं। चाहे वे न करें, लेकिन मैं तो उस वीर को कभी भुला नहीं सकता वह मेरे हृत्पत्र पर पत्थर की रेखा की भांति आजन्म अङ्कित रहेगा। मैं उस सन्यासी की शरण में जाना चाहता हूं तथा जाऊंगा। धर्म की बलिवेदी पर हंसते हंसते मुझे भी अपने प्राण न्यौछावर करने होंगे।

बस समय आ रहा है, केवल ज़रूरत इसकी है कि हम श्रद्धानन्द बन सकें। उसकी कीर्ति दुनियां ने गाई नहीं, परन्तु जबतक एक भी आर्यवीर जीवित है श्रद्धानन्द का नाम अमर है। वह आर्यवीरों के हृदयों में व्याप्त है, वह आंखों में रमा हुआ है, वह होठों पर चढ़ा हुआ है, सीनों में समाया हुआ है। लेकिन, ज़रूरत तो इस चीज़ की है कि हम सन्यासी के कर्तव्य को सम्भालें। अपनी कुलमाता की हार्दिक सेवा करें। चौदह वर्ष की उपार्जित विद्या निष्काम भाव से दुनियां में काम में आवें तो अच्छा ही है। इस विद्या को देश के कामों में लगाओ न कि बाहर की यूनिवर्सिटीओं की तरह अपनी विद्यालङ्कार की ~~उपाधि को~~ पदवी को स्वीकृत करा कर प्रोफ़ेसरी करने का इरादा रखो। धर्म का प्रचार करो। तुम कर्म परायण हो, संसार में अमर कहलाने के अधिकारी हो जाओगे। स्थान स्थान पर वेद का प्रचार हो, व्योम को स्पर्श करती हुई पवित्र "ओ३म्" की पताका प्रत्येक आर्य (हिन्दु) के घर घर लहराती हो। इस प्रकार वैदिक धर्म की पताका जब

आर्य समाज के निजी जीवन में लहराने लगेगी तब यश महिमा और सफलता अनन्य भक्त की तरह आकर हमारे चरण कमलों की सेवा करेंगे। आशीर्वाद की वर्षा होगी। स्वर्ग में स्थित ऋषि और संन्यासी की दृष्टि पिपासाकुल च हुई अपने भक्तों की राह देखेंगी। भारतीय सभ्यता का आदर्शवाद महत्ववाद में परिणत हो जा जाएगा। हम अमर हो कर स्वर्ग पथ के पथिक बनेंगे। इति राम।
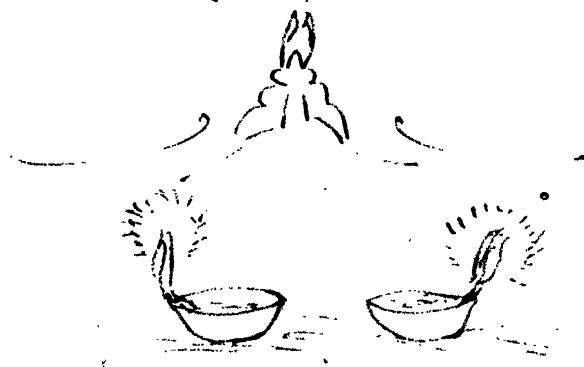
सुपना

— श्री केवलकृष्ण जी
एकादश.

रात अँधेरी थी। कुछ कुछ ठण्ड भी बढ़ती जारही थी। पढ़ने को जी न चाहता था। आँखे नींद से भारी हो रही थीं। काफ़ी देर के संग्राम के बाद मैं अपने स्वच्छ, गुदगुदे और गरम बिछौने में पड़गया। और........, और न जाने मुझे कब निद्रा आगई — यह सब निद्रा ने अपने पास गुप्त रक्खा, मुझे नहीं बताया।

दिन भर की थकाने वाली कशमकश और मुशक्कत के बाद रात में अपने आप को निद्रादेवी की गोद में डालकर सब चिन्ताओं से अलग होकर अपनी दिन भर की थकावट दूर कर रहा था कि यकायक मेरे सामने चित्रपट की तरह भयानक दृश्य उपस्थित होने लगा। उस की भयानकता की कल्पना करके अब भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या देखता हूँ कि क़यामत का दिन आगया है। मैं बैठा हुआ हूं।

कुछ सांप आते हैं और मेरे पास से होकर चले जाते हैं। इस-
प्रकार नाना प्रकार के सांप गुजरते चले जारहे हैं। मैं मनमें
सोचने लगा कि अब काल आगया। यदि कोई इष्ट देवता होते हैं
तो मैं उसी को याद करने लगा और चिल्लाकर लगा रोने।

उस सब कुछ के बीच बैठा हुआ मैं मृत्यु की
घड़ियाँ गिन रहा था कि सहसा एक बहुत बड़ा पक्षी उड़ता-
हुआ मेरे पास आया। उसको देखते ही मेरे पासलेटे-
हुए सारे सांप भाग भाग कर लगे सबके सब मेरे बदन
पर लिपटने। मैं बेहोश हो गया। मुझे कुछ नहीं मालूम कि
क्या हुवा क्या नहीं। जब मूर्छा टूटी तो मैंने अपने आ-
प को एक घर में पाया। न जाने यह घर किसका था।
काजल से भी अंधेरी रात थी। हाथ को हाथ नहीं-
सूझ पड़ता था। और उस में भी यह कोठरी तो Black-
japan का सा समुद्र बन रही थी। मैं खड़ा हुवा सोच रहा-
था कि यदि किसी ने चोर कह कर पकड़ लिया तो क्या-
करूँगा। इतना सोच ही रहा था कि सहसा मेरी ओर
किसी ने Torch का प्रकाश डाला। वह आँखों को चौंधिया

चौंधिया देने वाला तेज़ प्रकाश मेरी ओर आने लगा। ज्यों ज्यों वह पास आता जाता था - मेरे प्राण सूखते जाते थे। और उस प्रकाश के पीछे से चौंका देने वाले शब्द निकल पड़े — 'तुम यहाँ कैसे?' मैं चुप-रहा। फिर उसी दिल दहलाने वाली गरजती हुई आवाज़ ने वही हृदय धड़क रहा था। मेरे होंठ स्पष्ट हिले और अटकते अटकते शब्द निकलने लगे — ' न न न जा-ने — मैं —— क-ै — से आ— —ं—। अरे झूठ बोलता है।' वह विश्वास ही न करे। मैंने करवट बदली। वह टौर्च सामने न थी- ओर —ं ओ — ओ।

सहसा चित्र (दृश्य) बदला। मैं भी हैरान-था मेरे साथ क्या खेल हो रहा है!

• 'देखता हूँ काली काली रात भागती जा रही है'।

• • प्रातः काल। अरे उषा। ठण्ड पड़ रही है। ठण्डी • हवा का भी कुछ प्रकोप अनुभव हो रहा है। चारों ओ-र प्रकृतिदेवी के सौन्दर्य का परदा उठ रहा है। धीरे धीरे घास और पत्तों पर पड़ी ओस की बूंदें सूर्य के हलके प्रका-श से चमक रही हैं। सूर्य ऊंचे- ऊंचे चढ़ता जा रहा है। गरमी भी बढ़ती जा रही है। मैं वहीं घर में हूं- बुभुक्षा का

आतङ्क मुझे सता रहा है। ज्यों ज्यों सूर्य अस्ताचल की ओर-
जा रहा है मेरा पेट भी पीठ के साथ मिलने को सर्वात्मना
उद्यत हो रहा है।

और फिर सायङ्काल। सूर्य अपने लाल
पीले प्रकाश से क्षीण होता हुआ अस्ताचल की ओर द्रुत
गति से प्रयाण कर रहा है। चन्द्रमा भी रवि का उत्तराधिकारी
बन अपनी चांदनी को चहुंओर उस भूमण्डल पर बिखराने
लग गया है। और इधर मेरा पेट भी पीठ के साथ चि-
पका जा रहा है।

और फिर रात। आकाश में तारे
टिमटिमा रहे हैं। कुछ आवाज़ आने लगी। घण्टा
भी बजने लगा बरामदे में चपलियों खड़ाऊओं की खट-
खट की आवाज़ भी सुनाई देने लगी। और इधर वह
आकाश में एक रास्ता सा बन रहा है — वह शीघ्र-
देखते 2 तैयार भी होगया। और वह उस रास्ते पर -
आभूषणों से सजे हुए मोहन विशाल मस्तानी चाल से
चलते हुए गले में की मणियों से अपने आप को और

और भी आकर्षक बना रहे थे। इन हाथियों पर इतनी सजा-
वट देख कर यही अनुमान होता था कि आज देवताओं की
सवारी निकलेगी।

और वहीं बन जाता है एक सिंहासन,
सोने से मढ़ा, मोतियों से जड़ा हुआ जिस पर एक धवल
झिलमिल करती चादर बिछी है। सभामण्डप सजाया जा रहा है।
उन हाथियों पर से एक एक करके गान्धी टोपी धारी सादे वेष में एक
कुछ व्यक्ति उतर आते हैं - बड़ा स्वागत होता है। इतने ही में
ही एक सफेद हाथी पर से एक तेजस्वी महात्मा उतरते हैं और उन्हें
सिंहासन पर बैठा दिया जाता है। जयनाद से दसों दिशायें गूंज उठती
हैं। इस सभा में प्रस्ताव यह पेश होता है की राजा
कौन बने और राज्य कैसे किया जाय इतने में ऊपर से देवगण फूल
बरसाने लग जाते हैं।

यह दृश्य पूरा भी न हो पाया मेरी नींद खुली। ५½ की
तीसरी घण्टी बज रही थी। मेरे साथी भाई अखबार पढ़ रहे थे। उपस्थि-
ति में अपना नाम सुनकर झट से 'उपस्थित भगवन' चिल्लाता हुआ
भागा।

एक साथ कई शब्द लिखना

एकाग्रता और मनोयोग की साधना से आदमी एक साथ कितने ही काम कर सकता है। मिस एलना मार्क की एक युवती ने ऐसा अभ्यास कर लिया है कि वह अपने हाथों और पैरों के सहारे एक ही साथ किसी भी भाषा के भिन्न २ शब्दों को लिख सकती है।

बिना बीज का तरबूज़

तरबूज़ बड़ा स्वादिष्ट फल होता है। गर्मी के दिनों में यह होता है और सुस्वाद के साथ इसका मीठा और शीतल जल गर्मी की तपिश को बुझा देता है। पर इसमें एक ऐब है। वह है इसमें बहुत अधिक बीज होना। अत्यधिक बीज होने के कारण इसके खाने का मज़ा किरकिरा हो जाता है। पर अब वैज्ञानिकों ने इसके इस ऐब को भी दूर कर दिया है। मिशिगन स्टेट कॉलिज के एक चीनी विद्यार्थी च्यांगचिनवाङ्ग ने ऐसी रासायनिक क्रिया निकाली है जिससे तरबूज़ में एक भी बीज नहीं रह सकता है।

उद्धृत

साहित्य और उसका स्वरूप

ले. श्री. मिश्रजी

जातीय जीवन में और जाति के सांस्कृतिक प्रकाश में साहित्य का क्या स्थान है और साहित्य की आवश्यकता एवं मर्यादा क्या है, इस बात को हम सब लोग अच्छी तरह उपलब्ध करते हैं। मैं तो साहित्य साधना को राष्ट्रीय साधना के समकक्ष ही समझता हूं, और इस दृष्टि से किसी भी राष्ट्रीय सम्मेलन की अपेक्षा साहित्य सम्मेलन का महत्व किसी भी अंश में कम नहीं समझता। राजनीति के आधार पर स्वाधीनता का जो संग्राम चलाया जाता है, उसके पीछे यदि साहित्यिकों की गूढ़ एवं नीरव साधना-शक्ति न हो तो वह कर्म सार्थक नहीं हो सकता। यों बाह्य रूप में सार्वभौम मानव वृत्तियों के ऊपर साहित्य की जो साधना होती है उसके साथ राजनीति का कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। किन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो राजनीति की प्राण-शक्ति उसी में निहित रहती है। संसार की अनेक जातियों के इतिहास से यह प्रमाणित हो चुका है। आज आयर्लैण्ड की स्वाधीनता सुप्रतिष्ठित हो चुकी है। आयरिश जाति की स्वाधीनता

की यह साधना दीर्घ काल तक चलती रही। किन्तु इस सुदीर्घ संग्राम के पीछे उनके प्रतिपक्षी का सबसे बड़ा लक्ष्य था आयरिश जाति के जातीय साहित्य एवं संस्कृति के आदर्श को ध्वंस कर देना और आयर्लैण्ड के अतीत को उनकी दृष्टि में निरर्थक सिद्ध करके शासक जाति के प्रति मर्यादा-बोध का भाव उनके मन में भर देना। आयर्लैण्ड के स्वाधीनता सैनिकों ने उग्र राजनीति में उन्मत्त होकर आरम्भ में इस सत्य की ओर ध्यान नहीं दिया। और यही कारण है कि समग्र जाति के अन्तर को उनकी साधना आलोड़ित नहीं कर सकी। पार्नेल के राजनीतिक जीवन के अवसान के उपरान्त आयरिश देश-प्रेमियों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ और तब साहित्य-साधना के मार्ग से आयरिश जाति में नूतन जीवन का उद्बोधन करने की चेष्टा होने लगी। गैलिक लीग की प्रतिष्ठा से इस साधना का सूत्रपात हुआ और अन्त में त्यागी साधकों की यह साधना सफल हुई जिसे आयरिश जाति के इतिहास लेखक फ्रान्सिस हैकेट ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। प्रत्यक्ष राजनीतिक संग्राम का मूल्य कम है – यह मैं नहीं कहता; किन्तु प्रत्यक्ष राजनीति के साथ इसका सम्पर्क न होने पर भी साहित्य की जो यह साधना

है वह राष्ट्रीयता की दृष्टि से कितना महत्त्वपूर्ण है यह बात हम लोगों को गम्भीर रूप में उपलब्ध करनी होगी। संसार में जितने बड़े २ विप्लव हुवे हैं जिनके द्वारा इतिहास में युगान्तर उपस्थित होगया है उनके पीछे हम विद्रोही दल को दो भागों में विभक्त पाते हैं एक दल भावुकों का, जिनका जीवन व्रत होता है प्राणमयी भावनाओं का प्रचार करना और दूसरा दल कर्मियों का जिनकी जीवन व्यापी साधना होती है, उन भावनाओं को कार्य रूप में परिणत करना। भावुक और कर्मी, इन दोनों में कौन बड़ा है — इसको लेकर वाद विवाद करना व्यर्थ है। दोनों में से किसी को बाद देकर जातीय इतिहास की नूतन रूप में सृष्टि नहीं की जासकती। भावुक के हाथ में होती है लेखनी, जिसके द्वारा वह जीर्ण-शीर्ण पुरातन के विरुद्ध निर्मम अभियान शुरू करता है। अग्नि-स्फुलिंग के समान जो ज्वलन्त भाव उसकी लेखनी से विकीर्ण होते हैं उससे युग युग के संचित कुसंस्कार एवं अन्ध विश्वास भस्मीभूत होने लगते हैं और नूतन धारणाओं से मनुष्य का मन ओतप्रोत होने लगता है। इसके बाद उन भावों को रूप देने के लिये, क्रान्ति के स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये हम कर्मियों को कर्मक्षेत्र

मे अवतीर्ण होता देखते हैं। रूसो और वाल्टेयर मुक्ति की वाणी सुनाते हैं - डाल्टन और शेक्सपीयर उस वाणी को मूर्ति प्रदान करते हैं। मिल्टन के भावों को क्रामवेल के कार्यों में रूप मिलता है। मेज़िनी इटली की स्वाधीनता का स्वप्न देखता है और गैरी बाल्डी उस स्वप्न को चरितार्थ करता है। वाशिंगटन की तलवार के पीछे यदि टामस्पेन की लेखनी नहीं होती तो उसकी शक्ति को कहां से प्रेरणा मिलती लेनिन की प्रचण्ड कर्म शक्ति के पीछे गोर्की की साहित्य साधना का क्या कम हाथ था? इसीलिये मन की दुर्जय शक्ति को किसी प्रकार भी हम कम महत्व नहीं दे सकते। "Mind is a force of Nature!" ।

अब साहित्य के सम्बन्ध मे आप लोगो के समक्ष कुछ निवेदन करना है। साहित्य का रूप क्या होना चाहिए? उसका आदर्श क्या होना चाहिये, - इस विषय को लेकर न मालूम कबसे वाद विवाद चला आता है, और इस वाद विवाद का कभी अन्त होगा या नहीं यह कहना कठिन है। साहित्यिक साहित्य की सृष्टि करता है, पाठकों के लिये बोध गम्य भाव मे उसे प्रकाशित करता है। किन्तु किसी सृष्टा की सृष्टि तभी वास्तविक [illegible] कला होती है जबकि वह अपनी अनुभूती द्वारा दूसरे की चेतना को जागृत कर सकता है।

जो कुछ लिखा जाय वह सब साहित्य नहीं है जो आर्ट है वही साहित्य कहा जा सकता है - साहित्य का अर्थ है साहित्य - कला । किन्तु यह आर्ट कला क्या है, इस विषय को लेकर भी कम वाद विवाद नहीं है । एक दल का कहना है " काव्यं रसात्मकं वाक्यम्" रस सृष्टि ही आर्ट का मूल तत्व है । पाप, पुण्य धर्म - अधर्म, श्लील अश्लील, सुनीति - दुर्नीति, इन प्रश्नों को लेकर गिर्जा के पादरी, मस्जिद के मौलवी, और मन्दिर के पुजारी सिर खपाते रहें । समाज का कल्याण किन बातों से, इन विषयों पर विचार करना काम है सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट का। आर्टिस्ट न तो सोशलिस्ट है और न कम्युनिस्ट, और सुनीति प्रचारक पादरी और धर्मोपदेशक, धर्माचार्य तो किसी भी रूप में नहीं । उसका काम है सौन्दर्य की सृष्टि करना । आर्ट की मायापुरी में कल्पना के रंगीन पंखों पर उड़ते हुये सौन्दर्य की माला गूंथना । इस श्रेणी के साहित्यिक आर्ट को समझते हैं ।

दूसरी श्रेणी के साहित्यिकों का कहना है कि समाज कल्याण के साथ जिस कला का योग नहीं है वह कला नहीं है । जिसका काम है अभिजात श्रेणी के तरुण - तरुणियों के दुर्बल प्रेम की लास्यमयी लीलाओं का सुन्दर सुकुमार परिमार्जन करना अथवा अलस क्षण

Neorotic मन की कल्पना-प्रसूत सौन्दर्य विलासता को रूप देना, वे आर्ट के नाम पर दुर्नीति एवं व्यभिचार की सृष्टि करते हैं। "स्वान्तः सुखाय केवल आत्म प्रकाश करना" ही आर्टिस्ट का काम नहीं है और न उसमें उस का कृतत्व ही है। सबसे बड़ा आर्टिस्ट वही है जिसकी प्राण वीणा में महामानव के अन्तर का स्पन्दन जाग्रत होता है। जिसमें प्रकाशित होती है विपुल जीवन की कल्लोल ध्वनि, जो कोटि-कोटि शृंखलित, उत्पीड़ित, शोषित नर नारियों की आशा आकांक्षाओं का प्रतीक होता है, जो भाव रूपी, अग्नि स्फुलिंगों द्वारा जाति के अतीत तिमिर को ध्वंस कर देता है, और जिसके कण्ठ से निनादित होता है स्वाधीनता एवं सत्य का जय-गान। मेरे विचार से उच्च कोटि के साहित्य को किसी नियम के अन्दर सीमाबद्ध नहीं किया जासकता। जो लोग यह कहते हैं कि आर्ट का काम केवल आनन्द की सृष्टि करना, कलाकार के आनन्द को प्रकाशित करना है उनकी बात बात को सब समय के लिये एक तथ्य के रूप में मान लेने को जी नहीं चाहता। उसी प्रकार सुनीति एवं धर्मोपदेश द्वारा समाज का केवल मंगल साधन करना ही आर्टिस्ट का धर्म नहीं है। सुनीति का प्रचार करना पादरियों और पुरोहितों का काम है। साहित्यिक न तो पादरी है और न पुरोहित। तो फिर उच्च कोटि के साहित्य का क्या रूप होना चाहिये ?

इसका उत्तर हम रोमां रोलां की भाषा में यूं दे सकते हैं-
आर्ट में धूमकेतु की तरह गति वेग होगा जो हमारे
जीवन को गतिशील बनाने की प्रेरणा देगा, उसमें होगी
शक्ति प्रचुरता जो हमें मन की दुर्बलता को जीतने
में सहायता पहुंचायगी। वह अग्नि-शिखा की तरह
ज्योतिर्मय एवं पहाड़ी सरिता की तरह वेगवान होगा।
वह हमारे अन्तर को उदार एवं व्यापक बना देगा और
जीवन की समस्त जड़ता; शिथिलता एवं अवसाद को
दूर करके उसमें उन्मादना एवं तेजस्विता भर देगा।
इस प्रकार से साहित्य की प्रधान विशिष्टता यह होती है
कि उसके साहचर्य से हम अपने मन में एक नूतन
प्रेरणा का अनुभव करते हैं, वह हमारे जीवन में रूपान्तर
ला देता है। इस प्रकार से साहित्य के सम्बन्ध में
सुनीति और दुर्नीति Moral और Immoral का कोई
प्रश्न ही नहीं उठता। वह सूर्य की तरह न तो
Moral है और न Immoral. उसमें होगी प्रकाण्ड
शक्ति, प्रकाण्ड दीप्ति, और दुर्निवार गतिवेग।

छपते छपते

देवगोष्ठी

का

जन्मोत्सवांक

शीघ्रातिशीघ्र

ग्राहक

बनिये —

मूल्य — चूकिये मत

शाही तहकीकाती कमीशन

- श्री वेदप्रकाश दुग्गल.
प्रतिलिपिकार.

श्री राजगोपालाचार्य :—

हलो राजगोपालाचार्य!

आया साहब!

तुम मद्रास सूबे के वज़ीर आज़म रहे हो?

जी हाँ!

तुमने वहाँ हिन्दी भाषा की तालीम लाज़मी क्यों करा दी?

क्योंकि तमाम हिन्दुस्तान के लिए एक ज़बान बनाना मक़सूद है।

क्या अंग्रेज़ी English एक ज़बान नहीं हो सकती?

जी! मेरे ख्याल में ऐसा नहीं हो सकता।

तुमने उर्दू को क्यों लाज़मी करार क्यों नहीं दिया ?

साहब! बात यह है कि हमारे सूबे में उसकी हिन्दुस्तान की ज़बान को हिन्दी कहते हैं और यह नागरी के लिपि हो या फारसी में अतः यह सवाल पैदा ही नहीं होता।

फिर "अंजुमन तरक्की ए उर्दू" तथा मुस्लिम लीग को तुम्हारे फैसला पर क्यों एतराज़ है?

यह उनसे पूछिए।

अंग्रेज़ों को तुमसे यह शिकायत है कि तुमने कर्नल नील का Statue क्यों हटवा दिया?

मगर मैंने उसे तबाह नहीं कर दिया, वह अजायबघर में उपस्थित है और वही जगह उसके लिए उपयुक्त भी है।

अछूत जाति के नुमायंदे रावबहादुर M.C राजा को तुमसे बहुत शिकायतें हैं कि तुमने अछूतों के हक़ूक़ का पूरी तरह ख्याल नहीं रखा।

और सनातनियों को यह शिकायत है कि मेरी वज़ारत ने अछूतों को ज़रूरत से ज़्यादा हकूक दे दिये हैं।

खैर - आइन्दा वज़ारत के मुतअल्लिक लीगी वज़ीरों के अलावा मि. M.C. राजा भी लिये जायेंगे. अच्छा, आदाब!

आदाब! हज़ूर!

विश्वनाथदास :—

है कोई विश्वनाथ दास ?

जनाब बन्दा हाज़िर है।

तुम्हारी वज़ारत उड़ीसा में कोई मुसलमान भी है ?

जी नहीं।

क्यों नहीं ?

इसलिए क्यों कि ४ मुसलिम मेम्बरों में से २ तो अंग्रेज़ी जानते ही नहीं और दो राजा-पालकिमेडी की पार्टी के आदमी हैं।

यह कोई जवाब नहीं है आइन्दा वज़ारत में एक मुस्लिम लीगी वज़ीर लेना होगा।

श्री कृष्णसिंह सिन्हा:—

बोलो कि. श्री कृष्ण सिन्हा

हाजिर हुज़ूर!

तुम बिहार के प्रधानमंत्री थे?

जी हां!

अकबर हैदर नज़ीर को प्रधानमंत्री क्यों नहीं बनाया?

वे उम्र में बड़े थे।

तुमने नाहक तिरंगे झंडे की गुलामी क्यों की?

हुज़ूर यह तो कोई कसूर न था - मैंने तो गुलामी के ख़िलाफ़ तहरीक हर आलम में यही कहा कि हिन्दू मुसलमानों को मिल कर रहना चाहिये।

क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मुस्लिम लीग तुम्हारे झंडे से नाराज़ है?

जी हां मुझे मालूम है।

फिर ख़ता क्यों हुई?...

इसलिए कि मैं मुस्लिम लीग की नाराज़गी को बेवजह समझता हूं।

खबरदार - अब अगर वजारत मिले तो कोमी अखबार कहीं न लहराना और मुल्क की अदीबों को cabinet में ज़रूर लेना।

डा. खान साहिब —

कहाँ है डा. खान साहिब?

बन्दा दरगाह हाज़िर है

तुमने सदर अब्दुल कयूम से वज़ारत छीनी थी?

आप उसे छीनना कहें या कुछ कहें उनके बाद मेरी वज़ारत बन गई।

तुम्हारी वजह से उन्हें इस्तीफ़ा देना पड़ा।

जी हाँ। यह एक हद तक सही थी।

क्या तुम्हें यही मालूम नहीं कि उन के कुछ अर्से बाद वे मर गए?

जी हाँ! मुझे सब मालूम है।

क्या उनकी इस बेवक्त मौत के कारण में वज़ारत छिन जाने का सदमा शामिल नहीं था।

हुज़ूर मैं नहीं कह सकता।

जब तुम्हारी कांग्रेस पार्टी अलहिदा हो गई तो तुमने मुस्लिम लीग से मिल कर वज़ारत क्यों बनाई?

हुज़ूर हमारे और उनके ख़याल में ~~फ़र्क~~ तो ज़मीन-आसमां का फ़र्क़ है इसलिए democratic party से मिल कर वज़ारत बनाई।

तुमने किस वजह सरदार औरंगज़ेब ख़ान से बदज़बानी क्यों की?

उनका जवाब उनकी तरफ़ से होता रहा था।

दोबारा आइन्दा वज़ारत में सरदार औरंगज़ेब ख़ान को ज़रूर लेना।

(ख़ुद सोच कर) आइन्दा वज़ारत इत्तहा-दन बनानी पड़े।

—e—.

पंडित गोपीनाथ बारदोलोई:—

गोपीनाथ बारदोलोई हाज़िर है?

हाज़िर हूं हुज़ूर।

चूंकि आसाम में एक मुस्लिम लीगी वज़ीरआज़म ने वज़ारत बना ली है लिहाज़ा तुम्हें वज़ीर-ए-आला से बरतरफ़ किया जाता है।

—.

पण्डित गोविन्दवल्लभपन्त: —

कोई पं. गोविन्दवल्लभपन्त हाज़िर है ?

जी हुज़ूर -

यह बताओ कि तुमने डॉ. खलीकुज़्ज़मान को अपनी वज़ारत में क्यों नहीं लिया ?

हुज़ूर - कांग्रेस पार्टी का Cabinet बना था अतः उन्हें नहीं लिया गया अगर वे लीग कौंसिल पार्टी के खलीकुज़्ज़मान होते तो उन्हें ज़रूर ले लिया जाता।

तुमने नवाब इस्माईल खां को वज़ारत में क्यों नहीं लिया ?

हुज़ूर वे भी १९३७ वाले नवाब साहिब नहीं रहे।

तुम्हें पार्टी गवर्नमेंट रखने की क्या ज़रूरत थी। मुस्लिम लीगी मिनिस्टरों को मिला कर कोलिशन वज़ारत क्यों नहीं बना ली ?

हुज़ूर ए आला - इस बारे में कांग्रेस वर्किंग कमेटी तथा कांग्रेस पार्लियामेन्टरी कमेटी की हिदायतें थीं।

अच्छा उन्हें भी भुला कर प्रश्न अगला यह तो बताओ कि असेम्बली हाल पर तिरंगा झण्डा क्यों लहराया गया ?

जनाबे आला ! वह कौमी झण्डा थी.

नहीं वह कौमी झण्डा नहीं है। मि. जिन्ना तथा उनकी पार्टी इस के खिलाफ हो गिर — इस बार तुम्हें माफ किया जाता है लेकिन अब तुम्हें उसको कांग्रेसी झण्डा बताना पड़े तो ख्याल रखना !

—

पं. रविशंकर शुक्ल :—

कोर्ट मास्टर बताएँ पं. रविशंकर शुक्ल हाज़िर हैं ?

हाज़िर हैं हुजूर !

क्या तुम डा. एन. बी. खरे को हटाने में भी साथ रहे हो ?

जी सरकार !

जवाब दो कि तुमने विद्यामंदिर स्कीम्स चलाई ?

इसलिए कि तालीम ज़्यादा फैल सके तथा

तथा गरीबों के बच्चों को भी यूनीवर्सिटी में पढ़ाया जा सके।

विद्यार्थियों की भारी जमाअत।

"तालीम का घर" —

कहीं तुम गलत तो नहीं कह रहे। मंदिर तो हिन्दुओं की पूजा की जगह को कहते हैं।

जी हाँ — धार्मिक नाम तो यही है पर शाब्दिक अर्थ मकान के हैं।

क्या तुमको यह नहीं मालूम कि मुसलमान मंदिरों के खिलाफ़ हैं?

मुझे ऐसे मालूम था इसलिए तो इसका नाम बैतुलउलूम यानी केन्द्रीय विद्यालय किया गया था।

तुम्हारी जमात में कोई मुसलमान है?

जी नहीं।

क्यों नहीं?

पहले कि. शफ़ीक को शामिल किया गया था लेकिन उन्होंने एक ऐसे वाक़ये को ज़ाहिर कर दिया जिसे एक तालिबआलिम के साथ

आर्यसमाज को राजनीति में भाग लेना चाहिये

श्री. लेखराज जी १४

धर्म और राजनीति का परस्पर सम्बन्ध है।

साम्प्रतिक युग में यह एक विवादास्पद विषय बन गया है, कि क्या धर्म (Religion) और राजनीति (Politics) परस्पर मेल खाते हैं, या नहीं? और यह बात भी सत्य और स्पष्ट होती जा रही है कि वर्तमान युग में धर्म का महत्त्व दिन प्रति दिन कम होता जा रहा है। लोगों के मनों में अब धर्म के प्रति उतनी अटूट-श्रद्धा और आस्था बुद्धि नहीं रह गई है। प्रत्युत आधुनिक युग में तो साम्यवाद, समाजवाद. साम्राज्यवाद-राष्ट्रवाद-इत्यादि नाना विध वादों (Isms) की ही आंधी आ रही हुई है। जिसके प्रवाह में हर एक व्यक्ति - कोई चाहे कोई न चाहे - बहे चले जा रहा है। हमारी भारतीय नयी पौध तो अपने यौवन काल में इन मनोमोहनी पाश्चात्य सभ्यता के पीछे जी जान से लगी हुई है।

किन्तु इसी सत्य को - जो कि त्रिकालसत्य था - अब भी है, और भविष्य में भी अक्षुण्ण बना रहेगा कि - धर्म और राजनीति का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा करता है" श्री महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने, जो कि इस युग के महान् पुनर्निर्माता हुए हैं - स्पष्ट प्रचार किया था। यह प्रचार आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था। इसी की कृपा से आज देश के धर्म निर्माण काल में भी बहुत से आर्य लोग - हिन्दू लोग, और अन्य मतावलम्बी अनुयायी भी धर्म के महत्व को नहीं भूले हैं। साथ ही वे राजनीति की उचितता को भी भली प्रकार समझते हैं।

"धर्म" वही है, जो कि समाज की - मनुष्य की - राष्ट्र की - बल्कि सारे संसार की रक्षा कर सके - धारण कर सके। राजनीति भी किसी समाज में आगे तभी बढ़ सकेगी, जब तक कि उसका कोई आधार न होगा। और वह आधार एक मात्र है धर्म ही। जिस धर्म के नियमों और आदर्शों तथा सिद्धान्तों पर चलता हुआ कोई भी समाज राजनीति में पूर्ण साफल्य प्राप्त कर सकता है। आधार पक्का होने से मकान की मंज़िल पर मंज़िल जल्दी ही बन जाती है। मुश्किल तो नींव बनाने में होती है।

(२)

अभी कुछ ही दिन - लगभग ३ साल व्यतीत हुए हैं, कि आर्यसमाज जैसी विशुद्ध धार्मिक संस्था ने अपनी अद्भुत और भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य विजय हासिल की है। किन्तु विजय का तात्पर्य यह होना चाहिए कि वह भविष्य में भी आगे दिन ब दिन उस तरह की उन्नति करती चली जाए।

इस समय प्रत्येक आर्य अर्थात् आर्यसमाज के सदस्य के दिल में अपना धार्मिक उत्साह - और धार्मिक भाव अपने पूर्ण यौवन पर है। परन्तु आर्यसमाज के पास महर्षि के दिवङ्गत होने के पश्चात् से लेकर अब तक कोई भी उत्तम - धर्म नायक नहीं कि हो आज आवश्यकता इस बात की है, कि कोई नेता आगे [illegible] जाए। और इन धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत आर्य पुरुषों और आर्यजनता को किसी - धार्मिक - देशोपयोगी कार्य में तत्पर करे। अन्यथा यह उफान दूध के क्षणिक उफान की भांति कुछ काल बाद अतीत के गर्भ में विलीन हो जायगा। तब इसका सार जाता रहेगा।

इस कार्य को अमल में लाने का क्या उपाय हो सकता है —

बहुत से प्रमुख आर्य समाजी व्यक्तियों ने अपने विचार इस दिशा में दिए हैं। एक विचार - जिस से कि प्रत्येक आर्य विचारक - मेरा सहमत है - यह है कि एक <u>आर्य संघ की स्थापना की जानी चाहिए।</u>

आर्य संघ की आवश्यकता और उसके कार्य —

किन्तु इस आर्य संघ के सामने कौन २ से Programme होने चाहिएं। यह विषय अलग गंभीर तथा विचारणीय है। यह तो निर्विवाद है कि Congress - हिन्दू सभा - स्वराज पार्टी नेशनलिस्ट दल - फॉरवर्ड ब्लॉक की भांति एक 'आर्य संघ' अलग स्थापित किया जाना चाहिए। जो स्व. धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार राजनैतिक कार्यों में बड़े ज़ोर शोर से काम करे। ऐसे संघ के स्थापित करने से उसके उद्देश्य भी सामने रहेंगे। और यदि ईमानदारी और लगन के साथ काम किया जायगा, तो हो नहीं सकता कि 'आर्य समाज' भी राजनीतिकता में कभी पीछे रह जाए। उन्नति तो कार्यों की परख से होती। किसी समाज की सफलता की परख किया करती हो। हवाई बातों से नहीं करती।

भारतवर्ष में जितनी भी वर्तमान राजनैतिक संस्थाएं हैं, निस्संदेह उन में से प्रत्येक ने आर्यसमाज की प्रकाश ज्योति से ही जीवन लाभ किया है। किन्तु दुःख और आश्चर्य तो इस बात का है, कि ज्योति का दाता आर्यसमाज ही स्वयं ज्योति हीन हो रहा, प्रत्युत इन संस्थाओं को ज्योति देकर उनकी ज्योति की प्रतीक्षा कर रहा है। जो कभी गुरु था - वह आज औरों का चेला बन गया है। राजा रंक हो गया है!! क्या यह शोचनीय दशा कभी इसकी बदल सकेगी कभी होगी ?

इसको देखते ही देखते भारतवर्ष के कोने २ में "राष्ट्रीय महासभा" अर्थात Congress ने अपना पूर्ण सिक्का बिठा लिया है। तो क्या इस कांग्रेस की जन्मदात्री आर्यसमाज - जननी कभी यह पुकारे - उसके बोल नहीं रह सकता।

यदि आर्यसमाज पुनः अपना उन्नत मस्तक ऊंचा रखना चाहता है, तो उसके लिए आवश्यक हो जाता है, कि वह धर्म का अवलम्बन करके ~~आर्यसमाज~~ राजनीतिक क्षेत्र में कूद पड़े। यह कहना कि आर्यसमाज का क्षेत्र केवल धार्मिक ही है - महर्षि देव के भाव और आर्यसमाज के उद्देश्यों - आदर्शों और नियमों के साथ पूरा अन्याय होगा। महर्षि जी ही एक मात्र व्यक्ति थे जिन्होंने इस पराधीन भारत

को इनके पूर्व "स्वराज्य" और "रामराज्य" शब्दों का बोलना सिखाया था। स्वराज्य का चित्र हमारे गुलाम मनों में भी खींच दिया था।

आज आर्यसमाज के जो मुख्य कार्य थे, यथा—

1 दलितोद्धार	ये सभी आज देश की अन्यान्य दोहरे
2 स्वदेशी प्रचार	उपयोगी संस्थाओं ने अपने कंधों पर
3 शिक्षा प्रचार	उठा लिए हैं। यद्यपि यह बात बड़े
4 शुद्धि	हर्ष की है। परन्तु इतनी ही यह बात
5 मूर्तिपूजा खण्डन	आर्यसमाज के लिए लज्जास्पद भी
6 शिक्षा का स्वरूप	है, कि वह इन उपयोगी संस्थाओं में
7 प्राचीन शिक्षा	भी पिछड़ गया है। क्या आर्यसमाज

का काम इतना ही था कि वह देशवासियों में एक धार्मिक जागृति उत्पन्न करे। नहीं, किन्तु अभी तो 'स्वराज्य' का महान उद्देश्य आर्यसमाज के सामने है जिस स्वराज्य के लिए ऋषि ने इनके पूर्व आवाज़ उठायी थी। आर्य समाज का उद्देश्य तो इतना महान है कि—

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥ ऋग्वेद ॥

कि वह उद्देश्य तो कभी भी समाप्त नहीं हो सकता है, जब तक कि दुनियाँ में अपना भी मानव विद्यमान रहे।

यह बात भली प्रकार सोच रखी है, कि किसी भी
संस्था की सफलता उसके अपने गठन में उतनी नहीं होती,
जितनी कि लोकमत को संग्रह करने में होती है। कांग्रेस ने
जनमत-संग्रह करने के लिए क्या किया? उसके कार्यकर्ता
प्रत्येक गाँव गाँव में गए। फिर उन्होंने कांग्रेस के सिद्धा-
न्तों और कार्यों का सविस्तार वर्णन ग्रामीणों को सुस्पष्टतया
समझाया। फिर इसी बात का प्रतीक उन्होंने स्वयं भी
अपने जीवनों में इन आदर्शों को पालन करके दिखाया।
उसका प्रत्यक्ष फल आज हम देख रहे हैं कि आज कांग्रेस
का नाम ग्राम का बच्चा बच्चा जानता है। आज तक हुई
हुई समग्र राजनैतिक जागृति का एकमात्र कारण
Congress ही है।

ठीक इसी प्रकार यदि आर्यसमाज भी राजनीति में जनता
अपनाए, तो उसके लिए भी उपाय यही होगा, कि वह
गाँव २ में प्रचार करे। उसके कार्यकर्ता व उसके प्रचारक
प्रत्येक गाँव में जा कर आर्यसमाज के आदर्शों को लोगों

को समझाने। और अपने विचारों - धारणाओं और सि-
द्धान्तों की स्थापना व सर्वोपरिता को साबित करने का
पूर्ण प्रयत्न करें।

इसप्रकार धीरे २ अपना लोकमत बना प्रत्येक
जन. को [illegible] लेना चाहिए कि अब आर्यसमाजी
राजनीति में पैर [illegible] और उनका पाया भी मजबूत
होता चला जायगा।

× × × ×

महर्षि दयानन्द यह बात बखूबी जानते थे कि कोई
भी धर्म-संस्था और Society बिना राज्य शक्ति की सहा-
यता के नहीं चल पाती है) उसकी सफलता का मूल बड़ा
भाग [illegible] व्यक्तियों और समाज के [illegible] ही होता है)
इसी कारण महर्षि दयानन्द ने अपना जो खास प्रचार
[illegible] कर दिया। उनका कार्य क्षेत्र था - जोधपुर -
जयपुर - उदयपुर इत्यादि बड़ी २ भारतीय रियासतों
के महाराजा। उनको वशीभूत करके महर्षि ने स्व मनोरथ

सब काम भी में ही पूर्ण कर जाते।

दूसरा उदाहरण हमें इतिहासमें महात्मा बुद्ध का भी उपलब्ध होता है। राजा बिम्बिसार का आश्रय ग्रहण करने के बाद उनके सहारे अपने शिष्यों का शिक्षा-आदि कर महात्मा बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार भी आरंभ कर दिया था। और उसीका परिणाम है कि आज भी वर्तमान युग में सम्पूर्ण संसार में यदि किसी भी मतके माननेवाले अधिक हैं- तो वह धर्म एकमात्र बौद्ध धर्म ही है।

ऐसेही अन्यान्य अनेको उदाहरण हमें इतिहासमें प्राप्त हो सकेंगे। किन्तु हमारा तात्पर्य तो इतना ही है। किसी भी अंग्रेजकी भांति कर 2 Capitalist - राजा-महा-राजाओं और जागीर दारों को अपना Mean (साधन) बना लेना चाहिए। इससे प्रायः लोगोंमें अपना भी मनोरथ पूर्ण होता है यह बात कोई झूठ भी नहीं है। यह तो संसार में रहने के लिए महत्त्व

मौन

— श्री पं. अनन्तानन्द जी
आयुर्वेदालंकार.

इस मौन में क्या क्या छिपा है क्या भला तुमको बताऊँ?
भय, तिरस्कार, स्वीकार करना, लाज— मैं क्या क्या गिनाऊँ?

यह दीप कैसा मौन है,
दिल में छिपा यह कौन है,
जलना, तड़पना, और मरना ही यहाँ बतलाते पाऊँ?

यह कौन है इठलाता पड़ा,

पाषाण दिल कितना कड़ा,

बस चोट सब चुपचाप सहना, ओह, क्या महिमा जताऊँ?

धार पर बहती जा रही,

कुछ गुनगुनाती गा रही,

बढ़ते चलो, चलते चलो - सन्देश या जीवन जुड़ाऊँ?

यह आज खण्डहर कौन है,

वह पूछता तू कौन है,

रहते न दिन सब एक से, यह पाठ क्या तुम को पढ़ाऊँ?

कुछ टिमटिमाते आँख के,

तारे टके तक ताक के -

टक टेरते रहे तुम भी टेरो, फिर क्यों अरे रोऊँ रुलाऊँ?

कुछ अकुलाती सी हुई,
आँखें ज़रा नीची हुई।
कहने लगी बस दो विदा, प्रिय को भला कैसे मनाऊँ?

वह खिलखिला कहने लगी,
कुछ झूमती कहती चली,
आनन्द ही आनन्द बस, क्या और मैं तुम को सिखाऊँ?

नैने कटार जो तीर से,
बोलीं ज़रा कुछ पीर से,
दिल बीच डाले हाय! कितने, आज मैं उनको लगाऊँ?

रात सिसकियां लेता हुआ,
करवट उधर करता हुआ,
क्या है न इतने भाग - प्रिय के पैर भी जो छू पाऊँ!

बहते थे अश्रु जाते,

दिल धाक करते जाते,

लो हम चले हिम्मत लेकर, हाय मैं कैसे भुलाऊँ?

कितना रहस्य भरा पड़ा,

कुछ स्पष्ट कुछ धुंधला पड़ा,

है जान सकता कौन कितना, क्या भला मैं थाह पाऊँ?

क्या भला मैं तुमको बताऊँ?

× ×

- श्री नवीन जी उपन्यासकार.

वह निरा संगीतज्ञ था किन्तु उसने किसी गन्धर्व महाविद्यालय में शिक्षा न पाई थी। बचपन में ही पिता से अनेक ईश्वरभक्ति के, काली और चंडीदेवी के गीत कण्ठस्थ कर लिये थे। गले के सुरीले और मधुर होने के कारण तथा निरन्तर गाते रहने से उसका गला सुरीला होता चला जाता था साथ ही आयु का विकास ? उसके रक्षक का कार्य कर रहा था। सूर्य नारायण इंजिनीयर थे उनके केवल एक ही सन्तान थी। इच्छा थी कि उसे साथ लेकर ही

हो उठी। उसके रवि के कालीपूजा की छुट्टियों में घर-बुलाने की इच्छा जाग उठी। रवि बड़ा कोमल चतुर एवं बुद्धिमान लड़का था। इसने थोड़े समय में ही वह एम. ए. की परीक्षा दे चुका था - बड़े अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुआ था। संगीत और चित्रकला में भी कई बार इनाम पा चुका था। सोचता था इन इनामों को पा लेने से क्या - मैं अपनी स्नेहमयी साक्षात् करुणा की मूर्ति से इनाम पाऊँ - उसे आनन्दित कर सकूँ तभी मेरी ये सारी कलाएँ सफल हैं - काम की हैं। सोचता आया - सोचा कि इन शेष अवकाशों को भी दिवालीतक करूं तो अच्छा है क्यों कि दिवाली में अवकाश १५, २० रोज शेष हैं। रोज प्रातः सायं अपना निज निवास से दूर जंगल में जा बैठना और नानाविध चित्र बनाना। कभी २ घर जाने की सोचता तो उसका मन न जाने कितनी उमंगों, कितने उत्साहों और कितने आनन्दों से भर जाता था। वह अकेलापन के

घर के कमरों में एक दीप जलता था। हां कभी २
अपने पिता के साथ सैर चली जाया करती थी।
अब वह बचपन के सैरसपाटे से दूर थी। संसार
के चाल चलनों से अनभिज्ञ थी। अनुभवी कोई भी
और आँख तक न उठाई थी। कि मजाल कर उसके
सिवाय ये कोई अधिक हो सकती थी। आज पहला
दिन था जबकि वह किसी से बातचीत कर रही थी
उसे न मालूम था कि इस रेख का क्या है?
सब तरफ यही सोचा रहा कि मैं उसे अपने
प्रेम का परिचय कैसे दूं? अतःकाल के समय था
रवि आया और उसने भगवद्दास के गीत गाने
आरम्भ किये। गीत अभी समाप्त हुआ ही चाहता
था कि चन्द्रमा की अनन्त प्रभा से नहीं-नहीं
उत्तीर्णन्द आ पहुँची। दूर से ही संगीत बड़ा मनोहर
तथा कर्णप्रिय प्रतीत होता था। उसने एक बार-
फिर गान सुनाने का आग्रह किया। रवि का और
चाहिये क्या था - वह तो उसका आग्रह चाहता था - ए

अपनी चीज़ है और तुम्हारे पास है। ज़रा दिल खोलो
मिल जायगी। इतना कह कर रानी ने उसे चित्र-
निकेतन में। बैठकर चित्र उतारना शुरू किया।
साथ ही मन में सोचती जाती थी आखिर इसे
प्रेम का मर्म भी समझाना है। पर पास ही है
कहीं कोई बुलाने न आजाए। अभी आज कल
का ही चित्र बना था कि उसकी अकांक्षा ने
प्रेरित किया। कभी अवसर तब सूझा। रानी ने कहा
हो तो तुमने बताया नहीं तुम्हारा क्या विचार है.
अब तो समझ गई होगी। अच्छा तो फिर मैं ही
तुम्हें समझाऊँ। देखो - जरा देखो - तुम्हें चित्र
पसन्द आया था नहीं। वह आगे बढ़ी और उस
की गोद में पड़े हुए चित्र को, देख २ कर कहती
थी तुमने बहुत अच्छे. चित्रकार हो। इसप्रकार
बार २ देखती और कहती। रानी ने अवसर देख
कर उससे कहा - यह तो एक चीज़ है. किन्तु एक
बात मेरी. भी तो सुनो। मैं तुम्हें देने में कहूँगा

कैसरी भोली भाली चन्दर ने सिर आगे को बढ़ा
दिया। उसने एक बार कुछ गाल को कांपते हुए
मन से चकोरं ओर देखा और झट से उसके
हलके गुलाबी अधरों पर एक ज़ोर से चुम्बन
लिया और हट कर बोली अब समझ गई। मैं
क्या चाहता था। चन्दर कुछ सकुचाई और सोचने
लगी दूर जाने के उपाय किन्तु ---। उसके
सम्पूर्ण शरीर में एक विद्युत की लहर सी संचारित
हो गई। एक ही चुम्बन ने मानो उसे सम्पूर्ण
जीवन के प्रेम से परिचित कर दिया। उसका
दिल भी अधिकृत हो गया था। वह भी अब थोड़ी
बहुत ज़िम्मेदारी समझने लगी थी। सहसा उसे
किसी ने आवाज़ दी - वह उधर चल दी। रवि ने
कहा- कल मिलोगी न। क्यों नहीं इधर आकर
इस बगीचे कल अच्छी तरह से मिलेंगे। चन्दा मुँह
न कह कर सिर हिला कर चल दी। वह जब तक
आँख से ओझल न हो गई रवि अपने नेत्रों से देखता

इधर चन्दा का दिल कार्य में न लगता था। वह
अपने (चुपके) दिल से ऐसे मशीन की भाँति कार्य किये
जाती थी। उसका दिल तो कल की संध्या की
प्रतीक्षा में व्याकुल था - विह्वल था और बेचैन था
किन्तु साथ में शर्म - लज्जा और संकोच। आज
का सारा दिन - मनोभावों के व्यापार करने में ही
बीत गया। सन्ध्याकाल हुई - किशन जी को पहुँचा
उनके लाने प्रयत्न करते जाने के लिए किन्-
तु उनके मन बहलाने - सब प्रयत्न निष्फल थे।
वह न जा सका - उधर चन्दा भी पेड़ों की आड़
से उस स्थान की ओर - निर्निमेष नेत्रों से
बार बार दृष्टि से ताकती रही। सन्ध्याकाल बीत-
गया। दो - तीन और अन्धकार - का साम्राज्य होने
लगा किन्तु वे न आये वह निराश होकर मधुर मिलन
ने उपेक्षा किया। वह उसका सुन्दरतम - अपूर्व
अनुभव किन्तु न देख सका। चन्दा का
दिल दुःखी था। साथ ही उसे अपने ऊपर गरूर

न प्रतीत होता था जितना कि उसे होना चाहिये था,
स्त्री — स्त्री: कि वह —— ।

(अपूर्ण)।

जग जीवन सरिता का सेतु !
इस कृषिकर की परोपकारिता सूर्य अस्त का हेतु !

कताई-बुनाई

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व

हिन्दुस्तान की कताई बुनाई —:

ब्र. वीरेन्द्र कुमार जी १४

आज से २०० साल पूर्व भारत के गांवों के किसान सुखी थे। इस का कारण यही था कि वे अपने धन्धों में बराबर लगे रहते थे। मेहनती और संतोषी थे, कला और हाथ की कारीगरी में निपुण थे। वही गांव वाले जो कपड़े का अच्छा व्यापार करने वाले थे आज सिर्फ कच्चा माल उपजाते हैं और विदेशों में भेज देते हैं।

कताई का इतिहास उतना ही पुराना है जितने हमारे वेद। जिस समय हमारे ऋषियों ने ब्रह्मसूत्र बनाये उसी के साथ ही कापसि-सूत्रों के बुनने वालों की भी उत्पत्ति हुई। वेदों

में कई जगह ताना तनने, भरनी भरने और ताने में एक एक सूत को छोड़ कर उठाने का जो एक विशेष तरीका बताया गया है वह आज तक वैसा का वैसा ही चला आया है। ऋग्वेद में कई जगह रूप में कपड़ा कताई बुनाई की चर्चा है। "इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्रवय अपवयेत्यासते तते" ॥१०॥१३०॥१॥ में कहा गया है कि पितर लोग बुनते हैं और उस में फैले हुए विस्तार में आगे बुनना और पीछे बुनने को करते हैं। "वितन्वाथे धियो वस्त्रापसेव" ॥१०।१०६।१॥ में कहा है- जिस प्रकार ओशियार लोग वस्त्रों का विस्तार करते हैं उसी तरह...। "मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः" ॥१०।३३।३॥ - चिन्तायें मुझे उसी तरह खा रही हैं जैसे चूहे बुनकरों के तागे को। "त्वां प्रजां पितर पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम्" ॥१०।५६।६॥-: बराबर एक तार कतते रहने वाले सूत की तरह (तन्तुमाततम्) पितरों ने धरती पर अपनी सन्तति को छोड़ कर अपनी सत्ता बना रखी थी

एक जगह इसी तरह लेहरे बटे हुवे ओरे की चर्चा है - तर्कुं तन्वाना : [illegible] ॥ ८।२६।३३।

अथर्ववेद के चतुर्दश काण्ड में सूर्या सूक्त के द्वितीय अनुवाक में ५१ वें मन्त्र "वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्न : स्योनमुपस्पृशात्" में साफ कहा है कि पत्नियां पतियों के लिये वस्त्रों की कताई बुनाई करती थी।

अथर्ववेद में विवाह के प्रसंग में आये हुवे

इस मंत्र में कहा गया है कि विवाह के प्रथम दिन वर अपनी वधू के हाथ का कता बुना कपड़ा पहनता है। आज कल भी उड़ीसा के संबलपुर जिले में तथा आसाम के कई प्रदेशों में यही प्रथा है और इन स्थानों में नवविवाहिता स्त्रियों को प्रथम [illegible] कातने के सिवाय और कोई काम नहीं होता। स्वतंत्रता

चार की पहिली आवश्यकता थी जिसमें प्रायः हर एक को इस कला का अभ्यास करना पड़ता था। आज की तरह तब भी ब्राह्मण अपना यज्ञोपवीत खुद कातकर बनाता था।

वाल्मीकि ने रामायण के बालकाण्ड
कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमान् कोट्यम्बराणि च
हस्त्यश्वं रथपादातं दिव्यरूपं स्वलंकृतम् ॥६८॥
में इत्यादि श्लोकों में लिखा है कि सीता जी को दहेज में जहां हीरे जवाहर, राजकीय रत्न और आभूषण और भांति भांति के रत्न जड़े रथ मिले थे वहां ऊनी कपड़े और महीन रेशमी कपड़े भी मिले थे।

महाभारत के सभापर्व के ५१ वें अध्याय में राजसूय यज्ञ में भारत के विविध राजाओं की लायी भेंट का वर्णन करते हुवे "और्णान् बैलान् वार्षदंशान् जातरूपपरिष्कृतान्
प्रावाराजिनमुख्यांश्च काम्बोजः प्रददौ बहून् ॥५१॥३॥

और्णिकं राङ्कवञ्चैव कीटजं पट्टजं तथा
कुटीकृतं तथैवात्र कमलाभं सहस्रशः ॥५१(२)॥
श्लक्ष्णं वस्त्रमकार्पासमाविकं मृदु चाजिनम्
निशितांश्चैव दीर्घासीनृष्टिशक्तिपरश्वधान् ॥५१॥

इन श्लोकों में कहा है कि सुनहरे काम के शाल दुशाले, ऊनी कपड़े, कीड़ो के रत (रेशम) और पट्ट के कपड़े तथा अन्य मुलायम कपड़े भी भेंट में दिये गये थे।

महाभारत काल के बाद भी कातना बुनना सारे भारत में फैला हुआ था। वात्स्यायन ने अपने "कामसूत्र" में भार्याधिकरण में घर वाली का प्रधान काम कातना और बुनना लिखा है —: "कार्पासस्य सूत्रकर्तनं सूत्रस्य वानमाच्छादनार्थम्"।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में सूत्राध्यक्ष नाम के एक अधिकारी के कर्तव्य बताये गये हैं कि जो कि राजा की गृहस्थी के

के लिये मजूरी देकर बारीक सूत कतवाता था। शुक्रनीति जो कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी पुराना ग्रन्थ है, में वस्त्राध्यक्ष नाम के अधिकारी का कर्तव्य यह बताया है कि ऊन, रेशम आदि सभी तरह के कपड़े जहां से आते हैं वहां जाकर उन के सम्बन्ध की पूरी जानकारी लेता रहे, उन के मोटे और महीन की बनावट को खूब समझे और यह मालूम करे कि कौनसा माल कितना टिकाऊ या कमजोर है।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के दूसरे अधिकरण के ११ वें अध्याय में कहा है—

"वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं, पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धम्" इस से पता लगता है कि बंगदेश (बंगाल) का श्वेत और मृदुल कपड़ा और पाण्ड्य देश (त्रावणकोर रियासत की पूर्वभाग जिसमें मदुरा और तिन्नेवेली जिले शामिल हैं) का काला और मणि के ऊपरी तल के समान चिकना

कपड़ा मशहूर था। फिर उस ने कहा है —:

"माथुरकापरन्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिसकं च कापासिकं श्रेष्ठमिति", मथुरा, अपरान्त (बम्बई और पूना प्रदेश) कलिंग (उड़ीसा की दक्षि काशी, बंग, वत्स (कौशाम्बी अर्थात् प्रयाग और चित्रकूट के बीच का प्रान्त) और माहिष या माहिष्मती (आधुनिक भड़ौंच के पश्चिम व सतपुड़ा पहाड़ियों के आसपास था) के सब स्थान कपास के कपड़ों के लिये मशहूर थे।

चरखा दीनदुखियों का सहारा था। जातक की एक कहानी में अपने मरते हुये पति को एक स्त्री तसल्ली देती हुई कहती है "मैं चरखा कात लेती हूं, किसी तरह बच्चों को पाल पोस कर बड़ा कर लूंगी, आप चिन्ता न कीजिये"। अर्थशास्त्र में लिखा है कि सूत्राध्यक्ष का काम था कि एकदम दुर्बल दरिद्र और अपंग लूंजों और घर से बाहर न निकलने वाली नारियों को

पालने के लिये और काम खोजने वाली दरिद्र कन्याओं को और इस तरह के मुंहताजों को कताई का काम है। मनु भी कहता है कि जो दरिद्र स्त्रियां बाहर निकल कर मजदूरी नहीं कर सकती थीं और विशेषतः विधवाओं के लिये चरखा ही एक मात्र ऐसा धन्धा था जिससे वे धर्म और ईमान की कमाई कर सकती थीं। मनु ने एक जगह यह भी कहा है कि —:

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः॥ ९।७५

अर्थात् पति अगर स्त्री की आजीविका का प्रबन्ध किये बिना बाहर चला गया हो तो स्त्री शिल्पों के द्वारा अपनी जीवन यात्रा चलाये।

भारतीय कपड़ों की अच्छाई के बारे में विदेशियों की गवाहियां—:

विकणी (१२८-१७२) में आने वाले आयपति नाम के यात्री ने लिखा था कि सभी देशों से अधिक उज्वल सूती कपड़े अरब के लोग भड़ौच से लाल समुद्र में ले जाते थे। उस ने यह भी लिखा है कि रोमन लोग भारतीय कपड़ों को बहुत पसन्द करते थे और सुनहले कामदार बढ़िया जरी के कपड़ों की कल्पनातीत दाम देते थे। वहां रेशम मलमल और खद्दर इतने दामों पर बिकते थे कि सुन कर अकल दंग रह जाती है। आरीलियन के राज्य में रेशम की कीमत उसी भर सोना थी। तिबेरियस सीजर को अन्त में कानून बनाना पड़ा कि कोई महीन पारदर्शी रेशम न पहिने क्योंकि उस का पहिनना असभ्य और लज्जाप्रद है।

मारकोपोलो विक्रम की चौदहवीं शती में आया था। वह आन्ध्र देश में रहने वाले महीन से महीन तंजेब और दूसरे कीमती कपड़ों की चर्चा करते हुवे लिखता है कि "वास्तव में वह तो मकड़ी के जाले के तारों की तरह दीखते हैं। संसार में शायद ही कोई राजा-रानी हो जो इसे पहिनने को लालायित न हो।"

वेनिस का एक सौदागर सीज़र फ्रेडरिक १५२५ में भारत आया था। वह सेनटोम और पेगू के बीच हर तरह के सूती कपड़े के बहुत विशाल व्यापार का वर्णन करता है। यह कपड़े रंगे और छपे थे " यह बहुत अनोखी बात है क्योंकि यह कपड़े रंग बिरंग के चित्रित और सुनहले हैं और इन के रंग जितना ही धोयिए उतना ही चटकीले निकलते आते हैं।

सत्रहवीं शती में ही टेवर्नियर भी भारत में आया था। मालवे और बंगाल के नयनसुख की बड़ाई करते हुवे टेवर्नियर कहता है कि यह इतने महीन होते हैं कि हाथ में मालूम नहीं होते और जिस घड़ी सूत कतता रहता है मुश्किल से दिखाई पड़ता है।

बंगाल की मलमल की चर्चा में प्लाइनी ने लिखा है कि 'इस के भीतर से शरीर चमकता था'।

नवीं शती के लगभग सुलेमान नाम का एक अरब यात्री भारत आया था। उस ने लिखा है — 'इस देश में एक तरह का कपड़ा बनता है जो और कहीं पाया नहीं जाता। यह इतना महीन और ऐसा कोमल होता है कि इस की बनी चीज़ को अंगूठी के बीच से निकाल सकते हैं। यह सूत का बना हुवा है और मैंने इस का एक थान देखा है'।

टेवर्नियर ने लिखा है कि

"ईरान के राजदूत ने अपने बादशाह को शुतरमुर्ग के अण्डे के बराबर एक नारियल का डब्बा भेंट किया जिस पर मोती जड़े थे जब वह डब्बा खोला गया तो उस में से ६० हाथ लम्बी मलमल की पगड़ी निकली।"

सं० १८७३ में डा० उर लिखते हैं

कि "ढाके ~~की मलमल~~ में अभी बराबर बारीक सूत कतता जाता है और ऐसी मलमल बराबर तैय्यार होती है जिस के जोड़ की चीज़ युरोप के हाथ और दिमाग से नहीं निकल सकती। उस को देखकर एक बड़े कुशल पारखी ने कहा है कि "मुझे तो यह समझ में ही नहीं आता कि इंगलिस्तान में जो बारीक से बारीक सूत कतता है उस से भी कहीं अधिक बारीक यहां भारतवर्ष में तकली से कैसे निकाल लेते हैं और फिर

कपड़े से कैसे बुनते थे ?" इस कारीगरी पर
यूरोप वाले ललचाते थे । अ

डा० टेलर ने सं० १८५७ में इस
कारीगरी का पूरा ऐतिहासिक वर्णन किया
है। वे लिखते हैं - ढाके की बहुत महीन मल-
मल सदा से फ़रमाइश पर तैयार होती आयी
है और यह फरमाइश भारत के भारी
रईसों, अमीरों और ओहदेदारों की तरफ से
होती रही है। मुगल बादशाहों के ज़माने
में इन चीज़ो की जितनी भारी मांग थी उस
से तो आजकल अत्यन्त कम हो गई है
परन्तु तो भी आज इतनी काफी मांग है
कि यह कला भूलने से बची हुई है।

डा० टेलर फिर लिखते हैं कि
१८०३ में मेरे सामने एक भारतीय बुनकार एक
लच्छा लाया था। वह बड़ी सावधानी से पीढ़े

तौल लिया गया। हिसाब लगाया गया तो आध सेर में १५० मील लम्बाई को पहुंचा" इस का मतलब यह है कि ५०० नम्बर के नाप का सूत था।

भारतीय कपड़ा बहुत महीन और पारदर्शी होता था इस बारे में डा० फार्बस वाटसन ने लिखा है कि इसी आधार पर कई कपड़ों के काल्पनिक नाम रखे गये थे। जैसे शबनम (ओस), बाद बाफ्ता (बुनी वायु), आबे रवां (जल स्रोत)। शबनम इस लिये नाम पड़ा कि अगर इसे ओस भीगी घास पर डाल दिया जाता तो वह जाले जैसी बुनावट पड़ती हुई ओस ही थी तो यह शबनम तीसरे दर्जे की चीज समझी जाती थी। लेकिन चीज तो मलमल-खास थी जो पहिले दर्जे की थी। दूसरे दर्जे की चीज थी आबेरवां। इन के बारे में कई मनोहर कहानियां मशहूर भी हैं। कहते हैं कि

एक बार नवाब अलीवर्दीखां के यहां एक हिन्दू बुनकार ने बारीक मलमल का एक थान घास पर रख दिया था। यह नवाब के लिये लाया था। नवाब की गाय घास समझ कर उसे खा गई। इस अपराध पर नाराज होकर नवाब ने बुनकार को दण्ड दिया और शहर से बाहर निकलवा दिया। यह भी मशहूर है कि एक बार दरबार में बादशाहजादी आई तो औरंगजेब उसे नंगी देख चौंक पड़ा और शाहजादी को कहा। इस पर शाहजादी बोली कि मैं नंगी नहीं हूं, मैं तो सात परत मलमल पहने हुवे हूं।

इस के बाद भारत की यह कला कैसे नष्ट हुई इस बात को छोड़ता हुवा इस लेख को यहीं समाप्त करता हूं। अगर फिर कभी मौका मिला तो अगले विषय को भी पाठकों के सामने रखा जायगा।

- श्री पं. हरिदत्त जी वेदालंकार -

किसी भी विश्वविद्यालय के सामाजिक जीवन में सभाओं का स्थान न केवल ऊँचा है, परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण भी है। सम्भवतः, इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि उनका महत्व पढ़ाई से भी अधिक है। विद्यार्थियों के भावी-जीवन की तैयारी इन्हीं सभाओं में होती है। इंगलैण्ड के प्रमुख राजनीतिज्ञ पार्लियामैण्ट में होने वाली बहसों का पहला पाठ अपने विश्वविद्यालयों की सभाओं में पढ़ते हैं। प्रसिद्ध लेखक सभाओं की पत्रिकाओं से लेख लिखना आरम्भ करते हैं। मैकाले के बारे में कहा जाता है कि 'कैम्ब्रिज डिबेटिंग सोसाइटी' में उसने जिस भाषण-शैली का अभ्यास किया वही उसके लेखों का सौन्दर्य हुई। इसीप्रकार स्टीवन्सन आदि लेखकों का उदाहरण दिया जा सकता है। इन सभाओं की ओर से प्रकाशन होने वाले पत्रों के सम्पादक ही देश के प्रमुख पत्रों के सम्पादन का कार्य करते हैं। पाठ्यक्रम, पुस्तकों तथा पढ़ाई के अन्गों से भी अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण इन सभाओं में विद्यार्थी आत्माभिव्यक्ति के

विविध-प्रकारों तथा अनेक जीवनोपयोगी गुणों को सीखते हैं। यदि शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास है तो इन्हीं सभाओं द्वारा प्राप्त शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है। पढ़ाई के अन्त तो विद्याग्रहण के हैं। विद्यार्थी गुरुओं से आप्तज्ञान-भाण्डार की कतिपय रहस्यमयी गूढ़ग्रन्थियों का अवगम कर तथा अनेक पुस्तकों के अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण तत्वों को समझ कर अपने मानसिक कोश में उन्हें संचित करता जाता है। मधुमक्षिका की तरह वह निरन्तर ज्ञान का संचय करता रहता है। परन्तु केवल संचय निष्प्रयोजन है। ज्ञान की सच्ची उपयोगिता आदान में नहीं पर प्रदान में है। ज्ञान भूमि में गड़ी हुई सामग्री नहीं किन्तु सत्कर्म में विनियुक्त पूँजी है। विद्या की सफलता इसीमें है कि वह दूसरों को दी जाय। जिस ज्ञानाञ्जन से हमारी दृष्टि निर्मल हुई है उससे दूसरों का भी अन्धकार दूर किया जाय। अपने चारों ओर का वातावरण और समाज ज्ञान द्वारा उन्नत किया जाय। यदि हम अपने ज्ञान को निगीर्ण कर दूसरों को उसका लाभ नहीं पहुँचा सकते तो हमारी ज्ञान-प्राप्ति निरर्थक है। ग्रहण-प्रतिदान, लेन-देन, आदान-प्रदान का सम्बन्ध सनातन काल से चला आया है। हजारों वर्ष पहले की भगवती श्रुति सम्प्रदायों की परम्परा आदान-प्रदान से ही आज तक जीवित है। महाकवि कालिदास कह गये हैं- आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव-। फिर स्मृतिकारों ने विद्या के दान को तो सर्वश्रेष्ठ दान कहा है (सर्वेषामेव दानेषु विद्यादानं विशिष्यते) - परन्तु इस प्रकार का

उत्तम ढंग क्या है ? वह कौन सी कला है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाकर उन्हें उस ज्ञान का लाभ पहुँचा सकता है ? वह किस प्रकार 'स्व' की अभिव्यक्ति कर सकता है ? इसका उत्तर शायद एक ही है और वह है – भाषण और लेखन की कला। इन दोनों कलाओं के अभ्यास से विद्यार्थी अपने ज्ञान के प्रतिदान के उत्तम उपायों को सीखता है। पढ़ाई के अन्तरों में वह जो ज्ञान ग्रहण करता है; सभाओं के समय में उसे वह अच्छे ढंग से दूसरों को देना सीखता है। वह अपने विचारों को व्यक्त करने के प्रभावशाली माध्यम पा लेता है। प्रजातन्त्र के युग में भाषण कला की महत्ता स्वतः स्पष्ट है। लेखन कला के विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि इंगलैण्ड में 'टाइम्स' के सम्पादक का वही महत्व है जो वहां के प्रधानमन्त्री का है। अतः ज्ञान-प्रदान एवं भावी-जीवन की दृष्टि से इन सभाओं की महत्ता का स्वयमेव आसानी से अनुमान किया जा सकता है।

सभाओं के द्वारा होने वाले ज्ञान-प्रदान के इस मुख्य कार्य के अतिरिक्त अनेक जीवनोपयोगी गुणों की शिक्षा भी इन्हीं सभाओं द्वारा दी जाती है। इन द्वारा नागरिकता के अनेक आवश्यक तत्वों का परिज्ञान होता है। सभा के वाद-विवादों में मर्यादा, औचित्य, शिष्टता, अनुशासन, विरोधी के प्रति सहिष्णुता और उदारता, विचारों की स्वतन्त्रता, प्रत्येक चीज़ को पक्षपात रहित हो अनेक पहलुओं से देखना,

अन्धविश्वास शून्यता, विचार पूर्वक सम्मति बनाना, आदि अनेक उपयोगी गुण सीखे जाते हैं। सभाओं का संचालन करते हुए विद्यार्थी व्यवस्था-सम्बन्धी अनेक गुणों का अभ्यास करते हैं। उनमें प्रबन्ध शक्ति की अनेक योग्यताओं का विकास होता है। अद्भुत संगठनशक्ति, अदम्य उत्साह तथा निःस्वार्थ सार्वजनिक सेवा के भाव उद्भूत होते हैं। सभाओं के संचालन से उत्पन्न उत्तरदायित्व की वृद्धि महाविद्यालय की आयु में पाई जाने वाली स्वाभाविक उच्छृंखलता पर अंकुश का कार्य करती है। इन सभाओं में प्रमुख रूप से भाग लेने वाले विद्यार्थी जो आज छात्रावृन्द का नेतृत्व करते हैं कल वही समाज के के अगुआ बन सकते हैं।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त सभायें विश्वविद्यालय में एक पढ़ाई का वातावरण बनाये रखती हैं। इनसे विद्यार्थियों के सामान्य ज्ञान का धरातल बहुत ऊँचा बना रहता है। उनकी शिक्षा एकांगी और अधूरी नहीं रहती, वरं च वह सर्वाङ्गीण और सम्पूर्ण हो जाती है। सभाओं के बिना विद्यार्थियों का ज्ञान इतना अपूर्ण और हास्यास्पद हो जाता है कि उनको बुद्धू या भोंदू कहना - उनका अपमान करना नहीं, परन्तु वास्तविक स्थिति का कथन होता है। ~~सभाओं~~ सभाओं का प्रयोग न उठाने वाले विद्यार्थियों से इस प्रकार के उदाहरण असम्भव नहीं हैं कि "लार्ड लिनलिथगो फ्रांस का बादशाह है", "हिटलर इटली का अधीश्वर है", "हिन्दुमहासभा और मुस्लिम लीग राष्ट्रिय-महासभा (कांग्रेस)

के दो भाग हैं", 'जापान भारतवर्ष के उत्तर में ईरान के साथ लगा हुआ एक प्रदेश है", "जर्मनी योरुप के एक बड़े शहर का नाम है", सापेक्षवाद (थ्यूरी आफ रिलेटिविटी) रसायनशास्त्र की महत्वपूर्ण गवेषणा है"। परन्तु सभाओं में भाग लेने वाले विद्यार्थी से इन बेहूदे उत्तरों की शायद कल्पना भी नहीं हो सकती। कारण स्पष्ट है कि सभाओं में राजनैतिक और सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक, नैतिक और दार्शनिक, ऐतिहासिक और साहित्यक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक सभी तरह के विषयों पर बहसें होती हैं, व्याख्यान दिये जाते हैं तथा निबन्ध पढ़े जाते हैं। आज यदि "योरुप की राजनैतिक स्थिति" पर व्याख्यान है तो कल "समाज-सुधार आवश्यक है या राजनैतिक स्वतन्त्रता" इस विषय पर वादविवाद है। उससे अगले दिन "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विनिमय" इस विषय पर एक निबन्ध पढ़ा जाता है। इन समाजों में विद्वानों का समागम होता रहता है। आज यदि विद्यार्थी एक पुरातत्वविद् से 'सुमेरिया, सिन्ध और मोहेन्जोदरो की सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययन' पर कोई व्याख्यान श्रवण करते हैं तो कल वैज्ञानिक विद्यार्थियों को "भौतिक-शास्त्र की नई खोजें", "अल्ट्रावायलेट और कॉस्मिक रेज़" के रहस्यों से अभिज्ञ कराता है। अगले दिन एक दार्शनिक शंकर और हेगेल के चिद्वाद (आइडियलिज़्म) का भेद स्पष्ट करता है। यह वातावरण विद्यार्थियों के मानसिक क्षितिज को विस्तृत करता रहता है। पदार्थ के सभी अपना विशेष विषय —

अध्ययन करते हुए वे अन्य विषयों का भी पर्याप्त ज्ञान सम्पादन करते रहते हैं। इस प्रकार शिक्षा का यह महान् आदर्श पूरा होता रहता है - 'एक विषय का सम्पूर्ण ज्ञान तथा अन्य विषयों का सामान्य ज्ञान' (ऐव्री थिंग आव् सम थिंग एण्ड सम थिंग आव् एव्री थिंग)।

अतः सभाओं को विश्वविद्यालयों रूपी चक्र में होने वाले सब कार्यों का केन्द्र - उनके सामाजिक जीवन को धुरा कहा जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। इन सभाओं का महत्व केवल विश्वविद्यालय की दृष्टि से ही नहीं अपितु सार्वजनिक जीवन की दृष्टि से भी बहुत है। यही सभायें देश को उच्च कोटि के वक्ता, लेखक, सम्पादक, कवि, गाल्पिक और सार्वजनिक जीवन के नेता प्रदान करती हैं। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज की वादविवाद सभाओं का इस प्रकार का कार्य (रिकॉर्ड) ऐसा है जिस पर वह गर्व कर सकती हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के विश्वविद्यालयों तथा वादविवाद सभाओं का सर्वथा अभाव नहीं। यहां पर हमने इसी प्रकार की एक सभा के विकास का इतिहास देखना है। राष्ट्रीय शिक्षणालयों में गुरुकुल-कांगड़ी का एक विशेष स्थान है। उस विश्वविद्यालय की अनेक सभाओं में यदि किसी को मुख्यता दी जा सकती है तो वह वाग्वर्धिनी ही है। वाग्वर्धिनी सभा को इंगलैण्ड की उपरिलिखित सभाओं की तरह यह गर्व है कि उसने हिन्दी साहित्य को अनेक प्रसिद्ध सम्पादक,

लेखक, कवि और गणितज्ञ प्रदान किये हैं, आर्यसमाज को शास्त्रार्थ महारथी और उत्तम वक्ता दिये हैं, देश को निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले खरे-कार्यकर्ताओं का अमूल्य दान किया है। अतः सभा के जन्मोत्सव' के अवसर पर उसके गौरवपूर्ण इतिहास का एक पर्यन्वेक्षण एवं इस दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। इस सभा के भूतकाल का निरीक्षण कर वर्तमान काल में भूतकाल से भी अधिक उन्नति करने की योजना बनाये तथा भविष्य को भूत और वर्तमान की अपेक्षा अधिक उज्वल बनाने में समर्थ हों।

इतिहास के उपादान साधन—: १ लिखित सामग्री, 2. मौखिक सामग्री।

१. लिखित सामग्री— निःसन्देह ऐसी महत्वपूर्ण सभा का इतिहास हमारे लिए शिक्षाप्रद और मनोरंजक है। किन्तु उसको ठीक 2 उपलब्ध करने के साधन हमारे पास बहुत कम हैं। सभा के कार्यक्रमों की पुरानी पंजिकाओं से इतिहास की रूपरेखा तैयार हो सकती थी पर मंत्रियों की असावधानता से पुरानी पंजिकायें बिलकुल विलुप्त हो चुकी हैं। 'राजहंस' की पुरानी संख्याओं से उसके भूत पर कुछ प्रकाश पड़ सकता था पर वे संख्यायें एक या दो बार नहीं—बल्कि तीन बार अग्निकाण्ड में भस्मसात हो चुकी हैं। उनकी राख का जर्रा-जर्रा अलग हो चुका है। इस समय सभा इतिहास संकलन करने

के लिए जो लिखित सामग्री प्राप्त हो सकी है वह केवल गुरुकुल के कुछ पुराने वार्षिक-वृत्तान्त तथा उपाध्यायों के गृहों में सुरक्षित पुरानी पत्रिकाओं के दो-चार अंक हैं। इस प्रकार पुराने काल पर लिखित सामग्री का सर्वथा अभाव है। परन्तु नये काल के विषय में लिखित-सामग्री की बिलकुल कमी नहीं। सन् १९२३ से १९३८ तक की कार्यक्रम की पंजिकाएँ बिलकुल सुरक्षित अवस्था में हैं। 'राजहंस' की कुछ अधूरी संख्याएँ भी प्राप्त होती हैं।

२. मौखिक सामग्री— कहते हैं कि मुसलमानों का पवित्र ग्रन्थ 'कुरान' मुहम्मद भक्तों की स्मृतियों से लेखबद्ध किया गया था। आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रारम्भिक वर्षों का इतिहास भी सभाओं के कार्यों में प्रमुख भाग लेने वाले मान्य स्नातक बन्धुओं के पुराने संस्मरणों से संगृहीत किया गया है। हमारा विश्वास है कि कुलमाता का पारिवारिक इतिहास भी इसी तरह लिखा जा सकता है। लिखित सामग्री के साथ२ यह मौखिक-सामग्री भी हमारे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। अनेक नये तथा जो शायद इकट्ठे न किये जाते तो सदा के लिए विलुप्त हो जाते - इस प्रकार लेखबद्ध होकर सुरक्षित हो गये हैं। मनुष्य की स्मृति धोखा दे सकती है, वह अन्य कालों को न जानते हुए अपने काल को सुनहला बता सकता है - मौखिक साक्षी में इस तरह के अनेक दोषों की

सम्भावना हो रहती है। अतः मौखिक साक्षी के साथ यथासंभव लिखित साक्षी की तुलना करते हुए हमने इन दोषों से बचने का प्रयत्न किया है।

कालविभाग — प्राप्त सामग्री के आधार पर प्रवृत्तियों के भेद से हम इस सभा के इतिहास को तीन कालों में बाँट सकते हैं।

(1) प्राचीन काल (1904 से 16 तक) — इस काल में वाग्वर्धिनी सभा केवल एक वाद विवाद सभा के रूप में ही थी।

(2) मध्यकाल — (1916 से 26 तक) — यह विशेषाधिवेशन का काल था। इसके दो मुख्य भाग थे, साहित्यिक और राजनैतिक।

(3) आधुनिक काल (1926 से 39 तक) — इस काल में कुल से बाहर जाकर अन्तर्विश्वविद्यालय-वाद विवाद सम्मेलनों में भाग लेने की प्रवृत्ति का विशेष विकास हुआ है।

अब हम क्रमशः इन कालों का विस्तार से वर्णन करेंगे।

(1) प्राचीन काल —: सभा के मूल के बारे में हमें मूक रहना पड़ता है। वेद के शब्दों में कहा जाय तो "को अद्धा प्रवोचत क इह प्रवोचत" विशाल वट वृक्ष की भूमिस्थ जड़ों की तरह इसका भी मूल अदृश्य है। जहां वास्तविक तथ्य नहीं उपलब्ध होते वहां लोग कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगते हैं। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास इसका बहुत

भरा शिकार हुआ है। हम इतिहास में कल्पना का स्थान न मानते हुए भी यहां पर कल्पना करने को बाध्य हैं। सभा के मूल के बारे में सबसे प्रामाणिक कल्पना यही समझी जा सकती है कि गुरुकुल स्थापना के दो वर्ष पश्चात् ही सन् १९०४ में विद्यार्थियों को उत्तम वक्ता एवं शास्त्रार्थ महारथी बनाने के लिए इस सभा का जन्म हुआ। सभा की स्थापना महात्मा मुन्शीराम जी के करकमलों से हुई। उन दिनों आर्यसमाज में शास्त्रार्थों का जमाना था। स्थान २ पर सनातनी पण्डितों, मौलवियों और पादरियों से शास्त्रार्थ होते थे। मौलवियों और पादरियों से टक्कर लेने वाले विद्वान् तो आर्यसमाज में थे परन्तु सनातनी पण्डितों से धाराप्रवाह संस्कृत में शास्त्रार्थ करने वाले विद्वानों का अभाव था। यहां पर इसका एक प्रमाण देना पर्याप्त होगा। महात्मा जी को गुरुकुल में जब वेद, व्याकरण, दर्शन तथा संस्कृत साहित्य की उच्च शिक्षा देने वाले उपाध्यायों की आवश्यकता हुई तो उन्हें सारे आर्यसामाजिक जगत् में से बड़ी कठिनता से एक ही संस्कृतज्ञ आर्यविद्वान् पं. शिवशंकर जी शर्मा प्राप्त हुए। लाचार होकर महात्मा जी को अधिक वेतन देकर सनातनी पण्डितों को गुरुकुल में रखना पड़ा ताकि उन विषयों का अध्ययन कराया जा सके। इसप्रकार की स्थिति का सम्भवतः एक कारण यह था कि आर्यसमाज के सिद्धान्तों को सबसे पहले जिन लोगों ने स्वीकार किया वे ब्राह्मणेतर वर्ण के थे। आर्यसमाज 'सनातन धर्म' का प्रबल

प्रतिद्वन्द्वी था। 'सनातन धर्म' का रक्षक या ठेकेदार ब्राह्मण वर्ग ही था। ब्राह्मण वर्ग के स्वार्थों पर आर्यसमाज सीधा हमला करता था। उसकी मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तीर्थ, गंगा आदि नदियों की पवित्रता तथा सैकड़ों प्रकार के पाखण्डों का वह ज़ोरदार खण्डन करता था। अतः आर्यसमाज में पहले दीक्षा ग्रहण करने वाले स्वभावतः ब्राह्मणेतर वर्ग के लोग थे। परन्तु मध्यकाल से सैंकड़ों वर्षों की परम्परा के कारण वेदादि का अध्ययन ब्राह्मणों का एक विशेषाधिकार समझा जाता था और उन्हीं तक सीमित था। इसलिए आर्यसमाज में पण्डितों की कमी थी। प्राचीनकाल में बौद्ध और ईसाई धर्म में भी हम यही क्रम देखते हैं। पहले साधारण जनता धर्म स्वीकार करती है तदनन्तर पंडित एवं पुरोहित-वर्ग उसका अंगीकार करता है। स्वार्थों पर आघात पहुँचाने के अतिरिक्त इस बात का दूसरा कारण शायद पण्डितों की रूढ़िप्रियता तथा मर्यादारक्षा का भी भाव है। अल्प व्यक्ति जिस तत्परता, तेज़ी और फुर्ती से धर्म परिवर्तन कर सकते हैं उतनी तत्परता, तेज़ी और फुर्ती उनमें नहीं हो सकती। अल्प व्यक्ति चलते हैं तो ये रेंगते हैं। वे भागते हैं तो ये खिसकते हैं। कुछ भी कारण हो उस समय आर्यसमाज में पण्डितवर्ग की बहुत कमी थी। गुरुकुल आर्यसमाज की सभी आशाओं का केन्द्र था। आर्यसमाज के अभावों का पूर्ण करना-इसका प्रथम कर्तव्य था। महात्मा जी को आर्यसमाज की इस कमज़ोरी

को अच्छी तरह ज्ञान होगा। अतः उन्होंने विद्यार्थियों की वाक्शक्ति बढ़ाने तथा शास्त्रार्थ की योग्यता को उत्पन्न करने के लिए इस सभा की स्थापना की। उस समय केवल वादविवाद करना ही इस सभा का कार्य समझा जाता था। वादविवाद के विषय स्वाभाविक रूप से आर्यसामाजिक और धार्मिक थे। सभा के प्रथम अधिवेशन का विषय था – 'मूर्तिपूजा होनी चाहिए या नहीं' –। दूसरी बैठक में 'श्राद्ध' पर बहस हुई।

वाग्वर्धिनी सभा शीघ्र ही अपने उद्देश्य में सफल हुई। महात्मा जी की इच्छा पूर्ण हुई। विद्यार्थी शास्त्रार्थ कला में इतने दक्ष हो गये कि उस समय के प्रमुख आर्यसमाजी पंडितों ने भी उनसे हार मान ली। अपने इस कथन को हम दो घटनाओं द्वारा प्रमाणित करेंगे। श्री पं. जगन्नाथ जी निरुक्तरत्न आर्यसमाज के बड़े भारी पंडित हैं। उन दिनों भी उनकी बड़ी धाक थी। आर्यसमाज को उनकी शास्त्रार्थ की योग्यता में बड़ा गर्व था। जब वे कलकत्ते से निरुक्त का अध्ययन समाप्त करके पंजाब लौटे तो गुरुकुल में भी आये। विद्यार्थियों से बहस छिड़ गयी, पर उन्हें संस्कृत बोलने का अभ्यास न था। थोड़ी देर की बहस के बाद ही उन्होंने यह सम्मति प्रदान की कि यहाँ पर शास्त्रार्थी मेढ़े तैयार किये जाते हैं। दूसरी घटना स्वामी पंडित

आर्यमुनि जी से सम्बन्ध रखती है। अपना संस्कृत अध्ययन समाप्त कर काशी से लौटते हुए वे भी गुरुकुल में पधारे। शाम का समय था — गंगा के किनारे घूमने जाते हुए विद्यार्थियों से उनकी भेंट हो गयी। उन्होंने कहा — 'अम्बु गच्छति'। बस फिर क्या था। बहस छिड़ गयी। उनके इसी वाक्य पर आध घंटा वाद-विवाद होता रहा। महात्मा जी को मिलते ही उन्होंने कहा — 'महात्मा जी, आपने इन्हें पंडित तो बनाया है किन्तु शिष्टाचार नहीं सिखाया'।

उस समय एक और महत्वपूर्ण घटना हुई। न केवल मानवीय के भविष्य पर किन्तु गुरुकुल के भविष्य पर उसका बहुत अधिक प्रभाव था। अतः उस घटना का विस्तार से विचार करना आवश्यक जान पड़ता है। गुरुकुल के सामने उन दिनों एक महत्वपूर्ण प्रश्न था। क्या वह धार्मिक एवं दार्शनिक विषयों के प्रकाण्ड पण्डित किन्तु पाश्चात्य विज्ञान एवं व्यावहारिक ज्ञान से बिलकुल शून्य-विद्वान् उत्पन्न करने वाली काशी की पाठशालाओं का अनुकरण करेगा? या शिक्षा-क्षेत्र में किसी नवीनता को उत्पन्न करेगा? निःसन्देह उस समय के अध्यापक और विद्यार्थी इसे काशी की एक पाठ-शाला बनाना चाहते थे। बाहर के सरकारी स्कूलों तथा कॉलिजों का अन्धानुकरण गुरुकुल के लिए न तो संभव था और न ही उचित। अतः पण्डितों और ब्रह्मचारियों की दृष्टि में एक ही लक्ष्य था — काशी का

पंडित बनाना। विद्यार्थी गुरुकुल से असन्तुष्ट हो गये। एक दिन सब ने मिलकर सलाह की कि गुरुकुल में दर्शन, व्याकरण आदि कुछ नहीं पढ़ाया जाता। अतः गुरुकुल छोड़कर काशी चलना चाहिए। सभा ने सर्वसम्मति से फैसला कर दिया पर महात्मा जी को जाकर कौन कहे? म्याऊँ का ठौर कौन पकड़े। अन्त में एक डेपुटेशन भेजने के निश्चय हुआ। स्वामी जी आफिस में बैठे हुए कार्य कर रहे थे। एक २ करके लड़के दफ्तर में गिरोह बांधकर खड़े हो गये। जब उन्होंने अपनी नजर उठाई तो लड़कों का झुण्ड देखकर कुछ हैरान हुए। मुस्कराते हुए पूछने लगे "क्या बात है? सहसा अपना अभिप्राय प्रकट करने की किसी में हिम्मत न हुई। बार २ पूछते हुए परेशान हो गये। अन्त में एक विद्यार्थी ने अपना सारा साहस बटोर कर डरते २ और हाँफते २ एक सांस में सारी बात कह डाली। महात्मा जी बोले - 'बस यही बात थी'। उत्तर मिला ; 'हाँ, यही बात थी'। उन्होंने पूछा - 'कौन २ काशी जाना चाहते हैं'। सबने स्वीकृतिसूचक हाथ खड़ा कर दिया। वे मनोविज्ञान के पण्डित थे। जल्दी ही सारी स्थिति भाँप गये। विद्यार्थियों को यह कहकर भेज दिया कि अगले सप्ताह तुम्हें काशी भेज दिया जायगा।

इसी बीच में एक दिन सायंकाल के समय महात्मा जी ने विद्यार्थियों को कहा कि - 'देहरादून की यात्रा होगी'। विद्यार्थी प्रसन्नता से फूले न समाये। फौरन अपना २ सामान उठाकर बिस्तर बांधने लगे।

सारी रात उन्होंने जागते और पौ-फटने की इन्तज़ार करते काटी। अगले दिन सूर्य की प्रथम किरण के साथ गंगा की रेती पर कंधों पर बिस्तर लादे, पीली 'गाती' धोती बांधे कतार बनाकर चलता हुआ, एक काफ़िले जैसा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का एक दल सरस्वती यात्रा के लिए चला। कौन जानता था वह यात्रीदल गुरुकुल के भविष्य का निर्माण करने वाला होगा? गुरुकुल में बहुत सरस्वती यात्राएँ हुई हैं और आज तक होती हैं, विद्यार्थी बहुत बार पीली धोतियाँ बांधकर कतारों में निकले हैं परन्तु वैसी ऐतिहासिक, वैसी महत्वपूर्ण कोई यात्रा हुई है - इसमें सन्देह है। भविष्य में ऐसी यात्रा होगी - इसकी आशा नहीं।

गुरुकुल में यह पहली सरस्वती यात्रा थी।

यात्रीदल हरद्वार के स्टेशन पर पहुँचा। गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आई हुई थी, पर उसके चलने में अभी देरी थी। महात्मा जी विद्यार्थियों को लिये हुए इंजन के पास पहुँचे - ड्राइवर से विद्यार्थियों को सारी कलें - दिखाने और समझाने को कहा। जब उसने सीटी की कल दबाई तो सबके चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे। मानो कोई चमत्कार हो गया हो। अवश्य अन्दर कोई भूत या प्रेत बैठा होगा, नहीं तो सिर्फ़ कल दबाने से सीटी कैसे बज उठी। जब ड्राइवर ने सेफ्टी वॉल्व से अधिक भाप निकाली तो भाप के शब्द से उनके विस्मय का पारावार न रहा। आखिर यह सब माजरा है क्या? देव, जिन, भूत या परी किसे इंजन

में काबू किया हुआ है जो यह जादू के चमत्कार कर रहा है। फिर जब ड्राइवर ने उन्हें धीरे २ यह समझाना शुरू किया कि इसमें देव या जिन कुछ भी नहीं। यह तो वाष्प का खेल है। इंजन कोयला खाता है और पानी पीता है। बस, इतने से ही वह इतनी लम्बी गाड़ी को, इतने अधिक यात्रियों को और इतने भारी बोझ को पटरी पर खींच कर भागता हुआ चला जाता है। गाड़ी चलने का समय हो गया था। विद्यार्थी अपने डिब्बे में आ बैठे। पर सब के दिल आश्चर्य सागर में उतर रहे थे। आज उन्होंने नयी दुनिया के दर्शन किये थे। अब तक उनकी दुनिया 'घटत्वावच्छेदकावच्छिन्न' ही थी — वे 'हिड्डाणम्', 'दाधर्तिदर्धर्ति', और 'पुनीरमाकौ' ही जानते थे पर आज उन्होंने जाना कि इनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ ज्ञातव्य हैं। जो कुछ हम जानते हैं वह इतना कीमती, इतना कीमती उपयोगी नहीं जितना कि यह दुनियां का ज्ञान है। यात्रीदल देहरादून पहुँचा। महात्मा जी ने वहां की मिलें, फैक्ट्रियाँ, कल-कारखाने और मशीनें दिखाईं। अब विद्यार्थियों को धीरे २ समझ आ रहा था कि 'साइन्स' भी कोई चीज़ है। आज की दुनियां 'अख्याति', 'उपधा', 'गुण' और वृद्धि से नहीं शासित हो रही किन्तु 'साइन्स' शासित हो रही है। यात्रा समाप्त हुई — विद्यार्थी गुरुकुल लौटे। उनकी आंखें खुल चुकी थीं। दूसरे ही दिन उन्हीं विद्यार्थियों का गुट महात्मा जी के पास रह गई

प्रार्थना लेकर पहुँचा। महात्मा जी ने मुस्कराते हुए पूछा - क्या बात है? उसका कोई डर, झिझक या शर्म नहीं थी। उन्हें दुबारा पूछने की भी ज़रूरत न पड़ी। विद्यार्थियों ने तत्काल जवाब दिया - महात्मा जी, हम विज्ञान पढ़ना चाहते हैं। इस विषय के अध्यापन का प्रबन्ध कर दीजिए। महात्मा जी ने कहा - 'बहुत अच्छा। जल्दी ही उसका प्रबन्ध हो जायगा।' यह क्षण गुरुकुल के इतिहास में महत्वपूर्ण था। इस बात का निर्णय हो गया कि गुरुकुल में पूर्व के शास्त्रों के साथ पश्चिम के विज्ञानों की भी शिक्षा दी जायगी। गुरुकुल न तो कट्टर पंडित पैदा करने वाली एक पाठशाला होगा और न ही पश्चिमी सभ्यता के प्रवाह में बहने वाला और उसका अन्धानुकरण करने वाला एक कॉलिज होगा। वह पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का संश्लिष्ट होगा। वह दोनों संस्कृतियों के उपादेय तत्वों के सम्मिश्रण से एक नयी और उन्नत संस्कृति का जन्मदाता होगा। संक्षेप में उसमें पूर्व और पश्चिम के सर्वोत्कृष्ट एवं सारभूत तत्वों (दी बैस्ट आव दी ईस्ट एण्ड दी बैस्ट आव दि वैस्ट) की शिक्षा दी जायगी।

<u>गुरुकुल में राजनीति का प्रवेश</u> —: गुरुकुल में यह क्रान्तिकारी परिवर्तन था। सब क्षेत्रों में इसका असर स्पष्ट दिखाई देने लगा। पाठ्यक्रम में पौरस्त्य विषयों की महत्ता पहले जैसी न रही। वानप्रस्थी प्रथा के विपक्ष अब केवल

धार्मिक एवं शास्त्रार्थों पयोगी न रहे। वैज्ञानिक विषयों का भी प्रवेश हुआ। इसी समय गुरुकुल में राजनीति प्रविष्ट हुई। राजनीति की चर्चा प्रारम्भ करने का श्रेय श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी को है। उन दिनों राष्ट्रिय महासभा में नरम-गरम दल का झगड़ा ज़ोरों पर था। नरम दल के प्रमुख नेता श्री. गोपालकृष्ण गोखले थे तथा गरम दल का नेतृत्व श्री. बालगंगाधर तिलक कर रहे थे। दोनों महाराष्ट्री थे, ब्राह्मण थे, चितपावन कुल में उत्पन्न हुए थे तथा प्रारम्भ में एक ही संस्था में काम करने वाले थे परन्तु दोनों के विचारों में आकाश पाताल का अन्तर था। पहले का दृढ़ विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार ईश्वर की इच्छा से भारतीयों की भलाई के लिए ही भारत में प्रतिष्ठापित है। उसका विरोध करना न केवल राजद्रोह अपितु ईश्वरद्रोह भी है। दूसरे पक्ष की दृढ़ धारणा थी कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों को हानि पहुँचाने के लिए यहां कायम है। ऐसे अत्याचारी शासन का अन्त करना न केवल हमारा राजनैतिक अपितु धार्मिक कर्तव्य है। गोखले कहते थे – 'अधिकारों के लिए प्रार्थना पत्र भेजो'। तिलक का कहना था – अधिकारों के लिए लड़ो'। भारत के राजनैतिक वातावरण में गर्मी पैदा हो गयी। सन् 1906 में सूरत में दोनों दलों की ज़बरदस्त टक्कर हुई। इसका असर गुरुकुलीय जीवन पर भी पड़ा। श्री सातवलेकर जी भी महाराष्ट्र ब्राह्मण थे।

उन्होंने महाराष्ट्र की राजनीति का गुरुकुल में प्रवेश कराया। वह तिलक को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। महात्मा जी गोखले की नीति को अधिक उपयुक्त समझते थे। विद्यार्थियों को दोनों पक्ष जानने का मौका मिलता। स्वभावतः राजनीति आदि विषयों की अपेक्षा अधिक आकर्षक थी। उसमें अधिक दिलचस्पी ली जाने लगी।

<u>सभा के नियम</u>—: उन दिनों वाग्वर्धिनी सभा के अधिवेशनों के कोई निश्चित नियम थे। एक निश्चित स्थान पर इकट्ठे होकर बाकायदा एक सभापति का चुनाव करके क्रम से विद्यार्थियों के भाषण न होते थे किन्तु रात को भोजन के बाद इकट्ठे बैठकर उन राजनैतिक विषयों पर चर्चा हुआ करती थी। इसे हम गोष्ठी ही कह सकते हैं। इन अनियमित अधिवेशनों में सभा वाद-विवाद की अवस्था से आगे नहीं बढ़ी। विशेषाधि-वेशनों का अभी जन्म न हुआ था। वादविवादों के अतिरिक्त कुल में पधारने वाले मान्य व्यक्तियों के व्याख्यान भी हुआ करते थे। इन व्याख्यानों का स्थान प्रायः यज्ञशाला होती थी।

गुरुकुल के इतिहास में यह युग संस्कृत एवं पण्डितों का युग था। यद्यपि पाश्चात्य विषयों का प्रवेश हो चुका था किन्तु उनका स्थान बहुत तुच्छ समझा जाता था।

हिन्दी में लिखना आदि हीनता की दृष्टि से देखा जाता था। संस्कृत में बातचीत और भाषण करना गौरव की बात समझी जाती थी। बाद के कॉलेजों में जो स्थान अंग्रेज़ी को मिला था वह उस समय यहां पर संस्कृत को प्राप्त था। हिन्दी दोनों स्थानों में एक उपेक्षित भाषा थी। अतः यह स्वाभाविक था कि वाग्वर्धिनी की अपेक्षा संस्कृतोत्साहिनी का अधिक महत्व समझा जाय। उस काल की शुद्ध संस्कृत की हस्तलिखित तथा छपी हुई पत्रिकाओं में - 'साहित्यामृतवर्षिणी', 'साहित्यपुष्प', 'आशा', 'उषा' आदि नाम तो सुनाई पड़ता था किन्तु शुद्ध हिन्दी की कोई हस्तलिखित पत्रिका भी नहीं दिखाई देती थी। वाग्वर्धिनी सभा की सबसे पहली पत्रिका 'चन्द्रिका' थी और उसमें संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के लेख हुआ करते थे।

<u>सभा की समाप्ति</u> -: सन् १९०८ के जून या जुलाई के महीने में इस सभा पर अकस्मात् वज्रपात हुआ। गुरुकुल के एक प्रमुख अधिकारी ने सभा को गैरकानूनी करार देकर बन्द करने की आज्ञा दे दी। उस समय वही अधिकारी गुरुकुल के सर्वेसर्वा थे; अतः उनके विरुद्ध कहीं 'अपील' भी न हो सकती थी। सभा बन्द हो गई। महाविद्यालय विभाग के

दो टुकड़े कर दिये गये। अर्थात् उन्हें दो भिन्न २ स्थानों पर रहने की आज्ञा दी गयी। बंगभंग की तरह महाविद्यालय के अंग-भंग कर उन्हें आशा थी कि अब ~~कोई~~ विद्यार्थी संगठित होकर बगावत न कर सकेंगे। अगले ४½ वर्ष का इतिहास उस प्रमुख अधिकारी के संघर्ष की एक रोचक कथा है। सभा महाविद्यालय का प्राण थी। उसके बिना विद्यार्थियों का सामाजिक जीवन समाप्त हो रहा था। उन्होंने बार २ निवेदन किया कि सभा के न रहने से हमारी वाक्शक्ति नष्ट हो रही है। हमें फिर सभा बनाने की आज्ञा दी जाय। पर सब प्रार्थनाएं बहरे कानों पर पड़ीं। जब बहुत शोर मचा तो उस अधिकारी ने एक नियमावली बनाकर भेजी और कहा कि इन नियमों के अनुसार सभा फिर बनाई जा सकती है। विद्यार्थियों ने वह नियमावली अस्वीकृत कर दी। महीनों यह नियमावली अधिकारी से ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारियों से अधिकारी की ओर फुटबाल की तरह फेंकी जाती रही। मुख्यतः, विवाद इस प्रश्न पर था कि सभा का प्रधान अधिकारी हो या ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारियों की मांग थी कि — सभा का प्रधान ब्रह्मचारी होना चाहिए। अधिकारी के सभापति होने से हम अपने विचार स्वतन्त्र नहीं प्रकट कर सकते। इसलिये विद्यार्थी तो शान्ति के द्वारा अपनी

ज़बान भी नहीं खोल सकते। दूसरे पक्ष का कथन था कि अधि-कारी के सभापति होने से ब्रह्मचारियों पर नियन्त्रण रहेगा। वे उच्छृंखल होकर अधिकारियों की आलोचना नहीं कर सकेंगे। वास्तव में यही बग़ावत थी जिसके द्वारा सभा बन्द की गई थी। हम यहां इस बहस में नहीं पड़ना चाहते कि कौन सा पक्ष न्याय्य था। सम्भवत: दोनों पक्ष कुछ अंशों में सच्चे थे। विद्यार्थियों की स्वतन्त्रता को बिलकुल नष्ट कर देना वांछनीय नहीं हो सकता परन्तु उन्हें बेलगाम छोड़ देना भी खतरे से खाली नहीं। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उन्हें दी गई स्वतन्त्रता उच्छृंखलता में परिणत न हो जाय। हमने विस्तार से उस घटना को इसलिए लिखा है कि कई बार सभा के मध्यकाल में भी इसी प्रश्न को लेकर झगड़ा उठा है। यह प्रश्न इतना जटिल और नाजुक है कि इस पर कोई सम्मति कायम करना असम्भव नहीं तो कठिन कार्य अवश्य है। अस्तु। जो कुछ हो १९०८ सन् में यह झगड़ा बढ़ता ही गया। तनातनी इतनी बढ़ गयी कि समझौते की आशा बिलकुल जाती रही। ४½ साल तक सभा का कोई अधिवेशन नहीं हुआ।

<u>सभा का पुनर्जन्म</u>—: सन् १९१२ के अन्त में महात्मा जी एक लम्बे अर्से के बाद गुरुकुल लौटे।

ब्रह्मचारी अपनी नियमावली लेकर उनके पास गये। स्वामी जी ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी। १ पौष संवत् १९६९ तदनुसार १५ दिसम्बर १९१२ सन् को वाग्वर्धिनी सभा की पुनः स्थापना की गई। श्री पं. चन्द्रमणि जी इसके प्रथम मन्त्री बने। शास्त्रों का कथन है - 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते'। इस पुनरुत्थान संस्कार से यह सभा द्विज बनी। सम्भवतः इसीलिए यह सभा अन्य सभाओं से श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण गिनी जाती है। पर अब इसके उद्देश्य में अन्तर आ गया था। अब इसका लक्ष्य शास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त करना न रहा। अब इसका उद्देश्य ब्रह्मचारियों की वाक्शक्ति को बढ़ाना था। पहले यह मुख्यतया 'शास्त्रार्थविवर्धिनी' थी, अब यह सच्चे अर्थों में 'वाग्वर्धिनी' बनी। आगे आने वाले मन्त्रियों ने वाग्वर्धिनी की यह पुनर्जन्मतिथि ही वास्तविक जन्मतिथि समझी। वाग्वर्धिनी का 'रजत जयन्ती' महोत्सव भी इसी कालगणना के आधार पर मनाया गया है। ~~पाश्चात्य विज्ञान के प्रवेश से~~

<u>राजहंस</u> - पाश्चात्य विज्ञान के प्रवेश से उत्पन्न परिवर्तन के चिह्न इस समय दृष्टिगोचर हो रहे थे। पण्डितमण्डली गुरुकुल से जा चुकी थी। संस्कृत का पहले जैसा प्रभाव न रहा। पाश्चात्य विज्ञानों की शिक्षा मातृभाषा हिन्दी में दी जाने से अब उसके प्रति उदासीनता का भाव नष्ट हो गया। देश की ज्वलन्त समस्याओं पर बोलने या लिखने में ब्रह्मचारियों को संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी में ही सुगमता थी।

अतः वाग्वर्धिनी को अपनी प्रतिस्पर्धी संस्कृतोत्साहिनी से पहले जैसा भय नहीं रहा। सन् १९१३ में वाग्वर्धिनी का मुखपत्र 'राजहंस' भी निकलने लगा। महाविद्यालय के वर्तमान पत्रों में यह सबसे पुराना पत्र है।

उन दिनों प्रगतिशीलता का भाव था। वाग्वर्धिनी सब श्रेणियों की सभा समझी जाती थी। परन्तु उसके अधिवेशनों में प्रायः भाग लेने वाले महाविद्यालय के ब्रह्मचारी होते थे। सन् १९१४ में एक मनोरंजक झगड़ा हुआ। ऐसा कहा जाता है कि एक बार वाग्वर्धिनी का अधिवेशन हो रहा था तो विद्यालय विभाग के 'नवीं-दसवीं' के कुछ ब्रह्मचारियों ने भी इसमें भाग लिया। महाविद्यालय वालों ने इसमें अपनी हतक समझी। उन्हें विद्यालय के ब्रह्मचारियों का यह हस्तक्षेप अपनी शान में बट्टा लगाने वाला जान पड़ा। परिणाम यह हुआ कि महाविद्यालय तथा विद्यालय विभागीय उच्च कक्षाओं के सम्बन्धों में तनातनी पैदा हो गयी। दोनों दलों में प्रतिस्पर्धा बढ़ गयी। यह बड़ा बेमेल मुकाबला था। विद्यालय के विद्यार्थी और महाविद्यालय के विद्यार्थी का उपयुक्त जोड़ नहीं। महाविद्यालय के विद्यार्थी को अपनी प्रतिष्ठा की ज्यादा चिन्ता होती है। वह महाविद्यालय का विद्यार्थी होने से अपने में

एक विशेष बड़प्पन को अनुभव करता है। परन्तु विद्यालय के विद्यार्थी में यह भावना नहीं होती। नवीं-दसवीं श्रेणी ने 'साहित्यसंजीवनी' को जन्म दिया तथा 'राजहंस' के मुकाबले में 'साहित्य-चन्द्रिका' निकाली। पर झगड़े का सिलसिला यहीं समाप्त न हुआ। ७वीं, ८वीं श्रेणी ने नवीं दसवीं से बगावत की। 'साहित्य संवर्धिनी' की स्थापना कर 'साहित्य सौदामिनी' पत्रिका निकाली। इन पत्रिकाओं में खूब नोंक-झोंक चली। 'साहित्य सौदामिनी' वाले कहते थे कि चन्द्रिका बादलों से ढक सी जाती है किन्तु सौदामिनी सदा चमकती रहती है। 'साहित्य चन्द्रिका' 'राजहंस' पर कटाक्ष करती। 'राजहंस' के दौर्भाग्य से महाविद्यालय में उस समय बहुत अच्छे साहित्यिक नहीं थे जो 'चन्द्रिका' के आक्षेपों का उचित उत्तर देते। 'चन्द्रिका' की आग्नेय-बाण वर्षा पर बेचारा 'राजहंस' पंख फड़फड़ाता ही रह जाता।

ये झगड़े बहुत बढ़े। 'साहित्यसंजीवनी' के संस्थापक गुरुकुल के आचार्य स्वामी अभयदेव जी तथा माननीय उपाध्याय श्री. पं. वागीश्वर जी जब महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने [illegible] का विद्यालय का झगड़ा जारी रक्खा। जिस प्रकार विद्यालय में रहते हुए उन्होंने इस सभा का बहिष्कार किया था महाविद्यालय में उन्होंने इसे बहिष्कृत ही रक्खा। वे 'साहित्यसंजीवनी'

ही चलाते थे। परन्तु महात्मा जी इस झगड़े को नापसन्द करते थे। उन्हीं प्रेरणा से महाविद्यालय में 'साहित्यसंजीवनी' बन्द कर दी गयी। उन्हीं दिनों यह तय हुआ कि वाग्वर्धिनी सभा महाविद्यालय की सभा समझी जाय तथा साहित्यसंजीवनी विद्यालय की सभा। इसको सूचित करने के लिए वाग्वर्धिनी के नाम के आगे 'महाविद्यालय' का शब्द और जोड़ा गया। इस प्रकार सन् १९१५-१६ में ~~वाग्वर्धिनी~~ वाग्वर्धिनी को वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ। इन झगड़ों की समाप्ति के साथ 'महाविद्यालय-वाग्वर्धिनी' का प्राचीनकाल समाप्त होता है।

<u>मध्यकाल</u> -: यह काल सन् १९१७ से २६ तक है। सभा के इतिहास में यह दशक महत्वपूर्ण है। इसे हम विशेषाधिवेशनों का काल भी कह सकते हैं। अब तक 'वाग्वर्धिनी' केवल वाद-विवाद करने वाली तथा व्याख्यान दिलाने वाली ही सभा थी। अब उसका विकास प्रारम्भ हुआ। नये २ विशेषाधिवेशन होने लगे। पहले इनका झुकाव साहित्य की ओर था; पीछे से इनका रुख राजनीति की ओर हुआ। वाग्वर्धिनी-सभा ने वास्तव में इस दिशा में आश्चर्यजनक प्रगति की है। हिन्दी साहित्य को उसने कई नई चीज़ें प्रदान की हैं जिन्हें संभवतः इस समय हिन्दी जगत् भी नहीं जानता और वाग्वर्धिनी सभा के सदस्यों के लिए वे इतनी साधारण घटनाएँ हो

गयी हैं कि उन्होंने कभी उन घटनाओं का महत्व ही नहीं अनुभव किया। जिस प्रकार गुरुकुल उस समय शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा देने का सफल परीक्षण कर देश की अन्य शिक्षा संस्थाओं का नेतृत्व कर रहा था उसी प्रकार वाग्वर्धिनी सभा कई नयी चीजों के द्वारा हिन्दी जगत में अग्रणी बनी हुई थी। पहले हम उन नयी चीजों का कुछ विस्तार से वर्णन करेंगे।

<u>कविता सम्मेलन</u> -: आजकल कविता सम्मेलन एक साधारण बात हो गई है। कोई उत्सव कविता सम्मेलन के बिना सफल नहीं समझा जाता। बड़े लोगों के घर में पुत्र का जन्म हुआ, उपनयन संस्कार हुआ, ब्याह हुआ, या और कोई खुशी का अवसर हुआ तो कवियों को बुला लिया जाता है। कवि सम्मेलनों की बाढ़ सी आ गयी है। यह प्रवृत्ति इन वर्षों में यहीं तक बढ़ी है। कविसम्मेलनों की प्रतिष्ठा और मर्यादा में बहुत कुछ अन्तर आने लगा है। यदि इनके बुलाने की यही रफ्तार जारी रही तो वह दिन दूर नहीं कि जब फिर ऐसे लोग अपने नाखून कटाने, और सिर मुड़ाने तथा नया सूट बदलने पर भी कवि सम्मेलन बुलाया करेंगे। घरों में इस प्रकार कविता सम्मेलन बुलाने का तीव्र विरोध भी हो रहा है। यह तथ्य देने का, हमारा अभिप्राय केवल इतना ही प्रदर्शित करना है कि कवि सम्मेलन आजकल बिलकुल मामूली

चीज़ हो गये हैं। असाधारण वस्तुएँ स्वतः ख़ास ध्यान अपनी ओर खींचकर अपने विषय में जिज्ञासा उत्पन्न कर देती हैं परन्तु साधारण चीजों के विषय में हमें कभी कुतूहल नहीं पैदा होता। कविता-सम्मेलनों के उद्गम के विषय में भी हमने इसीलिए आजतक नहीं सोचा। उर्दू के मुशायरों का रिवाज बहुत पुराना है परन्तु हिन्दी के कविता सम्मेलन नयी चीज़ हैं और इनका प्रारम्भ गुरुकुल से ही हुआ है। यह सम्भव है कि अन्य स्थानों में स्वतन्त्ररूप से इनका जन्म हुआ हो किन्तु गुरुकुल में यह विचार बाहर से नहीं आया। यह यहां की स्वतन्त्र उपज थी।

हिन्दी के कविता सम्मेलनों का प्रारम्भ भी संस्कृत के कविता सम्मेलनों से हुआ, क्योंकि गुरुकुल में प्रत्येक नयी चीज़ संस्कृत से ही शुरू होती थी। गुरुकुल में पहला संस्कृत कविता सम्मेलन श्री योगेन्द्रनाथ जी न्याय-सांख्य-वेदान्ततीर्थ की अध्यक्षता में हुआ। उसमें जो समस्याएं रखी गई थीं उनसे आश्रम के वातावरण पर काफी प्रकाश पड़ता है। पहली समस्या थी आचार्य जी का एक सूत्र 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'। दूसरी समस्या श्री वेदव्रत का एक वाक्य 'सवितर् कालाग्नि समर्पय स्वाहा'। हिन्दी कविता-सम्मेलन इन संस्कृत कविता-सम्मेलनों के बाद ही प्रारम्भ हो गये।

कविता — इस स्थान पर गुरुकुल में हिन्दी-कविता के विकास के इतिहास को भी देख जाना अप्रासंगिक न होगा। गाना ब्रह्मचारी के लिए वर्जित है अतः हिन्दी कविता और भजन प्रारम्भ में निषिद्ध रहे थे। उत्सवों या त्योहारों के अवसरों पर कोई हिन्दी का गाना या भजन नहीं गाया जाता था। इस नियम का बड़ी कठोरता से पालन होता था। वार्षिकोत्सव पर बाहर से जो गवैये बुलाये जाते थे, उन बेचारों को भी मजबूर होकर संस्कृत के राग अलापने पड़ते। उस समय की अवस्था को अच्छी तरह दिखाने के लिए हम एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। उन दिनों लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर किन्हीं पं. विष्णुदत्त जी के भजन बहुत पसन्द किये गये थे। आर्यसमाज में चारों ओर उनके गाने की धूम मच गई। गुरुकुल में भी यह समाचार पहुँचा। जब गुरुकुल का वार्षिकोत्सव पास आया तो ब्रह्मचारियों की बहुत अनुनय-विनय एवं आग्रह के कारण महात्मा जी ने उन्हें उत्सव पर बुलाया। उनको सारे गीत संस्कृत में ही गाने पड़े। बड़ी कठिनता से उन्हें एक हिन्दी में गीत गाने की आज्ञा मिली। यह भजन लाहौर के वार्षिकोत्सव पर बहुत पसन्द किया गया था। इसकी पहली पंक्ति थी— "ओ रावण, तू धन की दिखाता किसे है"। गुरुकुल भूमि में यह पहला हिन्दी का गाना था।

धीरे 2 हिन्दी की कविता के प्रति यह विरोध

भाव द्वारा शुरू होने लगा। संस्कृत में गीतियों की रचना ~~की~~ की जाती थी। अब हिन्दी में भी यह रचना शुरू हुई। स्थूल रूप से कविता के दो भाग किये जा सकते हैं – छन्द और प्रतिपाद्य विषय। गुरुकुल के कवियों को छन्द के बारे में कोई दिक्कत नहीं हुई। संस्कृत छन्दों में कविता ~~बनाना~~ बनाने से संस्कृत छन्द उनके लिए 'सिद्ध' हो गये थे। हिन्दी में कविता बनाते हुए प्रारम्भ में उन्होंने संस्कृत छन्दों का प्रयोग किया।

कविता का प्रतिपाद्य विषय छन्द से भी अधिक महत्वपूर्ण है। यदि कवि प्रतिपाद्य-विषय में रस नहीं उत्पन्न कर सकता तो वह अच्छा तुकबन्दी करने वाला हो सकता है परन्तु उत्तम कवि नहीं बन सकता। रसात्मक ~~काव्य~~ वाक्य ही काव्य है। रस की उत्पत्ति किस प्रकार होती है - यह कहना कठिन है परन्तु उपर्युक्त परिस्थितियों में रस की अनुभूति अवश्य होती है। गुरुकुल की 'भागवी भूमि' स्वभावतः भावुक हृदयों में रसोद्रेक उत्पन्न करती है। वह भूमि स्वयमेव एक जीवित कविता है। एक तरफ 'अभ्र चुम्बित भाल हिमाचल' खड़ा है, दूसरी तरफ कल-कल निनादिनी भगवती भागीरथी प्रवाहित हो रही है। इन दोनों के बीच में अपूर्व शोभा से बलात् अपनी ओर खींच लेने वाली वनश्री है। इन तीनों के संगम से पारा भूमि को जो ~~प्रा~~ प्राकृतिक

सुषमा प्राप्त हुई है, वह अवर्णनीय है। वहां के 'वन पर्वत नदी नीर' में एक अद्भुत मोहक सौन्दर्य है। न जाने कितने कवियों ने बखान का प्रयत्न किया है। लेखकों ने लेखबद्ध करने की कोशिश की है। किन्तु वह बखान अब तक भी अधूरा है। प्रकृति ने मुक्त-हस्त होकर सौन्दर्य बिखेरा है। स्थान २ पर ऐसे दृश्य मिलते हैं कि हटकर आगे नहीं उठता। सरसहृदय वहीं मन्त्र-मुग्ध होकर जड़वत् खड़े रह जाते हैं। आंधी की पंक्तियाँ हिमालय की उच्च शाखाओं तथा वनों की स्निग्ध स्वच्छता से सरस-हृदयों की बात जाने दीजिए। नीरस से नीरस हृदय भी निशाकर की शुभ्र ज्योत्स्ना में धवल गंगा तट पर घूमते हुए कुछ पद गुनगुनाते हुए देखे गये हैं। 'उस पार की भूमि' कविता के लिए आदर्श भूमि है।

ऐसी सरस भूमि में सरस कविता का विकास होना सर्वथा स्वाभाविक है। जिस युग की हम बात लिख रहे हैं वह हिन्दी में खड़ी-बोली की कविता के अभ्युत्थान का युग था। खड़ी-बोली की कविता अभी शुरू हुई थी और ब्रजभाषा के समर्थक उसका प्रबल विरोध कर रहे थे। खड़ी बोली में हृदयग्राहिणी रचना एक असम्भव बात समझी जाती थी। स्व. श्री. पं. सत्यनारायणजी कविरत्न ने कहा था कि कविता की तो वही भाषा हो सकती है जिसमें 'सूर' ने यह पद गाया है — "मैया मोरी, मैं नहीं माखन खायो"।

वास्तव में उस समय की खड़ी-बोली की कविताओं में कवित्व कम है और पद्यमय-गद्य अधिक। हमारा दृढ़ विश्वास है कि उस समय की 'सरस्वती' में निकली हुई खड़ी-बोली की कविताओं का यहां की कविताओं से मिलान किया जाय तो यहां कि कवितायें अधिक सरस और हृदय-ग्राहिणी प्रतीत होगीं। उन दिनों गुरुकुल के कवियों और कविताओं की बाढ़ आ गयी थी। कोई त्योहार या जन्मोत्सव ऐसा न जाता जिसपर नयी कुलगीति और कविता न पढ़ी जाती हो। कवियों और गायकों में अद्भुत उत्साह था। वे सदा नयी २ तर्जों और नये २ गानों की धुन में रहा करते थे। जन्मोत्सव पर नये २ गीत गाने के समय एक अजीब जोश होता था। उन दिनों को याद कर आज बरबस मुँह से आह निकल पड़ती है - "ते हि नो दिवसा: गता:"। एक हसरत भरी निगाह से अपने गुजरे हुए जमाने को देखकर कहना पड़ता है - 'वे कैसे मधुमय दिन थे'। उन मधुमय दिनों में अनेक पुण्य गीतों की सृष्टि हुई। कुलमाता के चरणों में अनेक कुसुमा-ञ्जलियाँ अर्पित की गयीं। प्रसिद्ध कुलवन्दना और कुलगीतों का इसी समय निर्माण हुआ। साहित्यिक सभा की ओर से 'काव्य-कुसुमाञ्जलि', 'पद्यकुसुमाञ्जलि' नाम के गीत संग्रह छपे। इन संग्रहों

इसी के बाद वाग्वर्धिनी सभा की ओर से भी कोई पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई।

नाटक - नाटक साहित्य का एक आवश्यक अंग है। इसकी महत्ता एवं उपयोगिता के बारे में अपनी ओर से कुछ भी न कहते हुए महाकवि कालिदास की ही सम्मति उद्धृत करेंगे। उन्होंने लिखा है - 'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्'। मनुष्य भिन्न रुचि हैं, सबको प्रसन्न करना बहुत कठिन है परन्तु फिर भी आबालवृद्ध सबका मनोरंजन करने वाला यदि कोई साधन है तो वह 'नाटक' ही है। गुरुकुल में नाटकों का प्रारम्भ भी संस्कृत से हुआ। सबसे पहला संस्कृत नाटक कब खेला गया - इसके विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह निश्चित है कि उसमें वेष परिवर्तन की आज्ञा नहीं दी गयी थी। ब्रह्मचारियों ने पीली गाती धोती बांधकर ही सारा अभिनय किया था। इसे नाटक की अपेक्षा एक संस्कृत संवाद कहना ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

गुरुकुल में नाटकों की उत्पत्ति का एक इतिहास है। उन दिनों विद्यार्थियों को ग्रीष्मावकाश प्रायः गुरुकुल में ही बिताने पड़ते थे। खाली समय का उपयोग अतः विद्यार्थी नाटकों तथा अन्य सम्मेलनों की तैयारी में बिताया

करते थे। गुरुकुल में खेला जाने वाला दूसरा नाटक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत "भारत दुर्दशा" नाटक था। इस नाटक के साथ एक मनोरंजक घटना जुड़ी हुई है। विद्यार्थी उस समय के प्रबन्ध अधिकारी से नाटक खेलने की स्वीकृति लेने गये। अधिकारी ने कहा कि नाटक तो ब्रह्मचारी के लिए वर्जित है। अतः मैं इसके खेलने की आज्ञा नहीं दे सकता। विद्यार्थियों की सभी आशाओं पर तुषारापात हो गया। अपना सा मुँह लेकर आश्रम वापिस लौट आये। पर उसी समय एक विद्यार्थी को यह सूझा कि क्यों न अधिकारी की संस्कृतानभिज्ञता का फ़ायदा उठाया जाय। विद्यार्थी दुबारा अधिकारी के पास पहुँचे और कहा कि हम 'अभिनय' करना चाहते हैं। अधिकारी को क्या पता था कि 'अभिनय' किस चिड़िया का नाम है। उन्होंने सोचा — संस्कृत की कोई चीज़ होगी और यह सोचकर झट से आज्ञा दे दी।

'भारतदुर्दशा' गुरुकुल में खेला जाने वाला पहला वास्तविक नाटक है। यह श्री पं. इन्द्र जी के तत्त्वावधान में हुआ तथा इसमें वेश परिवर्तन की भी आज्ञा थी। स्कूलों तथा कालिजों में खेले जाने वाले हिन्दी नाटकों में यह सबसे पहला नाटक है। बाहर सब जगह अंग्रेज़ी का प्राधान्य था। अतः उनके लिए यह आवश्यक था

कि वे हिन्दी में नाटक खेलने की परवृत्ति का श्रीगणेश करते। हिन्दी की ओर सब स्कूल और कालिज उस समय उपेक्षा से देखते थे। इसके अतिरिक्त उन दिनों हिन्दी में अच्छे नाटकों का अभाव था। श्री. द्विजेन्द्रलालराय के नाटकों के अनुवाद अभी तक प्रकाशित नहीं हुए थे। 'भारतदुर्दशा' के बाद गुरुकुल में बद्री नारायण चौधरी का 'चन्द्रगुप्त' बड़ी सफलता से खेला गया। फिर तीन-चार वर्ष पश्चात् द्विजेन्द्रलालराय के एक-दो नाटकों का अभिनय भी सफलता से सम्पन्न हुआ।

कविदरबार-: कविदरबार नाटक का ही एक रूप है। उसमें नाटक की तरह कोई कथानक नहीं होता किन्तु किसी राजा के दरबार का दृश्य दिखाकर उसमें कवियों का प्रवेश कराया जाता है, जो अपनी कविताओं से श्रोतृवृन्द का मनोरंजन करते हैं। 'भोजप्रबन्ध' इसका उत्तम उदाहरण समझा जा सकता है। गुरुकुल में कविदरबार नाटकों से भी अधिक लोकप्रिय हुए और आजतक खेले जाते हैं। इसका यह कारण प्रतीत होता है कि ये गुरुकुल की परिस्थितियों के ज्यादा अनुकूल हैं। नाटक में प्रायः शृंगार रस और स्त्रीपात्र होते हैं जो कि ब्रह्मचारियों के लिए अच्छा नहीं समझा जाता, किन्तु कविदरबार में तो इस तरह पात्रों का चुनाव अपने हाथों में

होता है। अतः हिन्दी में कविदरबार का अभिनय मध्यकाल में भी और आधुनिक काल में भी होता चला आ रहा है। यद्यपि संस्कृत में पिछले दो-तीन वर्षों से श्री पं. वागीश्वर जी के बनाये हुए 'वाग्कौतुकम्', 'विदुषद परिषद्' आदि नाटक खेले गये हैं; परन्तु हिन्दी में कविदरबार ही होते हैं। कवि सम्मेलन और नाटक की तरह से यह भी गुरुकुल से बाहर गया है। श्री पं. जयचन्द्र जी विद्यालंकार ने अट्ठारहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर एक कविदरबार का अभिनय कराया और लोगों ने उसे बहुत पसन्द किया। पिछले साल लाहौर की प्रदर्शनी में श्री पं. चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार की ओर से एक कविदरबार का विशाल आयोजन किया गया। लाहौर की प्रतिष्ठित जनता उसमें सम्मिलित हुई और वह अधिवेशन बहुत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इन घटनाओं से स्पष्ट है, कि आज जनता स्वभावतः आप ही कविदरबारों की प्रथा का श्रीगणेश कर रहे हैं।

<u>अन्य साहित्यिक सम्मेलन</u> —: "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता", यह प्रतिभा का एक प्राचीन भारतीय लक्षण है। नयी २ बातें ढूंढ निकालना ही प्रतिभा है। उस समय वाग्वर्धिनी सभा की बागडोर ऐसे ही प्रतिभा सम्पन्न उपाध्यायों के हाथों में थी।

इन दिनों और नये सम्मेलनों की सृष्टि की गयी। साहित्य के एक आचार्य के मत में रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द ही काव्य है और रमणीयता प्रतिक्षण परिवर्तन का नाम है। "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः"। इस काल के सभा के सदस्य वादविवादों तथा व्याख्यानों से उकता गए। सदा नवीनता, परिवर्तन और रमणीयता की खोज में लगे रहते थे। 'नव रस सम्मेलन' उन्हीं दिनों की सूझ थी। इसमें भिन्न २ विद्यार्थी वीर-हास्य-शृंगारादि नव रसों का प्रतिनिधित्व किया करते थे। गल्प रचना का कार्य भी शुरू हो गया था। सबसे पहले गल्प-सम्मेलन में हम इन गल्पों का उल्लेख पाते हैं। सन् १९१८ में पहला हिन्दी-साहित्य सम्मेलन मनाया गया। ऐसा कहा जाता है कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन शुरू करने का श्रेय वाग्वर्धिनी को नहीं पर साहित्यसंजीवनी को है। प्रारम्भ में यह उसी का सम्मेलन समझा जाता था। परन्तु पीछे से वाग्वर्धिनी ने इसे अपना लिया।

<u>राजनैतिक विशेषाधिवेशन</u> — गुरुकुल में राजनीतिक इतिहास कुछ कहा जा सकता है परन्तु कई वर्षों तक सरकार इसे एक राजद्रोही संस्था समझती रही। सरकार के गुप्तचर रिपोर्टरों ने यज्ञशाला के नीचे बमों के कारखाने का पता लगाया था और उनका भेद लेने के लिए नाना रूप धारण कर गुरुकुल में आया करते थे। गुरुकुल में कई वर्षों तक सरकारी आपत्ति के काले बादल मंडराते रहे।

उस समय राजनीति पर बहस करना खतरे से खाली नहीं था। अतः उस समय राजनीति की चर्चा बहुत कम थी। परन्तु संयुक्त प्रान्त के गवर्नर श्री. मेस्टन तथा भारत के वायसराय श्री. चेम्सफोर्ड की एतिहासिक गुरुकुल यात्रा के बाद गुरुकुल पर से राजद्रोह का संशय जाता रहा तथा राजनैतिक चर्चा करने में कोई खतरा न रहा। सन् १९१९ की अमृतसर कांग्रेस ने विद्यार्थियों को बहुत प्रभावित किया। जलियांवाले बाग का नृशंस हत्याकांड पाषाण हृदयों को भी द्रवित करने वाला था। अमृतसर कांग्रेस के समय कुलपिता का निर्भीक नेतृत्व कुल के ब्रह्मचारियों में नवीन स्फूर्ति और जागृति पैदा करने वाला था। इसी वर्ष से वाग्वर्धिनी सभा की ओर से शान्ति-महासभा का अधिवेशन मनाया जाना शुरू हुआ। इसके पहले सभापति सम्भवतः श्री. विनायकराव जी विद्यालंकार थे।

सन् १९२१ में महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश में सत्याग्रह संग्राम छिड़ गया। देश में अभूतपूर्व जागृति की लहर दौड़ गई। वाग्वर्धिनी भी उस लहर से प्रभावित न रह सकी। साहित्यिक वातावरण की प्रधानता धीरे २ लुप्त होने लगी। राजनैतिक वातावरण बढ़ने लगा।

भारत शान्ति महासभा — सन् १९२३ में 'भारत-शान्ति महासभा' का अधिवेशन हुआ। यह एक अनोखे ही ढंग का

अधिवेशन था जो फिर कभी नहीं हुआ। राष्ट्र संघ की शान्तिमहासभा (लीग कॉन्फ्रेंस) की नकल पर यह अधिवेशन किया गया। भिन्न २ ब्रह्मचारी इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, टर्की आदि देशों के राजदूत बनकर आये तथा उन्होंने शान्तिमहासभा के सामने अपने २ देश का 'केस' रखा। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को समझने का इससे अच्छा ढंग क्या हो सकता है?

निर्वाचन — इसी वर्ष केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के लिए एक निर्वाचन भी हुआ। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को निर्वाचनों की क्रियात्मक शिक्षा देना था। इसमें बाहर के निर्वाचनों की हूबहू नकल की गयी। भिन्न २ दलों की ओर से उम्मीदवार खड़े किये गये। ये प्रतिदिन अपने दल की समर्थन वाले मतसंग्रह की कोशिश करते थे। मतदाताओं की सूची, सम्मतिपत्र, निर्वाचनस्थल (पोलिंग स्टेशन) बिल्कुल बाहर के निर्वाचनों की तरह तैयार किये गये थे।

अदालत — सन् १९२८ में गुरुकुल में प्रथम बार 'अदालत' का अभिनय हुआ। इसमें श्री अंगिराजी पर एक राजनैतिक अभियोग चलाया गया। गुरुकुल का दृश्य इलाहाबाद का सैशन-कोर्ट रखा गया। जज के पद पर श्री विश्वनाथ जी थे। सम्राट् की ओर से एडवोकेट जनरल श्री. प्रो. मदनलाल जी बनाये

अपराधी की ओर से वकालत करने वालों में मुख्य वकील स्वर्गीय श्री आचार्य रामदेव जी थे। उस अधिवेशन की रोचकता और सफलता का इसी बात से अनुमान किया जा सकता है कि - अदालती-कार्यवाही ४½ घण्टे तक चलती रही किन्तु दर्शकों की उपस्थिति आदि से अन्त तक वैसी ही बनी रही।

इसी वर्ष 'गोलमेज़-परिषद्' की भी एक बैठक बुलाई गयी। इसी वर्ष देश के भिन्न २ भागों में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए। महात्मा जी ने उपवास रक्खा तथा साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिए एक एकता-सम्मेलन बुलाया गया। इसी के अनुकरण पर वाग्वर्धिनी सभा ने भी एक एकता सम्मेलन की बैठक की।

<u>असेम्बली</u> - सन् १९२४ में गुरुकुल में केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद्' (सैण्ट्रल असेम्बली) का पहला 'अधिवेशन' किया गया। अधिवेशन चार भागों में विभक्त था। शपथ ग्रहण, सभापति का चुनाव, वायसराय का भाषण तथा बहस। वायसराय का कार्य स्वर्गीय श्री आचार्य रामदेव जी ने किया। सभापति के आसन पर श्री पं. धर्मदत्त जी बैठे। नये सभापति श्री कृष्णदत्त जी चुने गये। काकोरी डकैती के सम्बन्ध में बरती जाने वाली सख्ती नीति कमेटी-कमेटी की रिपोर्ट पर बहस हुई। विभिन्न विषयों पर

समाज के प्रश्न भी पूछे गये। सन् १९२६ में भी [illegible] का अधिवेशन किया गया।

इन राजनैतिक अधिवेशनों के वर्णन से यह न समझ लेना चाहिए कि आर्यसमाज की सर्वथा उपेक्षा कर दी गई थी। इन वर्षों में आर्यसामाजिक विषयों पर भी खूब दिलचस्पी ली जाती थी। प्रायः प्रतिवर्ष सम्मेलन की एक बैठक हुआ करती थी। इसमें वैदिक धर्म की उन्नति तथा वैदिक धर्म के प्रचार के उपाय सोचे जाते थे।

<u>अन्य अधिवेशन</u> — उपरोक्त साहित्यिक, राजनैतिक और सामाजिक अधिवेशनों के अतिरिक्त प्रतिस्पर्धा वाद-विवाद हुआ करता था। बाहर से आने वाले मान्य अतिथियों के व्याख्यान भी हुआ करते थे। तुलसी जयन्ती, प्रताप जयन्ती आदि जयन्तियाँ भी उत्साह से मनाई जाती थीं। सत्रान्तावकाश के पश्चात् जब ब्रह्मचारी लोग सरस्वतीयात्राओं से लौटते हैं तो 'अनुभव सभाओं' में वे अपने दृष्टिकोण से अनुभव सुनाया करते हैं। आजतक [illegible] चलता आता है। परन्तु अनुभव सभा का पहला उल्लेख सन् १९२५ की कार्यकारी पंजिका में मिलता है।

<u>हिन्दी साहित्य मण्डल का जन्म</u> — सन् १९२४-२५ में

वाग्वर्धिनी सभा की ओर से गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर कविता-गल्प सम्मेलन किये गये। यह सम्मेलन बहुत सफल हुए। ब्रह्मचारियों की इच्छा थी कि ऐसे सम्मेलन अधिक से अधिक किये जायें। पर वाग्वर्धिनी सभा को अपने राजनैतिक अधिवेशनों से ही अवकाश न था। अन्त में यह सोचा गया कि साहित्यिक अधिवेशन कराने के लिये एक पृथक् संस्था का निर्माण किया जाय। सन् १९२५ में लखनऊ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एक प्रस्ताव द्वारा गुरुकुल के साहित्यिक वातावरण बढ़ाने के लिए वाग्वर्धिनी सभा के आधीन 'हिन्दी-साहित्य-मण्डल' की स्थापना की गयी। इसके पाक्षिक अधिवेशन होते थे। इनमें उच्च-कोटि की कवितायें, गल्पें और प्रहसन पढ़े जाते थे। इसकी कई बैठकों का सभापतित्व समालोचक प्रवर पं. पद्मसिंह जी शर्मा ने किया।

<u>पत्रिकायें</u> - इन सालों (?) में वाग्वर्धिनी का पत्र 'राजहंस' बराबर निकलता रहा। उसका सम्पादन उच्च-कोटि का था। सम्पादकीय टिप्पणियों का अंश बहुत अधिक होने लगा। कई २ बार यह ८० पृष्ठ तक भी जा पहुँचता था। 'राजहंस' के इन काल के अंक अकस्मात् खो जाने से उसके विषय में इससे अधिक कुछ कहना कठिन है। उन दिनों अन्य भी बहुत सी हस्तलिखित पत्रिकायें- 'महाविद्यालय-दैनिक',

'विशाल', 'आयुर्वेद', 'आजकल', 'विजय वैजयन्ती', 'आर्य सिद्धान्त', 'देवगोष्ठी', 'कॉलिज यूनियन', आदि पत्रिकाएं निकलती थी। इनमें कई तो भिन्न २ सभाओं द्वारा संचालित थीं तथा कई वैयक्तिक पत्रिकाएँ थीं। गुरुकुल के सामाजिक-जीवन में प्रारम्भ से ही दो प्रकार की पत्रिकाएँ पाई जाती हैं। कुछ तो सभाओं के साथ सम्बद्ध हैं जैसे 'राजहंस', 'देवगोष्ठी', 'कॉलिज यूनियन'। सभाओं के साथ जुड़ा होने से ये दीर्घजीवी होती हैं। जब तक सभा चलती रहती है तब पत्रिकाएँ भी किसी न किसी तरह चलती रहती हैं। कई पत्रिकाएँ वैयक्तिक थीं। इनमें इस काल की पत्रिकाएँ 'महाविद्यालय दैनिक' और 'विजय वैजयन्ती' हैं। इनके पत्रिकाओं में वैसी स्थिरता और सातत्य नहीं रहता। १४वीं का विद्यार्थी जब गुरुकुल छोड़ने लगता है तो वह अपने मित्रों या जिसे योग्य समझता है उस व्यक्ति को पत्रिका का कार्य सौंपता चला जाता है। उस व्यक्ति पर सभा के मन्त्री की तरह से पत्रिका प्रकाशित करने की कोई बाध्यता नहीं है। उत्तराधिकारी योग्य और उत्साही हुआ तो पत्रिका चलती रहती है, नहीं तो जल्दी ही खत्म हो जाती है। परन्तु इनमें अपनेपन की भावना अधिक होने से प्रायः इनका सम्पादन उच्च कोटि का होता है। इन पत्रिकाओं में प्रायः बहुत अधिक संघर्ष चलता रहता है। इस काल की पत्रिकाओं का सम्पादक लेखों, कवियों, समालोचकों

तथा सम्पादकीय लेखों की दृष्टि से उच्च कोटि का था। मध्युग शताब्दि के अन्त में हस्तलिखित पत्रिकाओं की प्रतियोगिता में "आर्यसिद्धान्त" को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हुआ था। इन पत्रिकाओं का इतिहास बहुत रोचक है; किन्तु यह हमारा विषय नहीं है।

<u>मध्यकाल का सिंहावलोकन</u>-: सन् १९१८ से १९२६ तक की दशाब्दि वाग्वर्धिनी का स्वर्णयुग है। इस समय में साहित्यिक, राजनैतिक और आर्यसामाजिक क्षेत्रों में इसने अभूतपूर्व उन्नति की। नये 2 विशेषाधिवेशनों का जन्म हुआ। यदि सन् १९१५ का वाग्वर्धिनी का कोई सदस्य १० साल बाद १९२५ सन् में गुरुकुल में आता तो उसे सभा के अधिवेशनों में, वाद-विवाद के विषयों में तथा सभा-सम्बन्धी कार्यों में महान भेद लगता। इस सारी दशाब्दि में सभा को लगातार बहुत उत्साही और लगन वाले मन्त्री मिलते रहे। सदस्यों में भी सभा के लिए बहुत उत्साह था। मंत्रियों के सदस्यों का पूरा सहयोग प्राप्त होता रहा। प्रतिवर्ष जन्मोत्सव, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, राष्ट्र-महासभा, कविता तथा गल्प सम्मेलन, प्रताप तथा तुलसी आदि की जयन्तियें धूम धाम से मनायी जाती रहीं। इनके अतिरिक्त अदालत, व्यवस्थापिका परिषद, गोलमेज परिषद् के अधिवेशन भी प्रतिवर्ष किये जाते थे। वाद विवादों का "स्टैण्डर्ड" बहुत ऊँचा था। इनकी

उन्नति का एक बहुत अच्छा प्रमाण पत्र सभा को प्रो॰ पी साइन् द्वारा नियुक्त आयुर्वेदिक कमीशन के प्रधान जस्टिस गोकर्णनाथ जी से प्राप्त हुआ। सभा के एक अधिवेशन में सम्मिलित होकर उन्होंने यह सम्मति प्रकट की कि यह सभा ऑक्सफोर्ड के डिबेटिंग क्लब से किसी प्रकार कम नहीं। महाविद्यालय के सामाजिक-जीवन में वाग्वर्धिनी के मन्त्री का एक महत्वपूर्ण स्थान था। वह विद्यार्थी-वृन्द का नेता समझा जाता था। महाविद्यालय में सबसे प्रतिष्ठा का पद कुलमन्त्री का पद समझा जाता है। उन दिनों यह एक पद्धति (ट्रैडिशन) सी बन गई थी कि वाग्वर्धिनी का मन्त्री ही कुलमन्त्री बना करता था।

<u>आधुनिक काल</u> —: १९२७ से १९३९ तक का समय आधुनिक-काल कहा जा सकता है। गुरुकुल की रजत-जयन्ती के साथ वाग्वर्धिनी सभा का आधुनिक-काल प्रारम्भ होता है। रजत जयन्ती के अवसर पर वाग्वर्धिनी सभा की ओर से एक "अन्तर्विश्वविद्यालय वादविवाद सम्मेलन" का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन का उद्देश्य सारे राष्ट्रीय-शिक्षणालयों को एकता के सूत्र में पिरोना था। प्रत्येक विश्वविद्यालय को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। जिस विश्वविद्यालय के प्रतिनिधियों द्वारा प्राप्त अंकों का योग सबसे अधिक हो उस विश्वविद्यालय को विजय-सूचक "श्रद्धानन्द-चलविजयोपहार (श्रद्धानन्द रनिंग ट्रॉफी) देने की

व्यवस्था थी। पहले दो वक्ताओं के लिए स्वर्ण-पदक थे। पहले "अन्तर्विश्वविद्यालय वादविवाद सम्मेलन" में काशी विद्यापीठ, जामिया-मिलिया, गुरुकुल वृन्दावन और गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। काशी विद्यापीठ के प्रतिनिधि विजयी रहे। जयन्ती के वर्ष से यह सम्मेलन सभा की ओर से प्रतिवर्ष गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर किया जाता है। परन्तु खेद से लिखना पड़ता है कि या तो इसमें बाहर के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि आते ही नहीं और यदि आते हैं तो बहुधा इनाम भी ले जाते हैं। कई बार तो बाहर का एक प्रतिनिधि भी नहीं आता और सम्मेलन स्थगित करना पड़ता है। इस वर्ष सभा की ~~स्वर्ण~~ स्वर्ण— जयन्ती के अवसर पर मन्त्री के अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी बाहर की किसी संस्था का कोई प्रतिनिधि नहीं आया और अन्त में लाचार होकर सम्मेलन का विचार ~~[illegible]~~ छोड़ना पड़ा। प्रारम्भ में इस वादविवाद सम्मेलन का जो उद्देश्य था अब वह नहीं रहा। अब गैरसरकारी एवं सरकारी सभी विश्वविद्यालयों को निमन्त्रण भेजे जाते हैं। उनके प्रतिनिधि न आने का भी एक कारण है। जिन दिनों गुरुकुल का उत्सव होता है उन्हीं दिनों बाहर के विश्वविद्यालयों की परीक्षाएँ होती हैं। अतः उन दिनों बाहर के प्रतिनिधियों का आना असम्भव होता है। यदि इस सम्मेलन को ग्रीष्मावकाश के पश्चात् रखा जाय तो सफलता भी अधिक सम्भव है।

इसी समय गुरुकुल के विद्यार्थी बाहर के अन्तर्विश्वविद्यालयीय-वादविवादसम्मेलनों में भाग लेने लगे। सन् १९२८ में प्रथम बार वाग्वर्धिनी सभा की ओर दो विद्यार्थी हिन्दू-विश्व-विद्यालय की अन्तर्विश्वविद्यालय वादविवाद प्रतियोगिता में भाग लेने गये। सन् १९32 - 33 तथा 34 में वाग्वर्धिनी सभा के प्रति-निधियों ने लगातार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रतियोगिता में भाग लिया तथा 'हरिश्चन्द्र विजयोपहार' जीता। पहले और दूसरे वक्ताओं के पारितोषक भी प्राप्त किये। मेरठ कॉलिज के वादविवाद सम्मेलन में भी वाग्वर्धिनी के प्रतिनिधि विजयी रहे। दिल्ली, लखनऊ और इलाहाबाद के सम्मेलनों में भी वाग्वर्धिनी सभा ने अपने प्रतिनिधि भेजे।

नये राजनैतिक विशेषाधिवेशन -: सन् १९२८ में राष्ट्रीयमहासभा की अखिल भारतीय महासमिति के अनुरोध पर गुरुकुल में वाग्वर्धिनी सभा की ओर से अखिलभारतीय महासभा की एक बैठक बुलाई गई। सन् २८ में साइमन कमीशन की नियुक्ति का देश में घोर विरोध किया जा रहा था। उसमें एक भी भारतीय की नियुक्ति नहीं की गयी थी और तात्कालीन भारतमन्त्री लार्ड बर्कनहैड ने अपने इस कार्य का औचित्य सिद्ध करने के लिए यह कहा था कि भारत में हिन्दू-मुसलमान-ईसाई-

पारसी- अछूत आदि इतने विविध वर्ग हैं कि उनमें से सर्व-सम्मति से कोई एक प्रतिनिधि लिया ही नहीं जा सकता था। राष्ट्रीय महासभा ने इस दावे का जवाब देने तथा आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को प्रकाशित करने के लिये पहले बम्बई और दिल्ली में सर्वदल सम्मेलन की बैठक बुलाई गई। उसी की नकल पर गुरुकुल में भी एक सर्वदल सम्मेलन की बैठक हुई।

सन् १९२६ में दिल्ली की आर्य- कांग्रेस के अनुसार पर गुरुकुल में भी आर्यकांग्रेस की एक बैठक हुई।

<u>अन्य विशेषाधिवेशन</u>- इन अधिवेशनों के अतिरिक्त आधुनिक-काल में हम नूतनता का सर्वथा अभाव पाते हैं। उन्हीं पुराने विशेषाधिवेशनों की पुनरावृत्ति होती रहती है और वह भी अनियमित रूप से।

सन् १९२६ तथा २८ में व्यवस्थापिका ~~सभा~~- परिषद् के अधिवेशन हुए और इसके बाद फिर कभी नहीं हुए। १९३० और ३२ में अदालत का अभिनय हुआ। १९२८ के अधिवेशन से इन अभिनयों में एक ही विशेषता थी और वह थी- शाहजहाँपुर से वकीलों का बुलाना। कविसम्मेलन के १९३२ और १९३६ में दो अधिवेशन हुए। १९३६ में यह अधिवेशन वाग्मिता की ही

शाखा - हिन्दी साहित्य मण्डल - जो कि उन दिनों गोष्ठी के नाम से प्रसिद्ध थी - द्वारा किया गया। कांग्रेस और निर्वाचन के अधिवेशन प्रायः प्रतिवर्ष होते रहे। 1936 में कई [illegible] बार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन किया गया। वार्षिकोत्सव पर कविता-सम्मेलन भी किया जाता रहा। श्री पं. चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार ने अपनी दिवंगत धर्मपत्नी के पुण्य स्मृति चिरस्थायी बनाये रखने के लिए 'प्रकाशवती पदक' के लिए पुष्कल धनराशि प्रदान की है। यह पदक प्रतिवर्ष सर्वोत्तम कवि को प्रदान किया जाता रहा है। गोष्ठी की ओर से कई कविता-गल्प सम्मेलन होते रहे। इन में पढ़ी जाने वाली कविताओं और गल्पों को परीक्षा-निर्णय के लिए हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकों के पास भेजा जाता है। प्रायः प्रतिवर्ष उत्सव के अवसर पर स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द जी, श्री श्यामबिहारी जी मिश्र, श्री बच्चन, श्री गिरीश, श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री हरिकृष्ण प्रेमी, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क आदि साहित्यकों को बुलाया जाता रहा। इन साहित्यिक-व्यक्तियों के आगमन का गुरुकुल के साहित्यिक वातावरण पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। गुरुकुल के उदीयमान कवियों और लेखकों को इस से बहुत प्रेरणा और उत्साह मिलता रहा है।

साधारण अधिवेशन — आधुनिक काल के

पूर्वार्द्ध में वादविवादों का 'स्टैण्डर्ड' बहुत ऊँचा रहा। हिन्दू
विश्वविद्यालय के अन्तर्विश्वविद्यालय सम्मेलन में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'
विजयोपहार को लगातार 3 वर्ष जीतने का उल्लेख ऊपर किया
दिया जा चुका है। परन्तु इस काल के उत्तरार्ध में वाग्वर्धिनी
अपनी यह पुरानी शानदार परम्परा कायम नहीं रख सकी।
निःसन्देह यह बात वाग्वर्धिनी सभा के लिए लज्जास्पद
है और हमें आशा है कि शीघ्र ही वह अपनी पुरानी परम्परा
को पुनः स्थापित करने में सफल होगी।

'राजहंस' तथा अन्य पत्रिकाएँ —: कहा जाता
है कि राजहंस वर्षाकाल में गंगा के कालिन्दी को छोड़कर
मोती चुगने के लिए मानसरोवर की ओर उड़ जाते हैं। सभा
का 'राजहंस' भी इसी प्रकार उड़ जाता रहा और कई महीनों
तक इसके दर्शन नहीं हुए। कई वर्षों में तो साल में एक
बार दो बार ही इसके दर्शन हुए। इसका सम्पादन भी पहले जैसा
उच्च कोटि का न रहा। 'राजहंस' के मुकाबले में अन्य पत्रिकाओं
का सम्पादन ऊँचे दर्जे का था। 1930 में सत्याग्रह संग्राम के
अपने प्राणों की आहुति देने वाले भाई सर्वजित जी की पुण्य-
स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए 'सर्वजित' नामक
पत्र का जन्म हुआ। यह पाक्षिक पत्र बहुत नियमितता से

निकलता रहा। इस पत्र में राजनीति की प्रधानता था और देश की राजनैतिक - समस्याओं पर विचारपूर्ण लेख तथा सम्पादकीय टिप्पणियाँ हो जाती थीं। पर पत्र वैयक्तिक था। अतः इसका भी वही हाल हुआ जो पहले 'महाविद्यालय वैदिक', 'विजयवैजयन्ती' आदि वैयक्तिक पत्रों का हुआ था। सन् १९३५ में एक अयोग्य उत्तराधिकारी के हाथों में पड़कर इस उपयोगी पत्र का अन्त हो गया। पर प्रसन्नता की बात है कि 1936 के अन्त में कुछ उत्साही स्नातकों ने फिर इसका पुनरुत्थान किया और अभी तक यह प्रकाशन होता आ रहा है। १९३५ में ही महाविद्यालय में एक नयी साहित्यिक पत्रिका 'शारदा' का जन्म हुआ। इस पत्रिका की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। जिसने भी इसे देखा है इसकी दिलखोल कर तारीफ़ की है। परन्तु- और यह परन्तु लगाते हुए हमें दुःख हो रहा है- हमें आशंका है इस वैयक्तिक पत्र का भी वही हालत न हो जो अन्य वैयक्तिक पत्रों की हुई है। 'राजपुत्र', 'माधव' और 'इन्दु' के भी अन्तिम अन्तिम पृष्ठों में कभी 2 दर्शन होते रहे। "आयुर्वेद" का विशेषांक भी बड़ी सजधज से निकलता आ रहा है।

आधुनिक काल का सिंहावलोकन - कार्यकारिणी का यह काल मध्यकाल जैसा शासन काल नहीं है। इसमें - कार्यकारिणी के मंत्री की वैसी ऊँची स्थिति नहीं रही। सदस्यों में

सभा के प्रति उदासीनता पैदा हो गयी। मन्त्रियों को प्रायः सदस्यों से सहयोग न मिलने की शिकायत होती रही। नियमित अधिवेशन करने में आलस्य और उपेक्षा होने लगी। आधुनिक काल में कई ऐसे भी सत्र आये हैं जिनमें सभा के केवल तीन या चार अधिवेशन हुए हैं। एक सत्र तो ऐसा भी गुजरा है जिसके एक भी अधिवेशन की रिपोर्ट नहीं मिलती। ऐसी शोचनीय अवस्था के लिए मन्त्री तथा सदस्य दोनों ही दोषी हैं। सम्भवतः प्रत्येक सदस्यों का है। उनमें कई का सभा के लिए उत्साह ही नहीं रहा। हाँ एक ऐसे समय का अच्छी तरह स्मरण है। मन्त्री ने कई बार सभा का घंटा बजाया। मन्त्री और उपमन्त्री एक २ करके सदस्यों को बुलाने के लिए गये। सभास्थल पर दरी बिछी हुई थी। मेज-कुर्सी लगी हुई थी। परन्तु आधा घण्टे तक प्रतीक्षा करने के बाद भी मन्त्री और उपमन्त्री के सिवाय तीसरा सदस्य वहाँ नहीं पहुँचा। अधिवेशन आवश्यक होना था। अन्त में लाचार होकर मन्त्री ने उपमन्त्री को सभापति बनाया तथा उन सम्बोधनों से श्रोतृवृन्द को सम्बोधित करते हुए अपना भाषण शुरू किया — 'मान्य सभापति जी, बिछी हुई दरी तथा रखी कुर्सियो !'। एक बार चुनाव का मौका था। सभा शुरू हुई किन्तु जिस श्रेणी में से मन्त्री चुना गया था उस श्रेणी का एक भी सदस्य मौजूद न था। चुनाव किस प्रकार किया जाता ?

लगाना होता सभा स्थगित करनी पड़ी। तीन-चार बार सभा बुलाई गई, परन्तु इसी कारण स्थगित करनी पड़ी पड़ी। श्रेणी के एक २ सदस्य से प्रार्थना की गई पर कोई तैयार न हुआ। मामला आचार्य जी के पास पहुँचा। उन्होंने कहा यदि ऐसी हालत है तो सभा बन्द कर देनी चाहिए। दूसरे दिन सब ब्रह्मचारियों को बुलाया उन्होंने समझाया। बड़ी मुश्किल से एक सदस्य मन्त्री बनने को तैयार हुआ। यह दो वाक्य सदस्यों के 'अभूतपूर्व-उत्साह' का परिचय देने के लिए काफ़ी है.

यदि वाग्वर्धिनी सभा के इतिहास के इस कालमें ऐसे निराशाजनक वर्ष बीते हैं तो वाग्वर्धिनी के उज्ज्वलतम वर्ष भी इसी काल में हैं। हमने अनुमान १९१२ से १९३९ तक के मन्त्री, उपमन्त्री तथा अधिवेशनों की एक तालिका तैयार की है। १९२२ तक यह बहुत अधूरी है परन्तु पिछले सोलह वर्षों के अधिवेशनों का इसमें पूरा उल्लेख है। इस तालिका पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वाग्वर्धिनी के सबसे अधिक अधिवेशनों के वर्ष इसी कालमें पड़े हैं। १९२८ का वर्ष कुल अधिवेशनों की दृष्टि से सर्वोत्तम वर्ष है। ४३ अधिवेशन किसी अन्य वर्ष में नहीं हुए। १९३८ के साल ने ५० अधिवेशनों से उस रिकार्ड तक पहुँचने का सराहनीय प्रयत्न किया है। १९२९, ३१ और २८ के वर्षों में

सन्तोषजनक प्रगति रही है। कार्यकारिणी का वर्ष ग्रीष्मकालीन और शरत्कालीन दो सत्रों में बंटा हुआ है। गर्मियों में ज्यादा अवकाश होने से अधिक अधिवेशन किये जा सकते हैं। सर्दियों के पढ़ाई का जोर होने से अधिवेशन अधिक नहीं होते। १९36-३८ के शरत्कालीन सत्र में सबसे अधिक अधिवेशन हुए। उन अधिवेशनों की संख्या २० है।

इस काल में आशा और निराशा, उत्साह और उदासीनता का अजीब मेल है। एक ओर ऐसे भी वर्ष हैं जिनमें कुल मिलाकर १० या १५ से अधिक अधिवेशन नहीं हुए। दूसरी ओर ऐसे भी वर्ष हैं जिनमें यह संख्या ५० तथा ५३ तक पहुँच गयी। हम चाहते हैं कि कार्यकारिणी के इतिहास में १९२८ और १९३६ जैसे वर्षों का बार २ आगमन हो - मन्त्री लोग इनसे भी अधिक अधिवेशन करना अपना लक्ष्य बनावें।

अन्त में कार्यकारिणी सभा के उज्वल भविष्य की शुभकामना करते हुए सभा के इस संक्षिप्त इतिहास को समाप्त करते हैं।
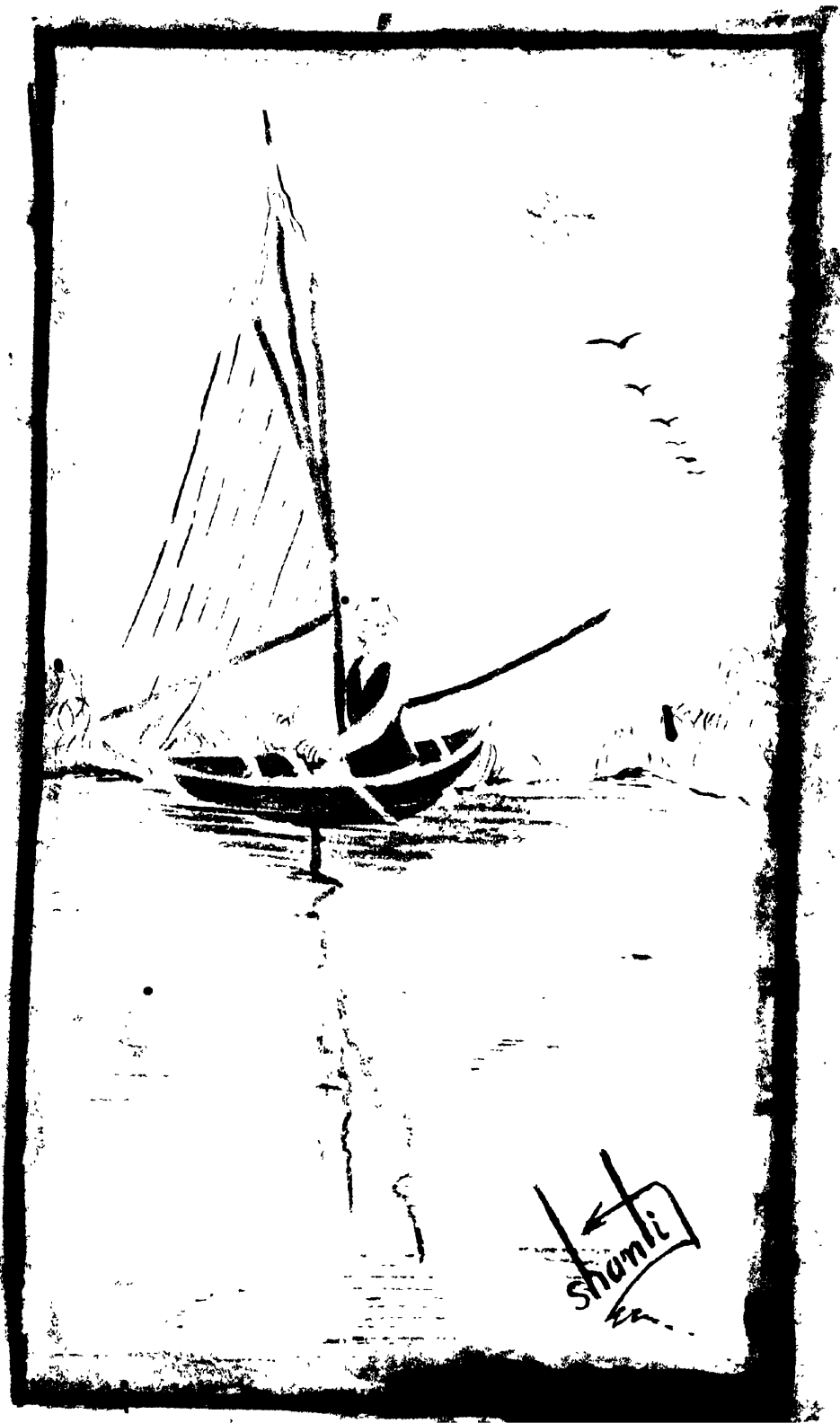
सम्पादकीय-

चिट्ठी-पत्री

श्री सम्पादक जी,

नमस्ते।

आप राजहंस का इस साल का पहला २ अंक निकालने जा रहे हैं, यह जान कर दिल को कुछ तसल्ली हुई; धन्यवाद।

मैं आपको क्या लिखूँ? इस समय तो मेरे दिमाग में केवल एक ही तरह के विचार काम कर रहे हैं; वही लिखे देता हूँ। वह यह कि, गुरुकुल को हिन्दी भाषा का केन्द्र किस तरह बनाया जाय।

यद्यपि आपका पत्र विशुद्ध साहित्यिक है, और मुझे ऐसे पत्र में किसी आन्दोलन को खड़ा

करने के लिये प्रेरणा करना उचित नहीं प्रतीत होता, फिर भी, जब 'सर्वमित्र' जैसे आन्दोलन कारी पत्र ने अपना रवैय्या बदल कर साहित्यिक क्षेत्र को अपना लिया है, तो आपको भी अपने पत्र के विशुद्ध साहित्यिक रवैये को बदल कर आन्दोलन करने के रवैये को अपना लेना बुरा नहीं होगा। इस लिये मैं समझता हूँ, आपको भी मुझ अनुकूल भी हिन्दी को उन्नत करने के संबन्ध में कुछ प्रेरणाएँ करनी ही चाहिये। मुझे विश्वास है, आप मेरे पत्र को अपने सामान्य साहित्य में स्थान देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

देखिये, जब हम कहते हैं कि, हिन्दी भाषा की उन्नति होनी चाहिये, तो इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि, हिन्दी के व्याकरण का क्रियात्मक ज्ञान बढ़ जाना चाहिये। व्याकरण की दृष्टि से तो हम लोगों की भाषा शुद्ध होनी ही चाहिये; लेकिन

भाषा वधिए का दूसरा ही अभिप्राय है, वह यह कि, उस भाषा के अंदर, नवीन २ भावों की सृष्टि करके, उन्हें व्यक्त करने के वास्ते नवीन २ चुस्त से चुस्त शैलियों का विकास करना। अभिप्राय यह है कि, मौलिक साहित्य - और वह भी ऐसा साहित्य, जो कि चिरंतन काल पर्यन्त जीवित रह सके - लिखा जाने और लिखने के जो तरीके हैं, वे अप-टु-डेट हों।

यों तो गुरुकुल से बाहर भी हिंदी जगत में मौलिक साहित्य की नवीन सृष्टि बहुत दीर्घ वेग से हो रही है, और ऐसा साहित्य जो अमर हो, बहुत ही कम देखने में आता है। भावों को व्यक्त करने के नये २ तरीकों का आविष्कार अब कुछ २ शुरू हुआ है; पर अभी हमें संतोष नहीं है। लेकिन

हम पूछते हैं, इस दिशा में हमारा गुरुकुल क्या कर रहा है? आजकल, या तो बाहर की रचनाओं या शैलियों की नकल चलती है, या फिर अपनी पुरानी रूढ़िबद्ध पिसाई रीतियों का आश्रय लिया जाता है।

यह स्थिति, गुरुकुल के स्वतंत्र, संसार और बाहर की अपेक्षा अधिक उन्नत वातावरण का अपमान है।

मैं तो जहाँ तक अपनी अक़्ल दौड़ाता हूँ, मुझे यही लगता है कि, हम लोगों को हिन्दी भाषा के क्षेत्र में अगुआ बनना चाहिये। हम बचपन से एक विशिष्ट हिन्दी भाषा के वातावरण में पले हैं, क्या उसका इतना भी फ़ायदा न हो कि, हम बाहरवालों की अपेक्षा कई गुना उत्कृष्ट साहित्य शारदा देवी के श्री-चरणों में उपस्थित कर सकें?

आपका
अनन्त [illegible]

अरेली
नववर्ष ४०

श्री· सम्पादक जी,

नमस्ते।

आपका 'खाली प्याला' लिये हुए पत्र आया तो पहले मैंने यही समझा कि आप लोगों के साथ जो मेरा एक बन्धुत्व का स्नेह-पूर्ण सम्बन्ध हो गया है उसे आज याद दिलाना चाहते हैं, किन्तु जब साथ के टिकट भी देखा तो मैं हैरान हो गया। अब तो बचाव का कोई भी ठिकाना नहीं। किन्तु क्या आपके मुझे अब भी

कृष्णमन्दिर का बन्दी ही समझा हुआ है – जिसे कागज़ नहीं मिल सकता, कलम-दवात नहीं मिल सकता और टिकट भी नहीं मिल सकता! सच पूछिये तो टिकट भेजकर आपने अपना पक्ष कमज़ोर कर लिया है। This does not becomes you.

आज सवेरे जब उठा और मुझे ख्याल आया कि आज एक जनवरी है – वर्ष का प्रथम दिवस है, तो सहसा ही मेरे मुख से निकल पड़ा – "यह लो अपना वर्ष संभालो।" यह वर्ष मैं किसको संभलवा रहा हूँ, यह तो मैं नहीं जान पाया, किन्तु इतना स्पष्ट है कि यह वर्ष मेरे लिये "पर्ई पुस्तक" की तरह है – जिसको मैं अपने से बिलकुल अलग समझता हूँ: क्योंकि पुष्कर-अजमेर में उसकी गिनती नहीं है। अलबत्ता यह बात remarkable है कि फिर भी न जाने क्यूँ किस प्रकार वह जीवन के साथ इतना एकाकार होता गया है कि दुनियाँ के बिना जाने ही और मेरे भी बिना जाने ही, वह चुपचाप रोज़ आयु में एक एक दिन बढ़ा रहा है। हाँ, बढ़ता ही रहा है'– दुनिया का कहने का ढंग यही है। पर सच पूछो तो ज़िंदगी का वह बढ़ा हुआ एक-एक दिन निर्मम मृत्यु को हमारे निकट खींचता चला आता है। इसलिए कहना यही चाहिए वह एक-एक दिन बढ़ाता नहीं, घटाता रहता है। इस बुढ़ापे की पीठ पर जितने दिन तक मैंने इस लघु जीवन का बोझ संभाला था, उसमें से

३६५ दिन का बोझ कम हो गया – अब उतरे हुए बोझ को ही मैं इस रूप में कह रहा हूं – "यह लो अपना वर्ष संभालो"!

– और यह ध्यान रखना कि यह किसी कविता की पंक्ति नहीं है। क्योंकि कविता मैं नहीं लिखता, न ही करूँगा। और करूँगा क्यों नहीं, सो इसका भी रहस्य बताता हूँ।

– कहना चाहो तो कह सकते हो कि आजकल के कवि इतने ऊँचे चढ़ गये हैं कि उन्होंने शब्दा-वलि को आसमान बना दिया है। पर मैं तो निष्पक्ष द्रष्टा के रूप में – यही कहना पसन्द करूँगा कि कवियों ने – आजकल के शब्दों को इतना नीचे गिरा दिया है कि उनके अर्थों का कोई महत्व ही नहीं रहा है। जो चीज़ बाज़ार में बेचने के लिए लाई जाती है – उसकी बाज़ारू कीमत भले ही बढ़ जाय, किन्तु मेरे ख्याल में उसके स्रष्टा की दृष्टि में वह चीज़ अपना महत्व खो बैठती है क्योंकि तब उसमें वह पवित्रता नहीं रह पाती। सच तो यह है कि तब reality हमेशा morality खतम कर लेती है। इस-लिये मैं अपने मित्र से कहा करता था: 'इस भरा युग में मानव मानव भी किसी के पीछे रहने वाला नहीं है। क्योंकि योरुप में यदि बिजली जैसे, हवाई जीप, और टैंक और पनडुब्बियाँ और बड़े 2 डिस्ट्रायर ~~[illegible]~~ तैयार हो रहे हैं – और हर देश उनकी शक्ति के बूते पर अपने को सुरक्षित रखने की तथा शत्रु के नाश की आशा रख

सकता है तो भारत में इन सबके मुकाबले के लिये एक बड़ा गुण - आज दिन - दूनी रात - चौगुनी गति से तैयार हो रहा है - और वह गुण आज है "कविता"। तुलना करके देखलो - मैं झूठ कह रहा हूं या सच। गवर्नमेंट की वार्षिक रिपोर्ट में जो वर्ष भर में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की संख्या छपी है, उसे देखो। सबसे ज्यादा पुस्तकें हिन्दीभाषा में छपी हैं और उनमें भी 3/4 केवल कविताओं की हैं। शायद, यह महाकवि अकबर का असर है, जिन्होंने जानबूझकर हिन्दुस्तानियों के लिये 'फिट' बैठने वाली दवा का उपदेश दिया था -:

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो॥

X X X

आज नये वर्ष का पहला दिन है। पृथ्वी ने सूर्य की एक प्रदक्षिणा समाप्त कर ली है। आज लोगों में नया उत्साह होगा - नया जीवन। लोग नये वर्ष के उपहार भेजेंगे। शुभकामनाएं भेजेंगे और उन्हीं को पाने की आशा करेंगे। कोई कवि होगा तो कविता करेगा - कहेगा - "आज प्रकृति हंस रही है, तरु-लता नाच रही हैं, डाली 2 झूम रही है,

पहिले उच्चारण करता हूँ, शब्दों के अर्थ बदल गये हैं जिनका विशेष वस्तुओं का भाव पड़ता और मिलता रहता है अभी उन्हीं शब्दों का भाव भी पड़ता और मिलता रहता है। मैं जानता हूँ कि पहिले कभी-आँधी, तूफान, भूकम्प, बाढ़, प्रलय और सर्वनाश-स्वाहाकारी महामारी, अकाल आदि शब्दों के बोलते ही मन में, बैठी एक [?] सी छाती में चली जाती थी किन्तु आज देखता हूँ कि उनका उन से भी बड़े २ और भयानक शब्दों को कितनी जोर से क्यों न बोला जाय किन्तु मन पर वे इतने निर्भय, और कोई आग नहीं उगलते कि ये शब्द केवलमात्र शब्द हैं तथा उन शब्दों के अर्थ भी हैं पर वे अर्थ उतने ही सामान्य हैं जितने कि और शब्द तथा अर्थ। तीव्र से तीव्र गति तथा महान से महान परिवर्तन को लोग इन्हीं शब्दों के द्वारा व्यक्त करते हैं। — आँधी, तूफान, भूकम्प — और प्रलय —" पर ये शब्द कितने ओछे हैं। कितने सामान्य और कितने कम Expressive हैं ये शब्द।

किन्तु आज तो नववर्ष का प्रथम दिन है। और आज सवेरे जब मैं घूमने गया — नहर की पटरी पर — नहीं, भूल गया — रेल की रेल की पटरी पर, तो अचानक ही चौकी पर खड़े पहरेदार ने कहा — "बाबूजी! पटरी से बाहर हो जाइये।" मैंने पूछा — "क्यों?"

"क्यों, तो मैं नहीं जानता। पर यदि आपको विश्वास न हो तो यह 'आज्ञापत्र' देख लीजिये" — कहकर उसने अंग्रेजी में लिखा हुआ दिखाया — पहली जनवरी से 24 घंटे तक रेल की पटरी के फुटपाथ पर चलना मना है।

मैंने पूछा — "क्यों, क्या कोई अफसर आने वाला है?" क्योंकि मुझे पता था कि अगले सप्ताह के आस-पास स्वयं नाभा स्टेट के महाराजा साहब आरेली (इसी गाँव में) पधार रहे हैं — शायद उन्हीं के लिए यह care की जाती हो। पर उसने बताया, "नहीं, यह तो हरसाल जनवरी की पहली तारीख को किया जाता है, इसलिये कि यदि कभी अफसर आवे तो कोई यह नहीं कह सके कि मैं हमेशा इस फुटपाथ पर चलता रहा हूँ — और फिर इसी युक्ति से कानून बनाकर उसे वहां से हटाना मुश्किल हो जावे।"

मैंने सोचा — स्टेट की यह भी एक अजीब

Luxury है — एक दिन के लिए फुटपाथ बन्द! —
क्या उसकी भी चौंचले बाज़ी में गिनती है!

व सच तो, मुझे यह बात अखरती लगी। रियासतों व निजाम से ज़रा हुआ गुस्सा बढ़ गया। ये रियासतें — आजकल की परनिशीन बीबियाँ — और माता कस्तूरबा के शब्दों में — ये बीबियाँ ब्रिटिश साम्राज्य की चिता व सती होने के ही काम आवेंगी!

सोचो, जिन्होंने अब तक दुनिया को नायक और नायिकाओं के रूप में ही देखा है। जिनके लिये 'संगी - साथी - खाने - पीने और प्रेम!' इत्यादि सम्बोधनों के बाद दुनिया है ही नहीं; और जिन्होंने अपनी लेखनी से — अपनी वाणी से, किन्तु किसी को गाली देने - किसी की तारीफ करने और किसी की समालोचना के और कुछ किया ही नहीं; — वे ऐसी समस्याओं के समाधान के लिये क्या कला पसन्द करेंगे? और क्या तब उनकी दृष्टि अंधी नहीं हो जावेगी जब दुनिया का कठोर शीशा उनकी आँखों में चकाचौंध होगा!

X X X

मैं अब तक मजबूर करता हूँ - भाग चलो, भाग चलो - वहां, जहां अपनी जान पहचान का कोई न हो, कोई रिश्तेदार न हो, कोई नाता-सम्बन्धी न हो और वहां जाकर एक घर बनाओ — बिना ~~किवाड़~~ किवाड़ घर, बिना छप्पर का, उसमें रहो। और फिर आने दो आंधी! फिर आने दो तूफान! फिर आने दो प्रलय! — छाती खोलकर सामने अड़ जाओ।. आंधी-तूफान-प्रलय बीतेंगे, बीतेंगे! और यदि तुम अड़े रहो तो होंगे- होंगे- होंगे।

काश! भी मैं एक कल्पना लोक का प्राणी होता - जिसके एक हाथ में कलम होती और दूसरे में कागज़। फिर मैं आसमान में चक्कर-चक्कर दुनिया को देखता और अपनी कलम से उसका faithful Portrait कागज पर अंकित करता!

किन्तु, मैं हूँ दूसरी दुनिया में! एक गांव में, - रेगिस्तान, ऊंट, भैंस, गाय, बैल - दो कदम उधर निकल जाऊँ तो इधर निकल जाऊँ तो - दोनों ओर गुलाम। यहां वहां - शाह की महल-महल। यहां वहां फैशन। ---

सोचता हूँ - प्रेमचन्द्र और मैथिलीशरण -

गाँव के निवासी — आम्र कानन — भारतीय सभ्यता के प्रतीक — गायक — निरक्षर। और अब भी — मैं कहता हूँ कि, गाँव के चित्र को, दैनिक-जीवन के चित्र को पुस्तक में न पढ़ें पर, हम देखना पसन्द कर सकते हैं, पर अपने जीवन का अंग बनाना तो दूभर ही हो जायगा। यह क्यों? जो अपने आदर्शों में 'स्वप्नों का संसार लिये फिरते हैं' — उनके लिये यह एक कैसी विचित्र सी परिस्थिति है। विचित्र सी इसलिये कि जिस 'लिखने' को 'और पढ़ने' को तुम सबसे अधिक काम का समझते हो — वही यहाँ उतना ही फ़ालतू समझा जाता है जितना कि दुनिया में कोई भी चीज़ हो सकती है।

संक्षेप में — कल्पना लोक का प्राणी बनना असम्भव! असम्भव — और इसलिये आपकी कृति भी असम्भव!

हाँ, आपका 'खाली प्याला' यदि भैंस के दूध से भरा हो तो तैयार हूँ!

X X X

और आज जो आप नव वर्ष के उपहार की प्रतीक्षा कर रहे हैं — तो यदि आपको कोई भैंस का दूध ही उपहार में दे — तो क्या आप स्वीकार करेंगे? बताइये क्या स्वीकार करेंगे? क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप आशा करते हैं गाय के दूध की। किन्तु गाय का दूध तो पतला होता है? ऐसे ही आदर्श-वाद के — आदर्श से आप ऐसे ही प[illegible] बनते हो!

आपका बन्धु
[illegible]

"रामनाथ" स्मृतिमन्दिर
गुरुकुल कांगड़ी

श्री सम्पादक जी!

वन्दे!

साहित्य देवी के गिरते हुए गर्म आंसुओं के बाद आपका निमंत्रण पाकर हृदय प्रफुल्लित हो उठा। आपके द्वारा सम्पादित किये जाते इस नवीन आयोजन को देख मन नितरां प्रसन्न हुआ। इधर पिछले कुछ सालों से गुरुकुलीय सम्पादकीय क्षेत्र में कुछ अकाल सा रहा है, "संगीत" अपने पुष्कोत्तर गीतों के तरानों में न मालूम किस कल्पना प्रदेश में विचरण कर रहा है। "बुलबुल" की सम्पादन रजनी सम्भवतः खत्म हो गई है। "कविता" न मालूम क्यों एक अनन्त काल के लिए घने अन्धकार में विलीन हो गई है जबकि "सर्वहित"

नामक साप्ताहिक पत्र सामयिक जगत् के पिछले
दिनों भी अपने भिन्न २ उपयोगी, रोचक, ज्ञानपू-
र्ण निबन्धों से अपनी कीर्ति निबाहता रहा
है। जिसके लिए उसके सम्पादक श्री उमानेहरु
जी की लगन तथा अध्यवसाय प्रशंसनीय है।
इसके अलावा "दैनिकतारा" तो दो दिन तक
टिमटिमा कर रह गया। "Starry magazine"
शायद यूरोप के वर्तमान युद्ध से कागजों के
महंगे हो जाने के कारण बन्द कर दी गई।
अपना "राजहंस" भी पिछले दिनों मानसरोवर
के मोतियों के खाने को ही चला गया है-
"Ideal" का तो अधःपात सा होगया और .. पर
सब हो के न जबकि स्वधाम "शारदा" ने
भी अपने वरद हाथ उन सम्पादकों के सिरों
से उठा लिया। जब सम्पूर्ण-संसार-अव्यवस्थित

उन्नति की दौड़ में आगे बढ़ा चला जा रहा है तब अपने इन सम्पादक भाइयों की खामोशी, उनकी का लिखा बहुत सारगर्भ सिद्ध हो सकती है इसलिए हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास भी है कि यह खोयी हुई मण्डली जागेगी और फिर से अपने भाइयों में जीवन ज्योति का मंत्र फूंक जायेगी। मैं साहित्य ही जाति साहित्य जगत की जान है - इसीपर ही जातियों की सभ्यता निर्भर करती है और सभ्यता ही जाति के जीवन मरण का चिह्न है।

जब कि साहित्यिक संसार में धीरे 2 प्रकाश होने लगा है, "नागरिक" राजधान से निकलने की तैयारी कर रही है। "देवगोष्ठी" स्वर्णपुरी की कार्यकारिणी की रिपोर्ट प्रकाशित-करके जाती है- साक्षात "शारदा" अपनी वीणा

को कोई आशीर्वाद दे रही हूँ उपरान्त सर्वप्रथम
आपका "जिनेश" को लेकर उसके सौभाग्य की
बात है जिस उत्साह से आप लोग इन के
"जन्मोत्सवांक" का प्रकाशन करने जा रहे हैं.
मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास भी
है कि आप का यह सफल उत्साह प्रोत्साहन-
पूर्वक होता रहेगा।

शुभाशीष.
"प्रभा"

आयुर्वेद (जन्मोत्सवांक विशेषांक) :—

यह है 'आयुर्वेद' का जन्मोत्सवाङ्क ! इसे 'अङ्क' कहना तो वाजिब न होगा । यह एक पोथा है, बल्कि उससे भी बड़ा रजिस्टर सा । पृष्ठ संख्या ६७५ ।

हमारे कुल से कई पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं जिन्हें न मासिक न साप्ताहिक और न दैनिक ही कह सकते हैं । उन्हें सामयिक, अर्थात् समय समय पर प्रकाशित होने वाली – कहा जा सकता है । यह पत्रिका, हम कई सालों से देखते हैं, वार्षिक हो गई है जिसका हमें बहुत अफसोस है । हम आगामी सम्पादक मण्डल से आशा करेंगे कि इस पत्रिका को च्यवनप्राश या अशोकारिष्ट ऐसी कुछ दवा दें ताकि इसकी प्रसविनी शक्ति बढ़े,

और वर्ष में अधिक अङ्क (issue) प्रकाशित हो सके।

भारतवर्ष में आयुर्वेद सम्बन्धी पत्रिकाओं को क्या रूप मिलना चाहिए, यह अभी तक ठीक नहीं बन पड़ा है। अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं की भांति उन्हें भी रोचक एवं सर्वसाधारणसुबोध होनी चाहिए। पोथे के रूप में — जिसमें कई लेख पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद मात्र हैं — पत्रिका को निकाल देना हमें यह लिखने को बाध्य करता है कि यह पत्रिका के नाम पर अत्याचार है! Medical magazines के लिए, उनकी ठीक दिशा के लिए Health आदि अमरीकन पत्रों को देखना चाहिए। हमें आशा है यह 'आयुर्वेद' इस दिशा में भी पथ प्रदर्शन कर सकेगा।

शेष रही इस अङ्क की बात ... ।

इसका समर्पण खूब बन पड़ा है। जिनको समर्पित किया गया है वे भी इसके अत्यन्ततम योग्य हैं और समर्पण की शैली भी सराहनीय है। अच्छा, अब देखते हैं उनके हाथों में क्या सौंपा गया है? सारी पत्रिका आद्योपान्त पढ़ डाली है।

लेख आम तौर पर वैज्ञानिक होते हुए भी मौलिकता और रोचकता से शून्य हैं। फिर भी 'ज्वर के लाभ', 'साँपों की पहिचान' 'स्वास्थ्य संरक्षण' ये लेख गवेषणा और मौलिकता से लिखे गए दीखते हैं। शेष सब लेख 'सैद्धान्तिक' हैं। पत्रिका में लेखक की आत्मीयता आनी चाहिए – सैद्धान्तिक लेखों से ऐसा नहीं होता। हमें डर है ऐसे लेखों से पत्रिका का उद्देश्य कभी पूर्ण नहीं होता क्योंकि उसे पढ़ेगा ही कौन? हाँ लेखक महोदय अपने लेखों को अवश्य पढ़ें – कि प्रेस या प्रूफ रीडिंग की कोई गलती तो नहीं रह गई।

चित्रों की संख्या काफी है और वे सुन्दर, भावपूर्ण कलात्मक भी हैं।

कुछ कवितायें भी आई हैं जो सुन्दर हैं।

गल्प और कहानियों की स्थिति पत्रिका के योग्य है। इनसे दोनों कार्य पूरे होते हैं आयुर्वेद के और पत्रिका के। एतदर्थ लेखकों की योग्यता पर धन्यवाद दिया जा सकता है।

'सन्ध्या हवन से दीर्घ जीवन' डाक्टर

नित्यानन्द की बैठक में, भोजन सम्बन्धी विचार, जीवन सरसता, योनि रोग — ये लेख स्वास्थ्य-रक्षया अच्छे हैं। अपने कल्पनीय विषय को किस प्रकार प्रारम्भ करना, किस प्रकार deal करना, यह इन लेखकों ने ठीक दिखाया है।

साधारणतया पत्रिका उत्तम है। अंग-रेजी से घबराने वाले आयुर्वेद के छात्रों, तथा लेख के लेखकों के लिए संग्रहणीय भी है।

[परिशिष्ट अंश ५५० पृष्ठ पर] —"श्री कुमार"

—.

सर्वमित्र (स्वागतांक विशेषांक) —

१२० पृष्ठ का महाकाय लम्बे कुलचैन भगनों का यह अंक हमारे सामने है जो कि हैदराबाद सत्याग्रह से सफलता पूर्वक विजय प्राप्त कर लौटने वाले कुलबन्धुओं के स्वागत में निकाला गया है। इस अंक के एक २ सन्देश, लेख तथा कविता आदि भावपूर्ण हैं। भिन्न २ नेताओं के सन्देशों, तथा "कृष्णमन्दिर" की ओर .. इनके अंक का मूल्य बहुत बढ़ा दिया है। नवीन वैज्ञानिक तरीके के अनुसार इतिहासकी कविताओं का संग्रह तथा भावपूर्ण लेखों का चयन प्रशंसनीय हैं। इस सारे काम के लिए हम सम्पादक अशोककुमार का धन्यवाद दिये बगैर नहीं रह सकते —

"तारकिता" का प्रवेशांक :–

गत-वर्ष दिवाली के शुभावसर पर जगमगाते दीपकों के बीच जिसकी उत्पत्ति हुई थी, प्रतिभा सम्पन्न विचारकों के हाथों जो पाली गयी थी, वह "तारकिता" आज १२ मास के 'गुरुकुल-वास' के अनन्तर पूर्ण कलासंयुक्त होकर ज्योत्स्ना के रूप में हमारे सम्मुख आई है। पुरानी कवि-गोष्ठी की उपाधि-वश सहायता के अभाव में भी इस प्रकार निकल जाना श्री सम्पादक जी की उत्साहवती शक्ति और प्रतिभा की परिचायक है।

चलिए, उस को देखते हैं।

! सूची-पत्र नदारद। यह एक मौलिकता है। हिन्दी-संसार को नई चीज दी गई है। हिन्दी-संसार को इसके लिए चिर-कृतज्ञ होना चाहिए।

हाँ, एक बात समझ में नहीं आई यह 'प्रवेशांक' है या 'रामांक'। सम्पादकीय में इसका स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता है। प्रथम पृष्ठ पर लिखते हैं –

'तारकिता प्रवेशाङ्क' — । और दूसरे पृष्ठ पर - इस अंक का नाम " रामाङ्क " है । खैर कुछ हो फूल में रस तो है ही न । हमें नाम-ग्राम से क्या लेना । हमें तो मकरन्द-सन्दोह से वास्ता ।

इसमें सुन्दर सुन्दर गीत और भावपूर्ण विचार-धाराओं का अच्छा प्रवाह है । कई पदार्थों को मैंने चुन चुन कर पढ़ा है ।

कई लेखों के लेखकों का नाम प्रकाशित नहीं है । पत्रिका बहुत जल्दी में प्रकाशित हुई लगती है ।

सब कुछ जोड़ जाड़ कर पाठकों के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय भी है ।

'आयुर्वेद' का जन्मोत्सवाङ्क —

पीछे पत्रिका की General बातों पर हमने ध्यान खींचा था । पत्रिका के पीछे एक अनथक परिश्रम, एक प्राकृतिक कला और सौन्दर्य की अनुभव आभा है - भले ही यह सब उचित स्थान पर न दिया गया हो । फिर भी, उस कला ने अभाव को भी कितना सुन्दर बना दिया है ! इसके लिए सम्पादक महोदय की योग्यता की हम अत्यन्त सराहना करते हैं ।

— श्री [illegible]

सम्पादकीय

प्रिय पाठक गण,

आपकी सेवा में श्री·नागरिकी सभा का मुखपत्र 'राजहंस' का प्रथम अंक 'जन्मोत्सवांक' १९९६ का प्रकाशित हो गया है। इसे आज २८ वर्ष पूरे होते हैं। इसमें जितनी भी कृतियाँ हैं उसकी पसिन्दगी अथवा नापसिन्दगी आप पर ही निर्भर है। हमने इसे अपनी ओर से पूरी तरह अच्छे से अच्छा निकालने का प्रयत्न किया है। इस वर्ष जन्मोत्सवांक के साथ एक "परिशिष्ट अंक" भी निकाला गया है। यह अंक स्वर्गीय डॉ. रामनाथ की पुण्य-स्मृति में प्रकाशित किया गया है। इस अंक की प्रतीक्षा आपने जिस धैर्य के साथ की है वह सराहनीय है। यद्यपि इस वर्ष का यह प्रथम अंक है और आप सब भी इसके न प्रकाशित होने के कारण को जानने के लिए बहुत उत्सुक होंगे किन्तु तो भी मैं आप से साग्रह प्रार्थना करूँगा कि आप ऐसी किसी प्रकार की समालोचना न करेंगे जिससे इस पत्र को कोई हानि पहुँचे। आप लोगों

की सद्भावनाएँ उसके साथ पूर्ववत् जुड़ी रहें; इसकी मैं आशा करूँगा।

एक बात और - वह यह है कि इस अंक में एक मराठी-कविता "किति नयनरम्य ही धारा" प्रकाशित हुई है। बहुत से पाठक उस पर टीका-टिप्पणी अवश्य करेंगे - इसका मुझे पहले ही ज्ञान था। किन्तु मैं आप पाठकों से सविनय प्रार्थना करूँगा कि हमारी यह पत्रिका हिन्दी तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए। हमारा ज्ञान कुएँ के मेंढक की तरह सीमित नहीं होना चाहिए। एकमात्र हिन्दी भाषा को ही आद्य-समुद्र समझ लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी बहुत भाषाएँ विद्यमान हैं। अतः मैं गुरुकुल - शिक्षा प्रणाली के सदस्यों से सविनय प्रार्थना करूँगा कि वे "गुरुकुल महाविद्यालय" (आर्ट्स कॉलिज) में प्रान्तीय तथा बाहर (योरुप की प्रचलित भाषाएँ जिनका कि साहित्य बहुत ऊँचा है) भाषाओं को भी स्थान दें। हमें अपने उद्देश्य को भूल नहीं जाना चाहिए - "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"। अन्य भाषाओं की पुस्तकों को पढ़कर हमें क्रियात्मक रूप में परिणत करना चाहिए। अर्थात् उन्हें हम अपने सिद्धान्तों को उनकी भाषा में अच्छी प्रकार समझा सकें। अस्तु।

राजहंस

गुरुकुल की श्रीमती वाग्वर्धिनी सभा का इतिहास बहुत ही मनोरंजक है। और साथ ही लज्जास्पद भी है। जब हम एक सभा को चलाने में असमर्थ हैं तब हमें उसे बन्द ही कर देना आवश्यक है। यह शिकायत आम सुनने में आती है कि सभाएँ ठीक प्रकार से नहीं चल रही हैं। उनके लगातार ह्रास को देखकर मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि सभाओं का भविष्य अन्धकारमय है। और यही हालत पत्रिकाओं की भी है। हमें देखना यह है कि उन सभाओं के ठीक प्रकार न चलने का क्या कारण है? तथा साथ ही उन सभाओं से सम्बन्ध रखने वाली पत्रिकाओं की क्या हालत है?

आमतौर पर इसका सारा दोष मन्त्रियों - उपमन्त्रियों तथा सम्पादकों - उपसम्पादकों के सिर मढ़ा जाता है। प्रत्येक वस्तु की दो साइड्स होती हैं - १. चमकीला पार्श्व २. अन्धकारमय पार्श्व। दूसरों के सिर दोष मढ़ना कहाँ तक उचित है, इसे हम एक 'ताक' में रख देते हैं। हम यह नहीं देखते कि हमारा इसमें कितना दोष है। सभाओं के मन्त्री - उपमन्त्री तथा पत्रिकाओं के सम्पादक - उपसम्पादक प्रत्येक कक्षा में जाकर अलग 2 विद्यार्थी से भाषण देने तथा लेख देने के लिये कहा करते हैं। किन्तु उनके इस कथन की सर्वथा उपेक्षा कर दी जाती है। अब सदस्य

ही बतावें, कि क्या उनका उस प्रकार का व्यवहार सभा के लिये प्रशंसनीय है? जिस वाग्वर्धिनी सभा का बीज स्व. श्री. श्रद्धेय श्रद्धानन्द जी के करकमलों द्वारा लगाया गया था, और जिन्होंने उसे अपने ही हाथों द्वारा पाला-पोसा था उसका यह हाल देखकर दिल सहसा मुर्दा-सो जाता है। कुलपिता द्वारा बोये गये बीज से उत्पन्न वृक्ष का यह हाल कुलपुत्रों के लिए सर्वथा लज्जास्पद है। जिन कुलपुत्रों ने इस सभारूपी वृक्ष को सींचा है और जिस की छाया ने अनेकों पथिकों के श्रम को काफूर कर दिया है, उसकी यह वर्तमान हालत देखकर क्या हमारे कुलपिता स्व. श्री. श्रद्धानन्द जी की आत्मा तड़प नहीं रही होगी! अभी कुलकुल माता बांझ नहीं हो गई है; उसी ने कई ऐसे - कुलपुत्रों को जन्म दिया है जिनकी ओर कोई आंख उठाकर नहीं नहीं देख सकता। अतः हम सब को चाहिए कि किसी व्यक्ति विशेष को दोषी न ठहराकर रचनात्मक - कार्य प्रारम्भ कर दें।

इस सभा का प्रथम २० वर्षों का इतिहास एक स्वर्णकाल कहा जा सकता है; इसमें सर्वथा अत्युक्ति नहीं है। यह वही सभा है जिसने अन्तर्विश्वविद्यालय — प्रतियोगिता में भाग लेकर "हरिश्चन्द्र विजयोपहार" पारितोषक जीता। प्रथम तथा दूसरे वक्ताओं के पारितोषक भी प्राप्त किये।

आधुनिक काल में जो, एक दौर सा

लग गया है उसे दूर करने के लिए हम सब को प्रयत्न करना चाहिए। इसमें केवल भाग सभा का ही लाभ नहीं किन्तु गुरुकुलमाता तथा आप सब पाठकों का भी लाभ है। अन्त में मैं पुनः सब सदस्यों से प्रार्थना करूँगा कि वे इस कमी की पूर्ति के लिए सन्नद्ध हों और व्यर्थ का वादविवाद करना छोड़कर रचनात्मक कार्य में हमारा हिस्सा बंटावें।

वाग्वर्धिनी सभा का उद्देश्य–: वाग्वर्धिनी सभा का उद्देश्य महान् है। ~~आर्यविभाग..........~~ इस सभा का उद्देश्य ब्रह्मचारियों की वाक्शक्ति को परिमार्जित करना है। ब्रह्मचारियों की वाक्शक्ति की वृद्धि के साथ 2 लेखनशक्ति को भी सुसंस्कृत करने के लिए सभा ने 'राजहंस' नामक पत्र को जन्म दिया। किसी समय यह पत्र पाक्षिक था। किन्तु धीरे 2 ह्रास होते वर्ष में अंक निकलने लगा है। हमारी दशा कितनी शोचनीय हो गई है इसके ज्वलन्त प्रमाण हम स्वयं ही हैं। इस सभा ने बड़े 2 पण्डित, लेखक, कवि, वक्ता, कथा-कहानी लेखक तथा शास्त्रार्थ महारथियों को जन्म दिया है- उनका सारा श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वह वाग्वर्धिनी सभा ही है- इसमें किञ्चिन्मात्र भी अत्युक्ति नहीं है। इस सभा की पत्रिका 'राजहंस' का जिन्होंने सम्पादन किया है वे ही बाद जाकर सफल सम्पादक सिद्ध हुए हैं।

कविवर वंशीधर जी विद्यालंकार एक सफल कवि हैं। उन्होंने अपनी योग्यता के कारण विश्वविख्यात संस्था उस्मानिया-कॉलेज के उच्च पद को प्राप्त किया है और वहां पर वे हिन्दी का अध्यापन करते हैं। इनके अतिरिक्त श्री पं. चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार, श्री पं. सत्यपाल जी विद्यालंकार, श्री प्रो. जयचन्द्र जी विद्यालंकार, श्री प्रो. इन्द्र जी, श्री पं. सत्यदेव जी विद्यालंकार, आदि ने हिन्दी के साहित्य जगत् में काफी हलचल पैदा कर दी है। पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार आदि शास्त्रार्थ-महारथी गिने जाते हैं। इन सब को जन्म देने का श्रेय इसी वाग्वर्धिनी सभा को ही है।

हमें देखना यह है कि यह सभा अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुई है। ~~जो इसका~~ साहित्यिक जगत् में जो स्थान इसका पहले था अब वह विलुप्त हुआ सा प्रतीत होता है। मैं पूछता हूं कि हमारा १०-१० और १४-१४ साल पढ़ने का क्या लाभ हुआ? इसमें हमारा ही दोष है। महाविद्यालय के ४ साल हम खेल-कूद में ही बिता देते हैं और अपने उद्देश्य को भूल जाते हैं। जब हम स्नातक होने लगते हैं तब ~~तब हम~~ अपना उद्देश्य न पाकर मन ही मन पछताते हैं और सहसा गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली को दोषी ठहराते हैं। ये सभाएँ हमारे भविष्य की मार्ग-प्रदर्शिकाएँ हैं। अतः इनकी उपेक्षा करना सर्वथा अनुचित है।

जहां सदस्य दोषी हैं वहां साथ ही मन्त्री-आदि भी दोषी हैं। पहले यहां पर "अन्तर्विश्वविद्यालय वाद-विवाद सम्मेलन" हुआ करता था। इसमें बाहर की युनिवर्सिटियों के भी प्रतिनिधि आया करते थे और पुरस्कार जीतते थे। किन्तु अब उसका सर्वथा अभाव है। इसमें जहां हम सदस्यों को दोषी ठहराते हैं वहां उसके अध्यक्ष मन्त्री आदि दोषी हैं।

बनारस युनिवर्सिटी के प्रतियोगिता सम्मेलन में 'वाग्वर्धिनी सभा' की ओर से प्रतिवर्ष दो प्रतिनिधि गुरुकुल के भी जाते थे; किन्तु लगभग 2-3 वर्षों से वे भी जाना बन्द हो गये हैं। मैं उस सभा के मन्त्री से निवेदन करूँगा कि वे उस प्रतियोगिता सम्मेलन में भाग लेने के लिए ब्रह्मचारियों में उत्साह भरें।

श्री वाग्वर्धिनी सभा की शाखा 'हिन्दी साहित्य मण्डल' जो कि इन दिनों 'गोष्ठी' के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें पहले जैसा उत्साह नहीं रहा है। इसमें बोली जाने वाली कविताओं की दिशा ही बदल गई है। श्री. सत्यपाल जी (उन्नरव) विद्यालंकार के सभापतित्व में हाल ही में एक विशेषाधिवेशन बुलाया गया था। उन्होंने जो टिप्पणी 'गोष्ठी' सभा पर की थी वह उचित ही थी। सदा प्रेम का आलाप करने वाले कवि, कवि नहीं कहलाते हैं। ये आलाप हमारे वातावरण को दूषित करने वाले हैं। ऐसी कविताओं से गुरुकुल की

शान में बट्टा लगाता है। यद्यपि अब ऐसी कविताओं की कमी हो गई है किन्तु तो भी मैं 'गोष्ठी' सभा के मन्त्री जी से सविनय प्रार्थना करूँगा कि वे ऐसी कविताओं को कभी भी स्थान न देंगे। यह लहर हमारे यहां पर बाहर से आई है। यदि हमने भी ऐसी कविताओं को अपना लिया तो जो विशेषता हमारी कविताओं में होनी चाहिए वह न रहेगी।

सभा का कार्य -: वाग्वर्धिनी सभा गुरुकुल महाविद्यालय की मुख्य सभा है; तथा 'राजहंस' इसका मुख्य पत्र है। गत वर्ष इसके अधिवेशन हुए तथा पत्रिकाएँ भी आनन्द से आनन्द निकलने का प्रयत्न किया गया। अन्य सभाओं और पत्रिकाओं की अपेक्षा इसने अपना स्थान ऊँचा रक्खा है।

इस वर्ष मन्त्रियों आदियों का चुनाव — ---- २९ को हुआ जिसमें वाग्वर्धिनी सभा के मंत्रित्व का भार ब्र. वेदराजजीत्रयोदश ने संभाला और उपमन्त्रित्व का कार्य ब्र. वीरेन्द्रकुमारजीद्वादश ने। सम्पादक के लिये ब्र. स्वामी जी त्रयोदश तथा उपसम्पादक के लिए ब्र. अशोककुमार (अर्जुन) जी द्वादश का प्रस्ताव पेश हुआ जो सर्वसम्मति से पास हुआ।

इतने थोड़े समय में ही मन्त्री - उपमन्त्री ने

३१ अधिवेशन करा दिये हैं। इसमें ८ साधारण अधिवेशन और २३

निरोधाधिवेशन हुए। विषयों का चुनाव - सामाजिक - राजनैतिक आदि था। आधुनिक काल में (२७ से ३९ सन् तक) कई ऐसे भी मन्त्री आये हैं जिन्होंने केवल १० अधिवेशन वर्ष भर में कराये हैं। इस काल में सबसे अधिक अधिवेशन सन् १९२८ में हुए थे। इनकी संख्या ५३ तक पहुँच गई थी। इससे अधिक या उतने अधिवेशन, जबसे कार्यकारिणी सभा की स्थापना हुई है तब से लेकर अब तक किसी भी अन्य मन्त्री ने नहीं कराये हैं। इस वर्ष इन अधिवेशनों की संख्या ३१ है। आप अनुमान कर सकते हैं कि मन्त्रियों ने कार्य कितने उत्साह और लगन के साथ किया है। पत्रिकाओं का क्या हाल है? उनका निर्णय आप लोगों की तीव्र और विवेकिनी बुद्धि पर छोड़ता हूँ।

इस वर्ष कार्यकारिणी में — १. ब्र. ब्रह्मदत्त जी उपनीतक (२) ब्र. पुरुषोत्तम देव जी उपस्नातक (३) ब्र. वेदराज जी त्रयोदश (मन्त्री कार्यकारिणी सभा), (४) ब्र. धर्मवीर जी त्रयोदश (५) ब्र. स्वामी जी त्रयोदश (सम्पादक 'राजहंस' पत्र), (६) ब्र. वीरेन्द्र कुमार जी द्वादश (उपमन्त्री कार्यकारिणी सभा), (७) ब्र. राजकुमार जी द्वादश (८) ब्र. अशोक कुमार जी उर्फ ब्र. अर्जुन देव जी (उपसम्पादक 'राजहंस' पत्र) और (९) ब्र. शान्तिस्वरूप जी प्रथम वर्ष हैं।

एक बात और लिखनी और मैं मन्त्रियों

को ध्यान विशेषरूपेण आकर्षित कराना चाहता हूँ। वह है पारितोषकों में गड़बड़ी। इनसे विद्यार्थियों के अन्दर उत्साह भरता है। गतवर्ष के मन्त्री जी ने इनामों की घोषणा ही नहीं की, और यदि घोषणा करते भी हैं तो देने के समय आंखें बन्द। यह सर्वथा अनुचित सा प्रतीत होता है। या तो इनाम रखे ही न जांय – या झूठे विश्वास न दिलाये जांय। इससे विद्यार्थी हतोत्साह होते हैं। ये सभायें जिन उद्देश्यों को लक्ष्य करके स्थापित की गई थीं, उनके मन्त्री स्वयं ही उनमें विघ्न अड़चनें डालते रहते हैं। आशा है कि आगे से कोई भी मन्त्री हो, चाहे वह किसी भी सभा का क्यों न हो, इस बात का अवश्य ध्यान रखेंगे।

क्रीड़ा – गत वर्ष से क्रीड़ा को अधिक प्रोत्साहन मिला है, इसका सारा श्रेय श्री. गोविन्दसिंह जी क्रीड़ामन्त्री को है। उन्होंने जिस उत्साह और लगन के साथ इस कार्यधुरा को वहन किया है उसकी मैं मुक्तकण्ठ से सब महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की ओर से प्रशंसा करता हूँ। उनके मन्त्रित्व में रहते हुए कृषि – क्रिकेट तथा अन्य देशी खेलों को भी बहुत प्रोत्साहना दी गई है। गुरुकुल का 'अ दल' गतवर्ष "बाइटन – कप – टूर्नामेन्ट" में गया था और उसमें गुरुकुल दल का स्थान पूर्व की अपेक्षा बहुत ही उज्वल हो गया है, यद्यपि वे विजित हो कर लौटे थे।

मैं वर्तमान श्रीउपमन्त्री (ब्र. विश्वास जी त्रयोदश) से आशा करूँगा कि वे भी गुरुकुल दल के भविष्य को अधिक उज्वल बनाने का प्रयत्न करेंगे। श्री गोविन्दसिंह जी भूतपूर्व श्रीउपमन्त्री की कार्यकुशलता और नियम-बद्धता ने बहुत ही आकृष्ट किया है। इसलिए मैं उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ और वर्तमान श्रीउपमन्त्री को बधाई देता हूँ।

कुलमन्त्री - भूतपूर्व कुलमन्त्री श्री नीरेन्द्र-कुमार जी उपस्नातक ने जिस उत्साह, लग्न और शान्ति से अपने कार्य को निभाया है- उनकी इस कार्यकुशलता को देखकर हम सब कुलवासी खुशी से फूले नहीं समाते हैं। उनके सौजन्य की प्रत्येक कुलवासी प्रशंसा करता है। इस वर्ष कुलमन्त्री का कार्य श्री सतीशकुमार जी त्रयोदश ने अपने निर्बल कन्धों पर लिया है और प्रत्येक से आशा की है कि आप सब इस कार्य में मेरे साथ हिस्सा बटायेंगे। मैं वर्तमान कुलमन्त्री जी को बधाई देता हुआ आप सब कुलवासियों से सानुरोध प्रार्थना करूँगा कि वे उनके इस महान् कार्य में साथ देंगे।

वाद्यदल - वाद्यदल के मुखिया ब्र. दिनेश-कुमार जी को धन्यवाद देता हूँ। उनके सौजन्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उन्होंने जिस जिम्मेवारी के साथ इस कार्य

को निभाया है इसकी प्रत्येक सदस्य प्रशंसा करेगा। हम आशा करते हैं कि नवीन अधिकारी भी अपने कर्तव्य को अच्छी तरह पहचानेंगे।

सभाएँ - गुरुकुल में साहित्य परिषद, आयुर्वेद परिषद, वाग्वर्धिनी, संस्कृतोत्साहिनी तथा कॉलिज यूनियन ये पांच सभायें हैं। 'गोष्ठी' सभा वाग्वर्धिनी का ही एक अंग है। सामान्यतया इन संभाओं का संचालन इस साल अच्छा रहा है।

साहित्य परिषद -: इस वर्ष राष्ट्रिय महासभा का अधिवेशन भाषणों से पहले ही कर दिया गया। इसमें तीन दलों ने भाग लिया था - १. कांग्रेस २. आर्यसमाज और 3. हिन्दूमहासभा। निर्वाचन में आर्यसमाजी विजयी रहे। इसमें एक बहुत बड़ा कारण शायद 'हैदराबाद सत्याग्रह' था। जनता के हृदयों में से कांग्रेस के प्रति श्रद्धा धीरे २ उठने लगी थी। चाहे कोई भी कारण हो, तात्पर्य केवल इतना ही है कि हर साल भांति इस वर्ष कांग्रेस को मुंह की खानी पड़ी। निर्वाचन के बाद जब राष्ट्रिय महासभा का अधिवेशन होने लगा तो आर्यसमाज का मसविदा तैयार न होने के कारण एक नये दल 'फार्वर्ड ब्लाक' की स्थापना हुई। उसने अपना मसविदा तैयार करके हाउस की कुर्सियों को सुशोभित किया और आर्य -

समाज को विरोधी-दल की कुर्सियों पर स्थान मिला। फार्वर्ड-ब्लॉक के नेता श्री ब्रजदत्त जी चतुर्दश थे और विरोधी दल के नेता श्री वासुदेव जी चतुर्दश थे। विरोधी दल के नेता ने स्थगित प्रस्ताव रक्खा जो कि सर्वसम्मति पास हुआ। अब उस पर दोनों ओर से खूब गर्मागर्म बहस हुई। किन्तु असन्तोषजनक उत्तर मिलने के कारण हाउस को अपनी मिनिस्ट्री हटानी पड़ी। दूसरे दिन के अधिवेशन में विरोधी दल की कुर्सियाँ खाली रहीं। उस पर श्री रामदेव जी गंगादश ने स्वतन्त्र-दल की ओर 'भोजन विधान' मसविदा पेश किया, जो कि सर्व-सम्मति से मंजूर हुआ। प्रथम दिन के अधिवेशन में जो हालत फार्वर्ड ब्लॉक की हुई थी वही दूसरे दिन 'आर्यसमाज' की हुई; जिससे 'स्वतन्त्र दल' ने अपनी मिनिस्ट्री बनाई और यह अधिवेशन समाप्त हो गया।

दूसरे सत्र में 'अदालत' करने का निश्चय हुआ किन्तु वकीलों के अभाव के कारण न हो सका।

इस वर्ष भी हर साल की तरह "प्रताप-जयन्ती" मनाई गई। जहां मन्त्री ब्र. मोहेन्द्रनाथ जी १४ ने अपनी कार्यकुशलता का परिचय दिया है, वहां साथ ही एक शिकायत आम सुनने में आती है कि मन्त्री जी ने

कभी भी अपनी सभा के समय पूरे दिन की छुट्टी नहीं
कराया। सम्भवतः इसी कारण सभा के कुछेक अधिवेशनों में विद्यार्थियों
की उपस्थिति कम रही। इस वर्ष सिवाय 'प्रताप जयन्ती' के और कोई अधिवेशन
नहीं किया गया है। मुझे आशा है कि मन्त्री जी इस ओर ध्यान देंगे।

<u>आयुर्वेद-परिषद</u> - गत वर्ष की तरह इस
बार अधिवेशनों का अभाव न था। इस बार तो ऐसा प्रतीत
होता था कि आयुर्वेद परिषद ने साहित्य-परिषद का स्थान ले
लिया हो। अधिवेशनों की तो इस बार भरमार थी। बाहर
से भाषण देने वाले पर्याप्त संख्या में आये। किन्तु दुःख से कहना
पड़ता है कि किसी भी आयुर्वेदीय छात्र को सभा में बोलते हुए नहीं देखा गया।

<u>गोष्ठी</u> - इस सभा के साधारण अधिवेशन
नियमपूर्वक होते रहे। एक बहुत बड़ी शिकायत जो प्रत्येक के
मुख से सुनी गई है वह है - विषयज्ञानाभाव। इसमें सभा के मन्त्री-
उपमन्त्री दोषी नहीं हैं किन्तु सदस्य ही दोषी हैं। कई बार
तो यहां तक नौबत आ गई कि मन्त्री जी को इसके लिए टोकना
भी पड़ा। वक्ताओं की प्रत्येक बात पर कहकहे उड़ाने की प्रवृत्ति
संगत नहीं जान पड़ती। हम आशा करते हैं कि आगे से सभासद
इस बात की ओर विशेष ध्यान देंगे।

<u>वाग्वर्धिनी</u> - इसके अधिवेशन बदस्तूर जारी
रहे किन्तु साधारण अधिवेशन अंगुलियों पर गिनने लायक ही हैं।
इसके विशेषाधिवेशन पर्याप्त हुए हैं। इस सभा के मन्त्रियों में आलस्य

की माँग बढ़ती ही जा रही है। गत 2-3 वर्षों से "अन्त-विश्वविद्यालय वाद-विवाद सम्मेलन" में भाग लेने के लिये नहीं भेजा गया। हम आशा करते हैं कि आगे से ज़रूर ही वक्ताओं को बाहर भिजवाने पर ज़ोर दिया जायगा; क्योंकि इससे सभाओं के वायुमण्डल मण्डल में एक उत्साह सा फैल जाता है।

<u>संस्कृतोत्साहिनी</u> — इस वर्ष इस सभा के मन्त्री-उपमन्त्री दोनों ही उत्साही हैं। साधारण अधिवेशनों की संख्या पिछले वर्षों से कम नहीं रही।

<u>कॉलिज यूनियन</u> — सामान्यतया इस सभा की भी हालत पिछले वर्ष से अच्छी रही है। अधिवेशनों की संख्या भी पर्याप्त रही है।

<u>पत्र-पत्रिकायें</u> — किन्हीं कारणों से 'राजहंस' पत्रिका के संस्करण प्रकाशित नहीं हो पाये हैं। ऐसे कौन से कारण थे जिनसे इसका प्रकाशन नहीं हो सका है इसका विवरण मैं पहले कर आया हूं। उन कारणों को पुनः यहां दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। संस्कृतोत्साहिनी की ओर से भी इस वर्ष ढिल रही है। 'सर्वमित्र' पत्रिका के अंक पुनः निकलने लग गये हैं। इसके लिए प्र. अशोककुमार जी तथा प्र. राजकुमार जी धन्यवाद के पात्र हैं।

स्वर्गीय आत्माओं के प्रति श्रद्धाञ्जलि —:

जब मैं गंगोत्री यात्रा से लौटा था तब मुझे एक ब्रह्मचारी ने ब्र. 'रामनाथ' के स्वर्गवास हो जाने की बात सुनाई। मुझे उसकी इस बात को सुनकर कतई विश्वास नहीं हुआ। मैंने कइयों से जाकर पूछा किन्तु सब ओर से एक ही उत्तर मिलता। यात्राओं के पश्चात् जब सब ब्रह्मचारी गुरुकुल लौटे तब भी अन्तिम समय तक मुझे विश्वास था कि ब्र. रामनाथ अवश्य लौटेगा। किन्तु मेरे ये सब विचार रुई की तरह उड़ गये।

दूसरे सत्र के आरम्भ में ही "रामनाथ-बलिदानोत्सव" मनाया गया; जिसके परिणामस्वरूप तीनों महाविद्यालय - विद्यालय - कार्यालय एक दिन के लिए बन्द रहा। इस बलिदानोत्सव को मनाने की सफलता तभी होगी जब कि उनकी पुण्य स्मृति में एक 'भवन निर्माण' किया जाये और साथ ही 'रामनाथ' नामक पत्र का प्रकाशन भी किया जाय। पाठकों की सेवा में स्वर्गीय ब्र. रामनाथ की पुण्यस्मृति में 'राजहंस' पत्रिका का परिशिष्टांक निकल रहा है। मुझे आशा ही नहीं किन्तु पूर्ण विश्वास है कि इस अंक का प्रकाशन होता रहेगा।

दीप निर्वाण —: श्री. मान्यवर आचार्य रामदेव जी का स्वर्गवास ९ दिसम्बर १९३९ को हुआ था। श्री. आचार्य रामदेव जी

के स्वर्गवास का दुःखद समाचार सुनकर प्रत्येक कुलबन्धु शोक से द्रवित होता जाता था। एक दम तीनों महाविद्यालय - विद्यालय - आश्रमादि बन्द हो गये। उस दिन गुरुकुल का सारा वातावरण शून्य सा प्रतीत होता था। इधर-उधर चहल-पहल सी हो रही थी। थोड़ी ही देर में तार आया कि वे ब्रह्मचारियों को शीघ्र भेज दिया जावे। जल्दी २ दुपहर का भोजनादि करके तीन-चार लॉरियों पर सवार हो देहरादून प्रस्थान किया। एक विशाल जनसमुदाय समाज में इकट्ठा हुआ था। केवल ब्रह्मचारियों की ही प्रतीक्षा हो रही थी। लगभग ४ बजे सायं अर्थी निकाली गई और दाहसंस्कारादि करके उनके दिवंगत आत्मा के प्रति तथा उनके संतप्त परिवार के प्रति शान्ति की कामना की गई।

हमारे कुलपिता के हृदय में एक उत्साह था। हम उन्हें सदा कर्मशील पाते थे। उनका एक २ श्वास गुरुकुल-विद्यालय और गुरुकुल कन्या महाविद्यालय के अन्दर फूंकने वाला था। वे एक महान् आशावादी थे। अन्तिम समय तक उनके दिल में एक चीज़ थी और वह थी - "गुरुकुल कन्यामहाविद्यालय की उन्नति" - । उनके चले जाने से आर्यसमाज जगत् में जो हानि हो गई है उसकी क्षति पूर्ति करना बहुत ही मुश्किल है। आर्यसमाज में पहले ही कार्यकर्ताओं की

कमी होती जा रही है और श्री आचार्य रामदेव जी के दिवंगत होने से तो वह कमी प्रत्यक्ष अनुभव होने लगी है। उनका आशावाद तो इतना प्रचंड था कि अगर उन्हें पता लग जाता कि उनकी मृत्यु से किसी में भी निराशा का संचार होगा तो वे अत्यन्त दुःखी होते। | सं. –

महात्मा जी व गान्धी जी की श्रद्धाञ्जलियाँ –

"हमें ईश्वर का इस बात पर धन्यवाद करना चाहिए कि आचार्य रामदेव जी कष्ट से मुक्त हो गये। हमें दुःखी नहीं होना चाहिए। उनकी आत्मा महान् थी। ईश्वर उन्हें सद्गति प्रदान करें।"

— महात्मा गान्धी।

"प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और हिन्दू सुधारक आचार्य रामदेव जी की मृत्यु पर औरों के साथ मुझे भी दुःख होता है। उनकी मृत्यु से आर्यसमाज का एक और व्यक्ति कम हो गया। ऐसे अनेक शिक्षक हैं जिन्होंने उनसे स्फूर्ति पाई है। अब उन पर यह भार और भी ज़्यादा आ पड़ा है कि वे सेवा और आत्मत्याग के द्वारा उनके महान् नाम को कायम रखें। किसी शिक्षक की आत्मा को इससे ज़्यादा और किसी बात से शान्ति नहीं मिल सकती कि उसके शिष्य उसकी शिक्षाओं की पूर्ति करें।" — च. राजगोपालाचार्य।

श्रद्धाञ्जलि-:

"आचार्य रामदेव जी के निधन से मुझे अत्यन्त खेद पहुँचा है, उनके निधन से न केवल गुरुकुल को अपितु हम सभी को धक्का पहुँचा है।"

— पं. जवाहरलाल नेहरू

श्री आचार्य रामदेव जी के निधन पर तीन दिन का अवकाश रहा। अपने कुलपिता के वियोग में शोक सभा की गई और निम्न प्रस्ताव सर्वसम्मति पास किया गया-

"गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलपति, आर्यसमाज के अनथक सेवक, विद्याव्यसनी, आदर्श ब्राह्मण श्री आचार्य रामदेव जी के निधन पर, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के निवासियों की सभा हार्दिक शोक प्रकट करती [illegible] अनुभव करती है कि उसके संचालक हाथों के [illegible] गुरुकुल शिक्षा प्रणाली और आर्यसमाज को अपार क्षति हुई है। यह सभा उनके शोक-संतप्त परिवार के साथ गहरी समवेदना प्रकट करती है और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।"

वार्षिक परीक्षा— इस वर्ष स्नातक परीक्षा —

४ फाल्गुन १९९६ वि. संवत् तदनुसार २० फ़रवरी १९४० बृहस्पतिवार से प्रारम्भ होगी, शेष तीनों श्रेणियों की परीक्षा-तिथि भी यही है। ब्रह्मचारी बड़े लगन से तैयारी में लगे हुए हैं।

अन्त में हम उन कवियों, गाल्पिकों, तथा निबन्ध-लेखकों को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया है। तथा वे भी जिन्होंने इसमें थोड़ा सा भी हमारा हिस्सा बंटवाया है और कार्यभार को हलका किया है, धन्यवाद के पात्र हैं। इस पत्रिका के प्रकाशन में चित्रकारों ने बहुत सहाय किया है। ब्र. शान्तिस्वरूप जी प्रथमवर्ष ने प्रशंसनीय कार्य किया है। भाई करोड़ग जी के निःस्वार्थ परिश्रम को नहीं भुलाया जा सकता। हमें सूझता नहीं; कि किन शब्दों में उनका धन्यवाद करें। उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। साथ ही ब्र. रमेशचन्द्र जी विरश श्रेणी के [illegible] भी कम नहीं है। वे भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

(सम्पादक-द्वय)

रामनाथ
परिशिष्टांक

सूचि

श्रद्धांजलि

उपवन की छोटी सी कलिका,

अभी उसके बढ़ने के

दिन थे, मनमोहक

सुरभि अभी फूट

ही रही थी -

राजनाथ

जिसने हंसते २

अपने प्राणों को माता की

पवित्र वेदी पर चढ़ा दिया -

उसके चरणों में श्रद्धा -

के ये दो कुसुम

समर्पित हैं।

बहुत थोड़े व्यक्ति ऐसे होंगे जो कि अपने कर्तव्य (काम) के लिये दुर्बल न होना चाहें।.

बालजी रामनाथ से मेरा परिचय सम्वत् १९५४ से हुआ जब कि वह महाविद्यालय में प्रविष्ट हुआ। थोड़े ही दिनों में मालूम होगया कि वह एक ठीक शब्दों में कर्तव्यनिष्ठ और उसकी लगन वाला व्यक्ति था। जिस काम को करने का विचार कर लेता था उसे करने के लिए सदा तैय्यार रहता था और जल्दी कर लेता था - यह कई बार देखने में आया है। हमारे बीच में से उसके चले जाने का दुःख इसलिए भी है कि वह इस छोटी सी उम्र में चल बसा - इससे बहुत सी आशायें कुल को तथा दूसरे सम्बन्धियों को थी और वह बड़ी उम्र में जाकर शायद इस से भी ज्यादा सोसायटी के लिए लाभदायक होता।

ध्यान है उन गुणों पर जो बिना छिपे चुकाए गए।

फकीरचंद

ले.- श्री. विद्यासागर जी
उपस्नातक

अन्याय और अत्याचार को सहन करने का अर्थ अन्यायी और अत्याचारी को प्रोत्साहन देना है, भारतीय-संस्कृति, वैदिक-संस्कृति, आर्य-संस्कृति, हिन्दू-संस्कृति का नाश करना है, अपनी दासत्व की वृत्ति या मृत्यु को अधिकाधिक समीप बुलाना है। हम ... मार्ग उस के लिए चुनते हैं ?

हमारा मार्ग वो होगा जो हमारे स्वर्गीय वीर भाई रामनाथ ने चुना था।

स्वर्गीय शहीद रामनाथ

अत्याचार से पीड़ित भाई को देखकर अन्यायी लोगों से अपने भाई को सताया जाता देखकर अपने ही घर में आग लगाते देखकर, हमारा मार्ग कौन सा होगा ?

हमारा मार्ग ... वीर भाई रामनाथ का होगा।

अन्यायियों के विरुद्ध आवाज़ उठाना,
पीड़ितों की सहायता के लिए दौड़कर पहुँचना, दुःखी के
लिये एक कदम भी पीछे न हटाने वाला, आगे बढ़कर
शत्रु को ललकारने वाला कोई था — तो वह था भारतानन्द
के कुल का एक पुत्र — रामनाथ —

क्या रामनाथ मर गया?

नहीं! कदापि नहीं

सैनिक की मृत्यु कभी नहीं होती,

देश-धर्म पर मरने वालों की मृत्यु नहीं होती,

मृत्यु होती है कायरों की, बुज़दिलों की
और डरपोकों की।

अधखिली कली

। ले. ब्र. नवरत्न जी १४

एक ही प्रान्त के रहने वाले हम दोनों एक-एक साल बाद हम उस शिक्षालय में दाखिल हुए थे। उससे बड़ा होने के कारण और वैसे भी साथ २ खेलने कूदने, खाने-पीने, हंसने-रोने में इकट्ठे रहने के कारण उसके स्वभाव से परिचित हो गया था किन्तु फिर भी आज वे सब स्मृतियाँ धुंधली सी दिखाई देती हैं। बचपन में प्रायः सभी शरारती होते हैं। एक बार की घटना है कि किसी ने उसे बहका कर कुछ स्याही की गोलियाँ खिला दीं। उसने भी विद्यार्थियों को [illegible] के लिए या अपनी मृत्यु से भी निर्भीकता प्रदर्शित करने के लिए थोड़ी गोलियाँ खा लीं। डॉक्टर आया और उसे वमन कारक निर्विष [illegible] दिया, मौत से बचा लिया। वैसे तो मृत्यु से बचा ही कौन सकता है, फिर भी ---। लोग कहते हैं कि जब तक मृत्यु दूर होती है तभी तक उससे हम अपने आपको निर्भीक-निडर-दिलेर कहते रहते हैं। किन्तु उन दिलेर कहने वाले बालकों-युवकों और आज जो वार्धक्य को पहुँच चुके हैं उनसे पूछिये मृत्यु कितनी भयावह होती है। हमारा साथी ऐसा

न था। बचपन में भी सभी दिन नहीं हुआ करते। दो-तीन साल साथ रहने के बाद मेरा शिक्षा स्थान बदल गया। बाद में उसमें क्या २ परिवर्तन हुए, मैं कह नहीं सकता। बीच में एक साल फिर साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था किन्तु उस समय की सन् ३०-३१ की आज कोई भी स्मृति सम्मुख उपस्थित नहीं हो रही है। तत्पश्चात् महाविद्यालय जीवन (College-life) में फिर साथ हो पाये थे। अपने उन प्राथमिक वर्षों की अनेक मधुर स्मृतियों व खिलवाड़ों तथा शरारतों आदि का स्मरण कर-कर के खूब आनन्द लूटा करते थे। साथ खेलते थे। इधर-उधर आसपास के पर्वतों की उपत्यकाओं में, गंगा के किनारे और इसी प्रकार अन्य अनेक रमणीय प्रदेशों पर भ्रमण करने जाया करते थे। हर जगह उनका साहस-शूरता-स्नेह और व्यवहार-कौशल प्रकट हुए बिना न रहता था। आर्य [illegible] सत्याग्रह-संग्राम के छिड़ने पर [illegible] के क्रूरतम अत्याचारों का स्मरण और अवलोकन करने के बावजूद भी उस संग्राम के आने को और सबसे पहले जत्थे में जाने को वह उद्यत हुआ। बताओ, अब भी उनके साहस में कोई कमी रह जाती है या रह गई है? वह अक्सर कहा करता था कि लौटेंगे तो विजयी होकर, अन्यथा उस धातीमाता का हृदय

जीवन भर नहीं चैन की नींद लेंगे । उनके दिल में देश हित के लिये - जातिहित के लिए तथा समाज-हित के लिए जलन थी - वेदना थी और व्यथा थी । वह स्वामी दयानन्द का वास्तविक - पक्का - आदर्श शिष्य था, उन्ही के प्रान्त का था । उसी पृथ्वी - उसी आकाश और उसी अन्तरिक्ष ने या यूं कहिये उसी पञ्चभूत ने उसे बनाया जिसने आदर्श गुरु को पाला और पोसा था । उनके अन्तस्थल में क्या २ भावनाएँ काम कर रही थीं - उसे हम उसकी उपस्थिति में नहीं समझ सके । उसकी हार्दिक वेदनाओं - कृष्ण व्यथाओं और अन्तस्थल की ज्वालाओं को हम न जान सके - उनसे न परिचित हो सके। उसने मृत्यु का आह्वान उन निष्ठुर - क्रूर और अत्याचारियों के हाथों [illegible] स्वीकार किया ; किन्तु अपने आदर्शों के लिये, जगत्-हित के लिए और समाज की सेवा के लिए । उसकी उस वेदना - कष्ट और आपदा को देखकर भी अब किसी ने वेदना के, दुःख के और क्लेश के आंसू कभी नहीं देखे? उन्हें छिपाने को मैं हम लिया जाता था । लोग समझते थे कि मैं पाषाण-हृदय हूं - किन्तु नहीं वह मेरा एक भ्रम था - पुष्ट हृदय-

और यहाँ तक कि आई था। वह एक अर्द्ध विक-
सित कली था जिसने अपने आप को मातृभूमि के
लिये समर्पित कर रखा था। यदि तुम उसे मसल भी
डालो तो भी उसके मुँह से एक भी आह न निकलेगी।
उस मृत्यु की पीड़ा में भी उसे वास्तविक-जीवन का आनन्द
लाभ होगा और हुआ भी। ऐसी कैशोर्य की अधखिली कली
स्व० भाई रामनाथ के लिये मेरी शतशः स्नेहाञ्जलि
अर्पित हो।

ले. श्री धर्मेन्द्र जी १३
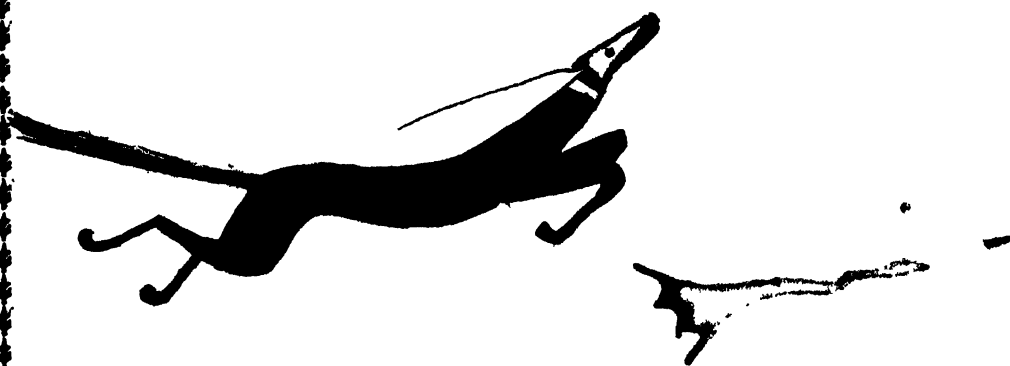
वह साहसी भाई! आज भी हमें दृष्टिगोचर होरहा है। चाहे वह इस दुनिया में साहस के कामकरके स्वधर्महित अपने प्राण न्यौछावर कर चलागया हो। तो भी जब कभी हम अपने बाल्यकाल की या यों कहिये कि प्रथमश्रेणी से लेकर आज पर्यन्त जितनी घटनायें हुई हैं और जिनमें साहस के कार्य हुए थे उन्हें स्मरण करते हैं तो भाई रामनाथ का नाम दृष्टि से ओझल नहीं होसकता कभी नहीं भूल सकता।

गुरुकुल एक ऐसी संस्था है जो न जाने कितने कुल भाइयों को एकत्रित करती है और १४ साल के बाद न जाने कहां भेजदेती है किन्तु एक कुल भावना अवश्य पैदा करदेती है।

मैं भाई रामनाथ का सहपाठी हूँ। जिस ट्रेन से जितना गुरुकुल सूपा में प्रविष्ट होने के लिए भाई रामनाथ अहमदाबाद आरहा था उसी ट्रेन में मैं सूरत से सूपा में प्रविष्ट होने के लिए

मैं भी सवार होगया। तभी से हमदोनों का परिचय था।
हम दोनों एक दूसरेके घरके सम्बन्धसे भी खूब परिचित थे।
जब कभी मिलते अपने घरके सुख दुःख की बात छेड़देते।

जब कभी भी कोई साहस का कार्य किया गया
मैंने गाई को अनुपस्थित न पाया। पढ़ाई की दृष्टि से वह
साधारण था। पर मेरा ख्याल है कि हरेक आदमी का अपना
अपना कार्य क्षेत्र होता है जिसमें वह अपना नाम कर अपना
नाम धरती पर सदाके लिए अमिट कर सकता है। उसने अपने कार्य
क्षेत्रमें कार्य किया और नाम कमाकर सदा के लिए हमें अधिक
का छोड़कर गया।

छोटी श्रेणीमें उसने खेलकूदमें भी खूब भाग लिया।
वह खेलमें चोट लगने पर भी डरता न था। प्रतिदिन खेलमें
चोट लगने पर भी वह अगले दिन सबसे प्रथम मैदानमें उपस्थित
होजाता था। यह खिलाड़ियोंके लिए कहावत है कि जितने तरह
भी खेल हैं इसमें जो आदमी जितना अभ्यास करेगा उतनाही
वह निपुण होता जायगा। मैं उसकी खेल देखता था उस
कहावत को अपने में चरितार्थ करता जाता था। महाविद्यालय
में उसकी खेल विद्यालय की अपेक्षा अधिक मंजी हुई प्रतीत
हुई। सत्य बातमें वह किसीसे भला तथा चाहे अध्यापक

जब उसने महाविद्यालय में प्रवेश किया तब उस का एक भी सप्ताह ऐसा न गया होगा जब कि वह जंगल में भ्रमण करने न गया हो। प्रति सप्ताह सवेर ७ बजे से जाकर रात को १० बजे आना उस के लिए भय का कारण न था। हाथ में केवल भाला होता था। वह देखता न था कि मेरे साथ इस सप्ताह कौन कौन चलेगा। सब के साथ उस का एक सा भाव था।

सातवीं श्रेणी से लेकर ११वीं श्रेणी तक उसने साहस के काम किए और उस के नाम की शर्ति हो रही थी और अब १२ वीं श्रेणी के कोर्स की परीक्षा शेष थी। परमात्मा ने उस समय भी उस को परीक्षा ली और उसे सदा के लिए परीक्षक बना दिया।

श्री पूज्य नारायण स्वामी ने गुरुकुल कांगड़ी से जत्थे की आयोजना शुरू की। हमारे भाई ने भी अपने घर माता पिता से स्वीकृति के लिए पत्र लिखा। माता का हृदय माता का ही होता है। अतः उन्होंने इन्कार कर दिया। परन्तु उसने तो सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन किया था। 'यान्यवद्यानि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि'

ने तो उसके हृदय में स्थान कर लिया था। महर्षि दयानन्द और श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के चरणों में अपना जीवन अर्पित करने का अवसर चूक न जाऊं ऐसा निश्चय कर धर्मप्रेमी भाई सत्याग्रह के लिए शोलापुर की ओर चल पड़ा।

जेल में उसने काफ़ी कष्ट सहे। पर वह अपने विचार से टस से मस न हुआ। न उसने क्षमा मांगी। कमरे में बन्द करके पीटा। शौचादि उठाने के लिए बाध्य किया गया। पर उसने हंसते मौन दुःख सहन किया। परन्तु एक आदर्श सैनिक की तरह युद्धभूमि में पर्वत के समान खड़ा रहा।

कारावास के कारण ज्वर ने उस पर आक्रमण किया। दो सप्ताह तक वह घर में रोगीशय्या पर पड़ा रहा। अन्त में परमपिता परमात्मा ने उसे विश्रान्ति देने के लिए अपने पास बुला लिया।

हम दोनों भाई हर साल गिनते थे कि अब हम उतने स्नातक होंगे। अब महाविद्यालय में

आकर इन्होंने कहा कि अब तो निश्चित हो गया कि प्रथम श्रेणी से लेकर ३५ में से अब हम चार तो निश्चित ही स्नातक होंगे। न जाने वह मेरे ३१ सहपाठी भाई कहाँ गये ? बहुत साल बित गये शायद अब उनका मैं नाम भी भूल गया पर वह मेरा प्यारा भाई जिसके साथ मैंने अपने १२ साल बिताये, आज न जाने मुझे दुःखित करके कहाँ चला गया ? मेरे से वह क्यों रूठ गया ? अन्त में फिर एकबार उसका नाम न भूल जाऊं ~~वह है मेरा प्यारा धर्मप्रेमी भाई~~ इस कारण उसे फिर नाम से स्मरण करता हूँ कि वह है मेरा प्यारा धर्मप्रेमी भाई रामनाथ।

शुभ्र प्रभात में —

सरल ओस के आँसू मेरे —

साथी हों स्वीकार। —

साथ हमारे कभी खिले थे,

इस उपवन की डाली पर,

सुषमा थी अभिराम कुमारी

झलक रहा था प्यार। —

माली के हाथों ने तोड़ा,

गूँथ लिया अपनी माला में,

प्रथम देवता के चरणों पर

छूटी वह उपहार। —

— सरल ओस के आँसू मेरे

साथी हों स्वीकार। —

दिवंगत आत्मा के प्रति

— श्री रामकृष्ण जी "जोशी"

हमें छोड़ अज्ञात दिशा को
बन्धु! कहाँ तुम चले गए—
उस निष्ठुर विधना के हाथों
हम सब केवल छले गए ॥

(२)

खिलती कलिका झूम मचल के,
अलमस्त रंग ! मिरसई !.
उनके लचीला, साथी फूलों
पर कुछ भी दया न आई।.

(३).

वह प्रतिपल मुस्काता आनन
क्रियाशील सुन्दरतम तनमन
कलियों पर हंसते हंसते
करता नीरव आत्मसमर्पण

(४).

उस भीषण कारा के तुमने
हँसते हँसते सब दुख झेले
निर्दय कोड़ों की चोटों से
तुम बेसुध काली के खेले ॥

(५).

बन्धु! आज तुम नहीं यहाँ हो,
और कहाँ हो? और कहाँ हो?
बोल पड़ो तुम एक बार तो
छिपे हुए प्रिय बन्धु-जहाँ हो ?

(६).

हाय अभी ही 'स्वर्णिम उषा'

मुसकाई सकुचाई ।

इतनी जल्दी धंधक काला

काली छाया छाई ।

(७)

उस काले परदे के पीछे

किसका नीरव गान ?

विश्वविधाता की लीला को

कौन सके क्या जान ?

(८).

प्रभु हम को वंचित करके, यह
धन अनमोल हमारा।
इससे कोई बढ़ न जायगा।
अक्षय कोष तुम्हारा।

(९).

बन्धु मेरे हुए आज तुम
उस अनन्त में लीन
किन्तु हमारा हृदय दुःख से
व्याकुल जर्जर क्षीण॥

हा! राम

- श्री पं॰ क्षितीशकुमार जी वेदालंकार।

"भाईजी! आप कहाँ जाते हैं?" - उस दिन एक छोटे से बालक ने पूछा।

"हम देहरादून जाते हैं।"

"वहाँ क्या करेंगे?

"सन्ध्योपासन करेंगे।" बच्चे को समझाने के लिये सरलता से मैंने कहा।

"यहाँ आपको सन्ध्योपासन नहीं करने देते?" उसने कुछ आश्चर्यभरी मुद्रा में मानो न जाने बोला-

आग्रह सा करते हुए अपनी उत्सुक आँखों से उत्तर की प्रतीक्षा की।

"कहीं यहाँ तो संध्यावंदन करने देते हैं, पर वहाँ हैदराबाद में नहीं करने देते वह मुसलमानों की रियासत है। वहाँ का राजा भी मुसलमान है।"

"मुसलमान तो बड़े निर्दयी होते हैं। वे तो आपको खूब तंग करेंगे, खूब मारेंगे और खाने की रोटी भी नहीं देंगे?"

"नहीं, रोटी हमें खाने को, कहीं न कहीं से मिल जायेगी?"

"वहाँ कहाँ से मिलेगी? यहाँ से अपने साथ बाँध कर ले जायेंगे क्या? उसने अपनी बालसुलभ कल्पना से कहा।

मैंने अपनी हँसी रोकते हुए कहा- "नहीं रोटियाँ वे लोग अवश्य ही देंगे- उन्हें देनी पड़ेगी, पर

आरती भी खूब करेंगे"।

उसने एकदम गम्भीर होकर कुछ व्याकुलता के साथ कहा - "अच्छा भाई जी! यदि आप मर जावें तो हमें इनका अवश्य दे देना। हम भी रोवेंगे।"

बच्चे की इस भोली बात के ऊपर मेरी आँख कुछ कोना गीला हो गया और साथ ही भोलेपन पर हंसी भी छूट निकली। मैंने कहा - "अच्छा" और वहाँ से चल दिया।

× × ×

आज १६ महीने बाद।

एक जमाना वह था कि हम १५ कुलबन्धु हैदराबाद के सत्याग्रह में अपनी प्रथम आहुति देने के लिये गए थे और आज १६ महीने बाद उस संग्राम में विजयी होकर हम लौटे हैं। पर हाय! कौन कहे कि जब हम गये थे तब १५ थे और जब

लौट कर आये हैं तो हम वैसे एक नहीं हों.

रामनाथ! तुम चले गए। बिना कुछ कहे चले गए। उस दिन कुलपति के सवाल का उत्तर देते हुए मैंने सब के सामने उस बच्चे से कहा था - "मुझे गर्व है कि हम सब दुर्लंघ्य सकुशल वापस लौट आये हैं। मुझे किसी के मरने की सूचना नहीं देनी पड़ी।"

हे राम! तुम मुझे झूठा कर गए। मुझे उस बच्चे के सामने जाते हुए शर्म आती है क्या मुँह लेकर जाऊँ?

किस मुँह से सूचना दूँ कि मैं मर जाऊँ!

राम! तुम्हीं बचाओ!

हाय राम!

—

मुस्काता चेहरा

— श्री [illegible] देव जी
उपस्नातक

गुरुकुल में उन दिनों गर्मियों की छुट्टियां थीं। मैं उन दिनों दिल्ली के प्रसिद्ध कविराज श्री पं. हरिरंजन जी मजूमदार M. A. भिषगाचार्य के पास आयुर्वेद के स्वाध्याय के लिए गया हुआ था। मेरा मुकाम उन दिनों आर्य समाज नई-दिल्ली था।

गुरुकुलीय क्षेत्र पानीपत के ब्रजनन्दी भाई रघुनाथ जी के एक पत्र से मुझे पहले यह ज्ञात हुआ कि भाई रामनाथ जी जो कि हैदराबाद जेल से छूटने के बाद से बीमार चले आ रहे थे, स्वर्गवास हो गया है।

पत्र पढ़ते ही थोड़ी देर के लिए मैं निस्तब्ध खड़ा रह गया। मेरे दिमाग में अनेकों विचार चक्कर काटने लगे। एकदम वो दृश्य सामने आ गया जब कि हमारे गुरुकुल के विद्यार्थियों ने हैदराबाद सत्याग्रह के लिए कूच किया था। उनमें भी रामनाथ के मुस्कराते चेहरे की तस्वीर भी

एकाएक सामने दिख आई। पहले तो यह विश्वास ही नहीं हुआ कि वह विद्यार्थी जो अभी कुछ ही दिन पहले इसके साथ खेलता कूदता तथा इनमें से ही एक था - किस तरह हम से जुदा हो सकता है। लेकिन उस देव की आज्ञा किसने टाली है ?. या उसके खेलों को कौन समझ सका है ?. यह सोचते हुए अन्त में उपर्युक्त बात पर विश्वास करना ही पड़ा। अस्तु!

अगले दिन रविवार का दिन था। नई दिल्ली आर्य समाज का ~~साप्ता~~ साप्ताहिक-सत्संग होने ही वाला था। इसी की तैयारी में समाज के मन्त्री जी के सब से पहले दर्शन हुए। उनके आते ही मैंने उन्हें भी यह दुःखद समाचार सुनाया। यह सुनते ही पहले तो वह थोड़ी देर के लिए स्तब्ध ही खड़े रह गए। बाद में कहने लगे कि " कु. रामनाथ जैसे गुरुकुल के वीर ब्रह्मचारियों के ~~एक~~ बीसों ऐसे बलिदानों से ही तो हमारी उस पद्धति में विजय हुई है"।

बाद में उन्होंने सभा में शोक प्रस्ताव पेश करने के लिए मुझे प्रस्ताव लिख लाने को कहा। मैंने उन्हें प्रस्ताव बना के दे दिया जिसे सभा के अन्त में नई दिल्ली के प्रधान सब आर्यसमाजों ने एक स्वर पास किया और पूज्य स्वामी ने उस प्रस्ताव के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

मैं भी अपने स्वर्गीय भाई रामनाथ जी की मृत्यु पर अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं तथा ईश्वर से उनकी सद्गति की प्रार्थना करता हूं।

— श्री देव

स्वर्ग की कली

- श्री अशोक

गंगा के तट पर - उस छोटे से उपवन में वह पौधा उदितचन्द्र की प्रतिकला के साथ बढ़ रहा था। मधुप्रेमी माली ने न मालूम कितने स्वर्णकलशों से उसका सिंचन किया था। कितने उत्साह से, कितनी भावना से। आशा थी - सुन्दर कलिकायें खिलेंगी - उपवन सुरभित हो उठेगा।

एक दिन - खिलती हुई उषा की प्रथम किरण के साथ उस उपवन में एक कलिका

खिल उठी। कितनी सुन्दर, कितनी आकर्षक, कितनी कोमल उसकी कलिया थी। सारा उपवन सुरभित हो उठा।

आज माली हर्षित था - रोम 2 से प्रसन्नता प्रकट हो रही थी। उसकी चिरसाधनाओं का परिणाम उस छोटे से पौधे की सुन्दर कलिका - कितनी सुन्दर थी वह।...

माली लौट कर अपनी छोटी सी झोंपड़ी की ओर आ रहा था - सहसा दक्षिण से तूफान उठा, और पूरब की तरफ बढ़ चला। उसके वेग मे प्रचण्डता थी और थी प्रबलता। वह प्रतिक्षण बढ़ता आरहा था। सारा नभोमण्डल चंचलायमान होगया था।

तूफान की एक प्रबल धारा उपवन को चूमती हुई निकल गई। आसमान साफ होगया।

उत्सुक माली उसी उपवन में पहुँच गया - वह लम्बकाय वृक्ष अवस्था में पड़ा था और वह कलिका - उसका कहीं नाम न था। माली की आंखों से आंसू झरने लगे।

कुछ क्षण बाद - उसकी आंखें 'सहसा आसमान की ओर उठ गईं। उसने देखा दो देव दूतों को सम्मुख बनाये ऊपर उड़े चले जाते हैं और उन में है एक कलिका - उसी उपवन की उसमें वही है आकर्षण वही सुन्दरता।

सम्भवतः वह स्वर्ग की कली थी जो भूतल में उतर आई थी स्वर्ग का संक्षिप्त परिचय देने के लिये —

—

वर्धा - १२/८/३५

जेलयात्री भाइयो,

प्रेमपूर्ण नमस्ते। मैं अपने कार्यक्रम को भंग करके दो दिन अधिक ठहरा, केवल इसलिए कि तुम लोगों से भेंट हो सके। तुम्हारे इतना निकट भी पहुँचकर भेंट न हो सके यह दुर्भाग्य की बात है। चान्दा आकर केवल सत्येन्द्र और मनोहर से ही मिल पाया हूँ। वैसे तो इनसे भी मिलकर तृप्ति नहीं हुई — चान्दा से लौटते हुए उन्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता था, इच्छा होती थी कि ये अभी कुछ दिन और साथ रहें। पर अन्य भाइयों से तो मैं एक बार भी न मिल सका। यदि एक दिन और भी ठहर सकता तो ठहरता। अब एक दिन भी ठहरना पांडिचेरी जाने के प्रयोजन को ही नष्ट कर देगा (क्योंकि दर्शन का दिन बीत जायगा)। इसलिए तुम्हें बिना मिले जाने की कसक, कलक सी साथ लिये जा रहा हूँ। आशा है सत्येन्द्र द्वारा मेरा यह पत्र जब तुम्हें

मिलेगा और प्रत्युत्तर में तुम्हें हृदय से प्रेममय सहारा निकलेगा उस से मेरी यह कसक बहुत कुछ मिट जायगी।

परमेश्वर महान् है। वही हम सब को जोड़ने वाला है। जेल में जो तुमने कुल की मान मर्यादा को यशस्वी रखते हुए उग्र विकट तपस्या की है उसे वह सफल करे और तुम्हारा जीवन आगे इससे भी पवित्र, सच्चा और तपस्वी हो, इसप्रकार -

तुम्हारे लिए शुभकामना करता हुआ

[illegible]

कृष्णमन्दिर के संस्मरण

[श्री० मनोहरजी ९३]

आज - यद्यपि उन घटनाओं को ४ मास से अधिक होने को आए तथापि अब भी वे आज की सी प्रतीत हो रही हैं। शायद, इसलिए क्योंकि उनका सम्बन्ध - बाह्य शरीर से न होकर आत्मिक शरीर से था। जेल जीवन, यदि हम उसका ध्यान से अनुशीलन करें तो वस्तुतः ही आत्मिक भोजन तथा आत्मिक विकास का साधन है। जेल की शान्ति मनुष्य को विवेकी और भविष्य के लिए दूरदर्शी तथा दृढ़ - कर्तव्यनिष्ठ बनाती है। ज्वारभाटे के ~~पश्चात~~ पूर्व तथा पश्चात् समुद्र में शान्ति होती है और वह ज्वार आने के लिए आवश्यक है - उसके बिना ज्वार आ ही नहीं सकता — इसी के अनुसार जेल जीवन किसी महान् कार्य की तय्यारी है। जेल के जीवन में सत्याग्रही का किसप्रकार का आत्मिक संघर्ष होता है - इसके लिए जेलडायरी के 2-3 पन्ने उद्धृत करने उचित प्रतीत होंगे।

८-६-३९ आज हमने सवेरे उठते ही देखा कि बैरक खुलने पर ठण्ड से कांपते हुए बेचारे कैदी निकले। हम उनको वस्त्र

दिलवाने के लिए कई दिन से आन्दोलन कर रहे थे। आज हमसे नहीं रहा गया और हमने अपने कपड़े उतारकर उनको बांट दिए। १ घन्टे बाद फिर दारोगा साहब आए और बहुत बड़बड़ाते हुए बोले — "मैं मुसलमान हूं। इस वास्ते आप मुझे इस तरह से बदनाम करना चाहते हैं"। हमारे दिए हुए वस्त्र कैदियों से छीन लिए गए और उन्हें पीटा गया। हमने अनशन किया और कहा कि जबतक उन गरीबों को कपड़े नहीं मिलेंगे - हम भोजन नहीं करेंगे।

इस खबर जेल के Superintendent को बुलाया गया। उन्होंने भी कहा कि ये लोग कपड़े पहनते ही नहीं - गांव के गांव लंगोटी से रहते हैं। हमने कहा कि यह भी निजामराज्य का अन्धेर है कि वह अपनी प्रजा को भूखा नंगा अशिक्षित - रखता है। उन्होंने कहा - "तुम हमारे जेल के कानून में दखल डालते हो - हम तुम्हें अलग कर देंगे।" दारोगा बोला — "शारदा जी! आपको यह बगगार (तनहा कालापानी) भेज दिया जायगा - और इलाज यही है कि आपको कोई भी आदमी दिखाई नहीं देगा जिनसे आप अपना रोटी कपड़ा बांट सकेंगे। हमने कहा - "सो सब आपकी मर्जी - पर हम मनुष्य हैं और इस जेल में किसी को कष्ट देने नहीं आए - स्वयं कष्ट लेकर दूसरों को सुख देने

आए हैं। पहले उन्हें वस्त्र मिले फिर हम भोजन करेंगे हमारा सत्याग्रह सफल हुआ। हमारे वस्त्र नए बदले गए और उन्हें भी नए वस्त्र दिए गए।

१२-६-३९ आज औरंगाबाद से नए तालुकेदार साहब बदलकर आए। उन्होंने पूछा कि कोई शिकायत तो नहीं? हमने उत्तर दिया - "शिकायत तो कोई नहीं - सिर्फ खाना कम मिलता है और मात्रा में थोड़ा होता है। वह बोला - यह जेलखाना है, सेनिटोरियम शिमला या नैनीताल नहीं है। हमने उत्तर दिया - "हम ऐसा समझते कब हैं? तुमने शिकायत पूछी - हमने बताई"। वह बोला - "थोड़ा खाना ही अच्छा होता है। तिहाई पेट रोटी - तिहाई पेट पानी और तिहाई पेट हवा - इस प्रकार जीना चाहिए। घी खाने से भी आदमी बीमार पड़ जाता है। मैंने मन में कहा कि फिर तो आदमी कुछ भी न खावे तो १०० वर्ष जी सकता है। वह फिर बोला —— "तुम सब का वजन बढ़ गया है। तुम सब जवारी खाके तगड़े हो रहे हो।" हमने उत्तर दिया —— "यह तो ठीक है कि हम निजामाबाद से बढ़ गए हैं पर जेल के प्रथम तोल से फिर भी घटे हुए हैं। तुम्हारी फाईल ही तुम्हें

बता सकती हैं।

सिर्फ पेट खाने के बारे में उनसे एक बात और कही। एकबार अरब में हिन्दुस्तान के बादशाह से भेजाहुआ हकीम पहुंचा। हकीम वहां १वर्ष रहा - फिर अरब के बादशाह से बोला - जहांपनाह! यहां कोई बीमार ही नहीं - इसवास्ते मेरा यहां रहना बेकार है। राजा ने प्रश्न किया - "यहां कोई बीमार क्यों नहीं?" हकीम ने उत्तर दिया - "क्योंकि यहां के लोग $\frac{1}{3}$ पेट रोटी खाते हैं - $\frac{1}{3}$ पेट पानी तथा $\frac{1}{3}$ पेट हवा के लिए छोड़ देते हैं। कुंवर सूर्यपालसिंह ने उत्तर दिया - यहां हम $\frac{1}{3}$ पेट से ज्यादा रोटी लेते ही नहीं। ताल्लुकेदार की तोंद बहुत बड़ी थी। दिल में आया तो - कि जनाब आपकी तोंद बाहर झांक रही है - आप भी हिन्दुस्तान छोड़कर अरबिस्तान चले जावें। वहां कोई बीमार नहीं होता। आपकी तोंद भी वहीं सुधर जायगी।

सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति

ग

श्री ब्र. लेखराज जी १४
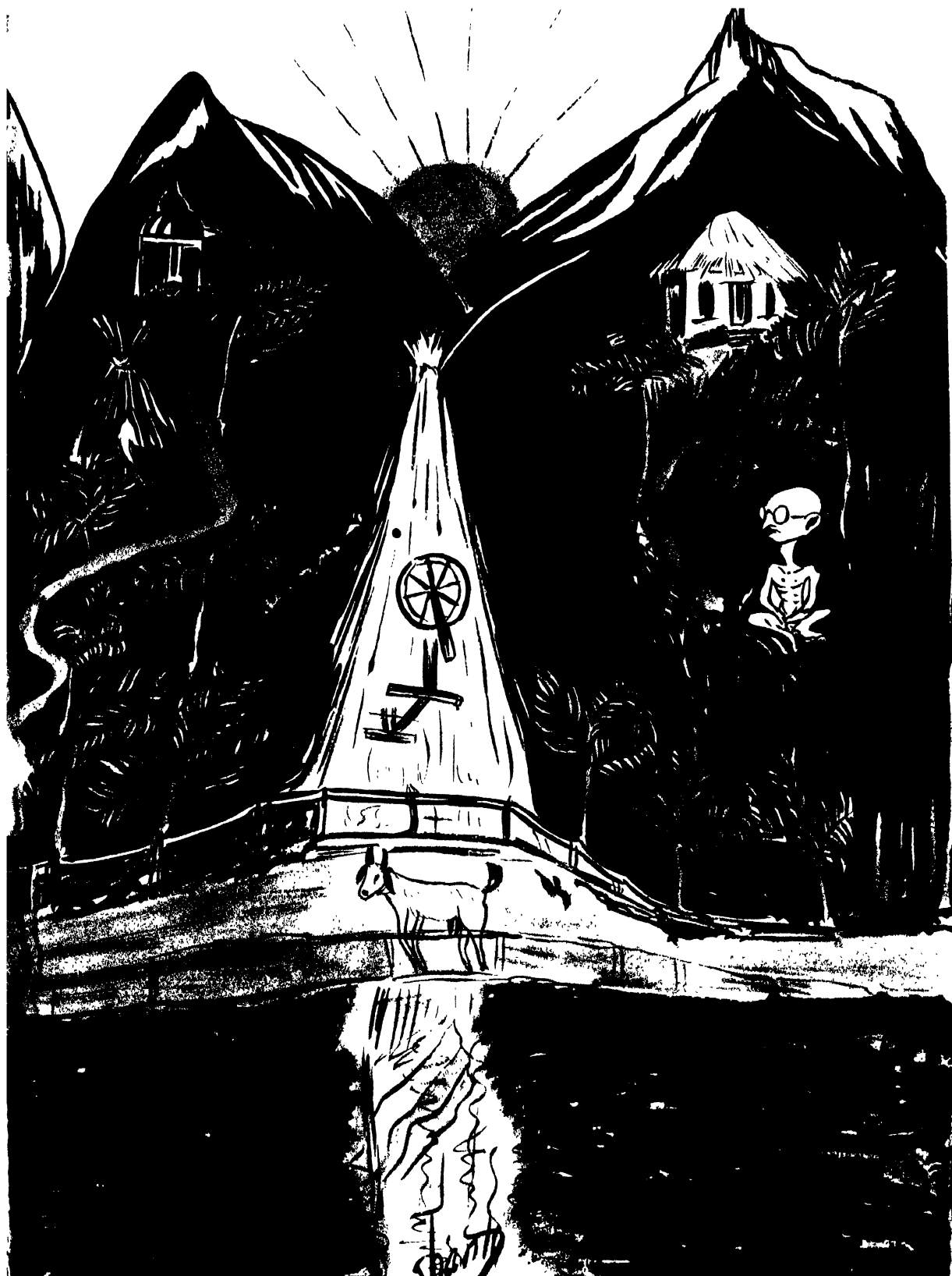
गत अक्तूबर मास की अपनी गर्मियों की छुट्टियों में मैं अपने कतिपय साथियों के साथ "भूलोक के स्वर्ग" काश्मीर में भ्रमणार्थ गया हुआ था। वे दिन वे थे, जब कि हम सारे दिनभर प्रकृति के विविध मनोरम दृश्यों का अवलोकन किया करते थे। मुझे समाचार-पत्र पढ़ने का पिछले ८ वर्षों से नूतन शौक रहा है। इन छुट्टियों में भी मैंने प्रतिदिन समाचार पत्र मोल लेकर पढ़े थे और इन दिनों तो विशेषतया समाचार पत्र इस प्रयोजन से भी पढ़े जाते थे, क्योंकि उन दिनों जगत्प्रसिद्ध आर्य हैदराबाद सत्याग्रह अपने पूर्ण यौवन में आरम्भ हुआ था। मैंने काश्मीर के बाजारों में [illegible] के सम्बन्ध में शब्द निकलते सुने थे। विशेषकर हिन्दू लोग तो इन समाचारों को पढ़कर आनन्द विह्वल हो उठते थे

हमारे भी १५-२० साथी और हमारे कुलबन्धु तथा उपाध्याय भी इस सत्याग्रह में भाग लेकर जाने के अनुमान

- हैदराबाद के जेल के सींखचों में बन्द थे हम लोग बहुत ही उत्सुक थे कि उनका क्या हाल है? उन पर क्या बीत रही होगी? जब कि हम प्रकृति नटी के नाच देखने में ही भूमते फिरते थे।

× × ×

मैंने अभी २ दिन बाद काश्मीर से वापिस जाना ही थी और प्रस्थान करना था। अचानक हमारे काश्मीर यात्री दल के नाम एक पत्र 'कुलभक्त' के पते से आया हुआ हमें डली मार्फत जाने द्वारा प्राप्त हुआ। पत्र खोलते हुए कुछ अजीब सी हालतें हो रही थी। कोई कुछ कल्पना करता था और कोई किसी मानो लम्बी बात की ही कल्पना कर रहा था। किन्तु आज का पत्र एक ऐसी दुःखद खबर लेकर हमारे पास आया था कि उसको पढ़कर सुनते ही हमारा कुछ क्षण के लिए तो स्तब्ध हो गए। हम लोगों को सचमुच जैसे लकवा मार गया हो। पत्र में लिखा था -

"हमारा एवं कुलबन्धु ब्र. रामनाथ १३२८ श्रेणी "धर्म सत्याग्रह" में बलि होगया है बस अमर - और धर्म शहीद हो गया है"

उस दिन हम सब भाई को ही अन्यमनस्क से रहे।

× × ×

आज भाई रामनाथ हमारे कुलमें विद्यमान नहीं है वह तो आज अमर-पद प्राप्त कर चुका है वह आज देवताओं के साथ विहार कर रहा होगा।

किन्तु वह असीम मनुष्य था - उसका रहना इस भूमण्डल पर अनिवार्य था - वह हमसे हा! आज विदा होती गया!!! वह दिन गुप्त हमारा कुलबन्धु निजाम सरकार के अन्यायपूर्ण और वे शासित मनों के हाथ अपनी ही पुलीस अफीसर द्वारा चढ़ाई दिया गया। ओह ही! धर्मोन्मत्तता! तू पुरुषहोकर भी पशु से भी अनपेक्षित कर्म कर सकती है!!! ?

× × × ×

सन १९३८ के जुलाई मासमें मैं भारतवर्षीय जो ति. "दार्जिलिंग" की यात्रा पर गया था। भाई रामनाथजी मेरे साथ पहुँची गया था। उनपात के लिये ही इधर स्मृतियाँ याद रहने से आज मन दुःखी हो जाता है जब २ जीवनमें दार्जिलिंग के प्राकृतिक सौन्दर्यादिक दृश्यों का स्मरण करो जहाँ जाकर जीवनमें स्फूर्ति दिया होगा - वहीं पर भाई रामनाथजी स्नेह - भरा शील - मूर्तिकी सम्मुख आकर पूछ उठा होगी? "क्या तुम हमें सदा के लिए भूल गए? याद रखना कि हम भी तुम्हारे एक कुलबन्धु रहे हैं!"

ले. श्री. सुषिर

पीछे से आकर मेरी कापी की ओर एक टक देखने लगे। मैंने जरा नम्र होकर पूछा- "क्या लिखूं?" कापी के बीच में लिखा था "रामनाथ"। मुझे उनका दृष्टि-विक्षेप समझने में देर न लगी। वे "पश्यन्नपि न पश्यति" की stage में शायद पहुंच चुके थे। कुछ देर खड़े रहे और अन्त में एक निःश्वास छोड़ कर वे चले गए। मैं उनके विचारों से अभिज्ञ न हो सका।

जब मेरे कर्णगह्वर में "रामनाथ" ये शब्द प्रवेश पाते हैं, तब न जाने कितनी देर तक वे गूंजते ही रहते हैं। मुझे याद आती है- कूड़े-कचरे से रहित, बिल्कुल स्वच्छ, सुव्यवस्थित, चित्र-सुसज्जित, सुन्दर कमरे में मैं अपना प्रथम चरण धर रहा हूं। ठीक सामने की, बाईं ओर आधे लिपटे हुए बिस्तर पर, अपनी हलके से हरे रंग की महीन जाली की लोई ओढ़े हुए, खिड़की के पास सिकुड़ कर सोए हुए एक व्यक्ति पर बलात् दृष्टि पहुंचती है।— फिर देखा वह कमरे का कोना सूना है। उसका आधा लिपटा बिस्तर सदा के लिए पूरा लपेट दिया गया है। और फिर—

उसे भी खोलना ही न हो। भोजन में भी स्वारस्य नहीं रहा। खेल में भी आनन्द खटका। इस प्रकार इतने व्यक्तियों का अभाव पद पद पर हर एक को याद दिलाया करता था। बहुत से लोग अपनी खोली भर्ती को लेकर बाहिर टहलने जाते। वहां भी उनका मन भर जाता हो — ऐसी बात नहीं।

आज मैं देखता हूं, चाल-पहल के साथ मेरा कमरा भरा भरा है। मेरी मेज पर बिखरी हुई पुस्तकें किसी कबाड़ी की दुकान की याद दिला देती हैं। मैं उन्हें व्यवस्थित करते थक जाता हूं; फिर भी जिस समय चाहें, आप देखते हैं कि कोई कापी, किताब या कलम दवात आंखों में अवश्य खटकेगी। अब झाड़ू की बारी भी शीघ्र नहीं आती। अलमारियों पर ताला भी नहीं है। बागीचों में बहार है। बेंचें (Benches) भर गई हैं। दरी पर बैठने को जगह भी कई बार नहीं मिलती। परन्तु उस कमरे का कोना अभी तक खाली है। दर्शन के अन्तर में सोने वालों का अभाव है। मुख्तारी दलों की संख्या में कमी आ गई है। बैंड बजाने वाले अभी तक पूरे नहीं हुए। एक पाइप अभी तक अछूता है।

कुलबन्धुओं के हैदराबाद जाते हुए मैंने जरा भी ऐसा विचार नहीं किया था कि इनमें से किसी के भी लौटने की सम्भावना नहीं है। मैं तो सोच रहा था, जितने जाएंगे, उससे भी अधिक जाएंगे, वे सब इसी प्रकार लौट आएंगे। और जेल से बाहिर तो सभी ने ही कदम रखा था! अन्धतामिस्र निशा के गहन अंधकार में, संसार को बिना बताए ही, एक जगह मन प्रकाश किया गया।

उसके नीचे कुछ ही व्यक्तियों का एक दल + गोलाकार। चारों ओर परिचित और आत्मीय। वाद्य की सुमधुर थिरकने वाली स्वर, ताल के साथ। माताओं के स्निग्ध करों में मृदु-अरुण फूलों की माला अगले क्षण क्रम क्रम से पुत्रों के गले में। माता की सुकोमल, कांपती हुई अंगुलियों में लगा सान्द्र-शीतल द्रव ~~कांपते हुए~~ स्थिर पुत्रों के ~~सिर~~ भाल पर। वाद्य ~~की~~ के उसी स्वर-ताल के साथ वे कुछ दूर अन्धकार में ले जाकर छोड़ दिए गए।

उस समय किसी के भी चेहरे पर मुस्कुराहट, किसी की ~~व~~ वाणी में हास्य और किसी की क्रियाओं में ~~चां~~ चांचल्य नहीं था; मैंने जब किसी के साथ हंसी की बात आरम्भ की; उस समय भी उसकी फटी हुई आंखें, फूला हुआ चेहरा, गोल बनाये हुये मुख, निश्चल हाथ, मन्दगति पैर देखकर मैं सन्न करा जाता। मुझे बहुत भय लगता। सभी अपने अभीष्ट बन्धुओं के साथ धीरे धीरे मूक-वार्तालाप करते हुए, रात्रि को निस्तब्ध ही बनाए रखते हुए, ~~आगे-आगे बढ़ते हुए स्टेशन की ओर जा रहे थे।~~ गुरुकुल, वृक्षों की पंक्तियां, नहर का किनारा, मठों का अवस्थान क्रम-क्रम से छोड़ते हुए, आगे-आगे बढ़ते हुए स्टेशन की ओर जा रहे थे। स्टेशन पर भी गाड़ी के आने में देर थी। मैं सबके पास गया। किसी के चेहरे को देखकर न तो मुझे प्रसन्नता हुई और न ही सन्तोष। मैं इससे अधिक नहीं कहूंगा। सारे समय में मुझे रामनाथ तो दिखाई ही नहीं दिया। गाड़ी पर चढ़ने के बाद भी मैं सबसे मिला।

ऐसे समय में रामनाथ के ही चेहरे को देखकर ही मैं कह सकता हूं कि उससे मुझे संतोष हुआ। मैं किसको भी विदा देने गया, मालूम नहीं या तो वे चाहते ही नहीं थे कि उन्हें विदा दी जाय, या मैं ही उपेक्ष्य था। केवल रामनाथ हट-सा, जो कुछ मुस्करा रहा था। उसके दो वाक्यों में ही उत्साह फूटा पड़ रहा था। एक सज्जन ऊपर से तो बहुत खिल रहे थे, परन्तु उनकी आन्तरिक अवस्था का भी प्रकाशन हो ही रहा था। इन दो चेहरों का मुकाबला नहीं किया जा सकता। मैं उनकी भी प्रशंसा करूंगा; जिन्हें सब समझ रहे थे कि वे दिल्ली में सैर करने जा रहे हैं; परन्तु हैदराबाद की जेल से निकलते हुए जेल-साथी अपने में एक देवता का अभाव समझने लगे थे।

x x x x

~~कलकत्ते में फिर~~ जेल से भी हम लोगों का पत्र-व्यवहार चल रहा था। कितने ही पत्र यहां से गए और वहां से आए। वहां के पत्रों में लिखा होता था— हमारे पत्र न भेजें; परन्तु तुम इतना सार भेज दिया करो!!! कोई अपने बच्चों की व्यथा को व्यथा भरी भाषा में, संसार को जताने में भी ही प्रयत्न करता था। कोई अपने विक्षुब्ध चित्त को शांत करने के उद्देश्य से लिखता था। परन्तु रामनाथ का किसी के भी पास पत्र नहीं आया। और न ही उसे फिर किसी लिखा भी। उसने अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्था का हाल नहीं बताया। अपने उद्वेग का शमन नहीं किया। अपने को विक्षुब्ध, उद्विग्न शायद अनुभव ही नहीं किया। यहां तक कि ~~उसके~~ अपने ऊपर किये गए अत्याचारों का

भी निकला सिवाय एक दो — वह भी थोड़ा — केवल शरीर पर पड़े हुए अवशिष्ट निशानों की संक्षिप्त कहानी — कहकर सदा मौन हो गया है। जो चोटें हड्डियों के अन्दर थीं, जो छिपी हुई थीं, दीखती नहीं थीं; उनकी कहानी न कोई जानता है, और जानता है, तो कहने वाला।

× × × ×

कलकत्ते में विक्टोरिया मेमोरियल ही शायद देखकर आए थे, या कालिका मन्दिर —। थके हुए थे। एक पत्र मिला। गुरुकुल से एक बन्धु ने लिखा था कि रामनाथ की देह ही इस संसार में सुगन्धित पदार्थों से अग्नि में आहुत करने के लिये रह गई है। धर्म के लिये कहूं या किसी भी साहस के कार्य के लिये कहूं — वह शरीर को तो क्या मन को भी आहुत कर चुका था, अपने जीवन काल में ही। हम सबने मिलकर उसकी दिवंगत आत्मा के लिये प्रार्थना की। सच कहता हूं — आज मैं दूसरी बार गम्भीर हुआ था। पहली बार तब, जब मैं यह विचार करने लगा हूं कि मानलो यदि गांधी को ईश्वर ने बुला लिया हो (परमात्मा ऐसा करे या नहीं)। और दूसरा यह अवसर। जब तक कितनी ही दिवंगत आत्माओं के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर चुका हूं। मैं यही सोचा करता था; आखिर जाना तो है ही, शोक की क्या आवश्यकता है। दो एक बार अन्त्येष्टि-संस्कार में भी मुझे जाने का अवसर हुआ है। वहां पर न जाने क्यों — मुझे हंसी आ जाया करती थी। इसके लिये मैं क्षमा मांगता हूं।
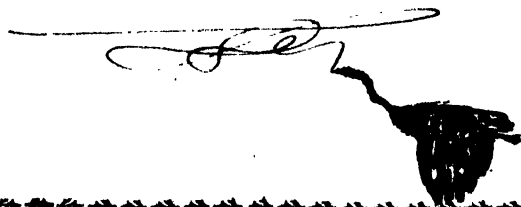
परन्तु उस दिन उस सुविस्तीर्ण कलकत्ते के सुविशाल- ~~[illegible]~~ आर्यसमाज मन्दिर के दर्जे पर बैठे हुए

मैंने शान्ति की प्राप्ति के लिये ही प्रार्थना नहीं की - अपितु
~~परमात्मा से~~ साधिकार कह रहा था कि उसे स्वर्ग मिलेगा।
अगर न मिले तो उसे छीन लेना चाहिए। आज अनन्त शान्ति के
साथ कुछ थोड़ की लड़ने की इच्छा भी हो रही थी कि उसे
स्वर्ग ही मिलना चाहिये - स्वर्ग - स्वर्ग;

आंखें खोलने पर मालूम हुआ कि सीपी के अन्दर
कितने मोती भर चुके थे। कल्पना करने लगा कि चेतना के
अन्तिम क्षणों में वह कितना शान्त होगा, कितना सौम्य, अनुद्विग्न,
अम्लान, अचिन्त्य। केवल एक कसक उसके दिल में होगी
कि अन्तिम बार नेत्र भर कर अपनी कुल-माता को निरख सकता।

१९५० में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से तो, परन्तु आत्ममनः
सन्निकर्ष से देखता हूँ - एक लम्बी आकृति वाला चेहरा, कुछ
नोकीली नाक; माथे पर बिखरे बाल, हलका सा सांवला रंग, नीचे
से होंठ एक दम पतले, और कुछ गोल गोल, अपने में सिकुड़ा
हुआ। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि उसका प्रथम परिचय और
साथ कैसे हुआ। परन्तु इतना कह सकता हूँ, न तो रोमांटिक
ढंग से, नहीं असभ्यता से, नहीं ही विचित्र व्यवहार से।
अनायास, अनजाने, स्वयं मानो हम पहले से ही परिचित
हों। मैं समझता हूँ कि यह उसका स्वभाव था। अपने कार्य
में लगे रहने वाला, किसी की सहायता की अपेक्षा किये
बिना ही। चुपचाप, कार्य की समाप्ति तक लगा ही रहता
था। वह जिद्दी आदमी था, और बिना के परावलम्बन -
किसी की सहायता लिए बिना ही अपने कर उठे थे।

उसके गुणों की मीमांसा और लोगों पर [illegible]।
जेल दीवारें, जेल के अधिकारी, और जेल के कैदी साथी उसके गुणों
का गान कर रहे हैं। हॉकी के खिलाड़ी, [illegible] [illegible],
कला के पुजारी, गुणानुरागी, सभी के उसका आदर [illegible]
है। मनुष्य की क्रियाओं को, भावभंगिमाओं और विचारों को समझने
वाले ही कुछ कहें, मैं व्यक्तियों में इन्हीं का उलट पुलट करने
वाला क्या कह सकता हूं। तो भी कुछ कहने की जबर इच्छा
होती है। वह जो करता सोचता था, समझता था, वह करता था। यही
कारण है कि वह हैदराबाद [illegible] वह सतत परिश्रमी,
उत्साही, साहसी, स्वावलम्बी था। ये गुण कहने [illegible] इस
लिये नहीं कह रहा था। उसके अन्दर जितने भी गुण कहे जाएं
उतने ही थोड़े हैं। उसके छोटे कार्यों को देखना ये गुण और
सामने [illegible] आ जाया करते थे और हैं। इन सबके सैकड़ों
उदाहरण दिए जा सकते हैं। मैं तो समझता हूं, ये ही
गुण मानव को उन्नत, उपयोगी, देदीप्यमान और सफल
बनाते हैं। सफलता के भी जीवन की सफलता का साधन
मैं नहीं समझ पाता [illegible] इनके अतिरिक्त। उसके इन गुणों को
प्रकट करने वाली घटनाएं हमारी [illegible] भी, समय समय की
गोष्ठियां कहा करती हैं और वहां बैठी, मेरी भी इच्छा होती
यहां पर भी उनकी चर्चा विस्तार से कर दूं और साफ
सिद्ध कर दूं कि भारत का वह एक रत्न था।

ले. श्री. सतीश १३

उस दिन रविवार था। सूपा के, अधिकारी परीक्षा में उत्तीर्ण ब्रह्मचारियों ने आना था। सब उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे. समय बीतता गया और सन्ध्या भी हो गई पर वे न आए। अगले दिन रविवार आया हम अपने नियम के अनुसार नदी के घने जंगलों में घूमने चले गये। शाम को जब लौट कर आये तब मालूम पड़ा कि सब आ गये हैं। संध्या हवन के समय उपस्थिति हुई सब का नाम मात्र से परिचय हुआ और बड़े शिष्ट हास्य के साथ, उस दिन नूतन छात्रों ने खड़े होकर उपस्थिति दी थी। कुछ दिन और बीते। अब तक भाई रामनाथ नहीं आये थे। एक दिन अचानक ही मैंने, अपरिचित सांवले रंग के सीधे-[illegible] कठोर शरीर वाले [illegible] के दर्शन किए। मेरा, परिचय जानने का कौतूहल हुआ। मेरी जिज्ञासा शान्त हुई। यह भाई रामनाथ [illegible]

जीवन में प्रतिदिन हमें कितने अपने रास्ते पर— चलते हुए व्यक्तियों के दर्शन होते हैं। नगरों में, उत्सवों में, अपनी यात्राओं में हम कितने आदमियों को पता नहीं किन २ भावनाओं से देखते हैं और फिर अपने कामों में लग जाते हैं। संसार की इस विशाल जन संख्या के बीच में खड़े हुए हमें हमारे संस्कार और सं-बन्ध हमें इस प्रकार से बता देते हैं कि हमारा हृदय किन्हीं विशेष व्यक्तियों और समुदायों के प्रति आकृष्ट होता है। उस दिन प्रथम दर्शन में [illegible]. उसी सम्बन्ध का सूत्र पात हुआ था वह सम्बन्ध आज भी नहीं [illegible]।

चलते हुए समय चक्र के साथ हमारा सम्बन्ध भी अधिक-अधिक दृढ़ होता गया। भाई रामनाथ ने वेद महाविद्यालय में प्रवेश किया। उन्हें अपनी हिन्दु संस्कृति से अगाध प्रेम था। और उसकी रक्षा के लिए उतने ही कट्टर भी थे। वे मेरे विचारों के साथ पूर्ण हिन्दु-महासभावादी थे। इसका कारण उनकी अपनी-एक हृदय विदारक पारिवारिक घटना थी. आज भी जिसको स्मरण करते हुए रोमांच हो आता है।

अब हमने अपने जीवन मार्ग पर साथ साथ चलना आरम्भ किया। मैंने सम्भवतः महाविद्यालय [illegible] सारे समय ही साथ पढ़ना होता था। २४ घंटों का साथ था।

इस समय के वे दिन आमोद प्रमोद में हंसने और हंसाने में ही इतनी जल्दी बीत गये कुछ भी पता नहीं लगा। उस समय हम नहीं समझ सके कि जिस राजनाथ के साथ खेल कूद रहे हैं लड़ झगड़ रहे हैं श्री राजनाथ अपने अन्दर विश्व के उस-महान कलाकार की विभूति का एक अंश लेकर आया है। हम नहीं जानते थे कि परमात्मा के एक कार्य का सम्पादन करने के लिए वह निमित्त बनकर आया था। आज जब वह नहीं रहा तब बिल्कुल अलग होकर वे बातें कितने स्पष्ट रूप से सामने आ जाती हैं। एक २ बात, प्रत्येक क्रिया, मिलाकर सब चित्रपट की आकृतियों की तरह सामने आकर खड़ी होती हैं।

भाई राजनाथ में एक गुण था। वे उग्र थे, चपल थे, केवल उग्र ही होते तब शायद कदम २ पर असफल रहते, उनमें उग्रता के साथ गम्भीरता भी थी जिसने उन्हें आगे बढ़ने में सदा ही सम्तुलित रखा। हम जानते हैं और सब साथ रहने वाले जानते हैं कि बिलकुल किसी बात के समझ में आने पर वे उसे पूरा करने से कोई रोक नहीं सकते थे।

एक छोटी सी बात याद आती है। हमारे में यह

एक सामान्य प्रवृत्ति है कि हम सब अपनी २ शाखाओं के गुण — और दूसरी शाखा की मज़ाक उड़ाते हैं, यह हंसी कभी २ विकट रूप भी धारण कर लेती है — परन्तु हमारी कक्षा के कतिपय न बन्धु, विशेषतः भाई रामनाथ — जब भी कभी ऐसी चर्चा चलती थी जिसमें गुरुकुल सूपा या इन्द्रप्रस्थ के गुणदोष की विस्तृत व्याख्या होती तो सदा हंसते २ सब दोष स्वीकार कर लेते थे। और उस अकल्पनीय अन्तर्द्वन्द्व का कभी भी अवसर नहीं आने पाया। मुझे याद है कि किस प्रकार उन्होंने जब मैं उनके साथ गुरु० सूपा गया था तब अपनी जिम्मेवारी समझते हुए मुझे यह नहीं लगने दिया कि मैं किसी अपरिचित स्थान पर आ गया हूं। इ......।

दिन पर दिन बीतते चले गये। अब जीवन धारा का नया प्रवाह प्रारम्भ होता है। हमारी परीक्षा होनी थी। भाग्यवश ही धर्म युद्ध का शंख बज चुका था। आत्मिक आहुतियां गुरुकुल ने देनी थीं; एक छोटी सी १५ व्यक्तियों की टोली तैयार होकर चली, उसमें भाई रामनाथ थे, मुझे भी साथ जाने का अवसर प्राप्त हुआ। हमारे वे दिन कितने अच्छे थे। हम बिल्कुल निश्चिन्त थे, सब एक ही मार्ग पर चल रहे थे। सबका उद्देश्य एक था; विजय या मृत्यु.

दोनों में किसी एक को चुनना था, जिसकी पूरी आशा थी।
हम सत्य पर थे, परन्तु यदि न चुनते हो तो दूसरे मार्ग पर
तो चल ही रहे थे। यदि धार्मिक सबन्ध हो तो मौत से —
लड़ने का आनन्द वही जानते हैं जिनको ऐसा सौभाग्य प्राप्त
हुआ है। किसी ने कहा है कि — मित्रों के साथ मौत के मुख में
जाना . उत्सव है

हम हैदराबाद पहुंचे। कैसे पहुंचे यह लम्बी कहानी
है, सत्याग्रह किया, फिर उसके बाद गिरफ्तार कर लिए गये।
यहां पर एक घटना हुई। कहने को तो हम सब ही सिर
पर कफन बांध कर कातिल को ढूंढने निकले थे, परन्तु
इस घटना ने सिद्ध कर दिया कि आर्य समाज इस बात
में हम से कुछ आगे थे- थाने में पहुंचने पर हमारी
तालाशी प्रारम्भ हुई, सर्व प्रथम मैं था, सम्पूर्ण क्रिया कलाप
होने के पश्चात् मुझसे मेरा यज्ञोपवीत उतारने को कहा गया
यह कैसे संभव था; मैंने कहा कि प्राण निकल जाय पर मैं स्वयं
इसे नहीं उतार सकता, उस समय पुलिस बल पर आत्मिक
बल की विजय हुई मेरा यज्ञोपवीत जबरदस्ती तोड़ दिया
गया, उस समय की अपनी अवस्था मैं ही जानता हूं। कहने

को तो तीन धागे के कच्चे तार टूटे थे पर ये तीन धागे-
ही वे तीन धाराएं थीं जिनसे हमने अपने जीवन का रसग्रहण
किया था और अपनी संस्कृति की दीक्षा ली थी। हमारा यज्ञ-
धर्म युग का सत्यापन शक्तिमय था, काश! शक्तिमय न-
होता- जो- मेरे बाद मामू जान जब भी आते थे उन्होंने इस
घटना को देखकर एक दम गज़ब की कड़कती हुई आवाज़
में कहा - यह क्या हो रहा है, और साथ ही चिल्ला उठे हाय:
लालजी नहीं रहे। पाते हम भाई सब बाहर निकल आए-
आगे की बात जाने दीजिए-। यह तो एक सामान्य घटना
थी उससे पूर्व कई बार हम चाची के जालों में मामू जान
जान के साहस और धैर्य का परिचय प्राप्त कर चुके थे।
यह कोई नई बात न थी।

जेल में हम कुछ दिन और साथ रहे, एक
ही कोठरी में रहे, अध्ययन या अन्य साधनों द्वारा तथा-
दैनिक कृत्यों से ही हमारा दिन बीत जाता था। रात को-
अपनी राम कहानी सुनते सुनाते सवेरा कर देते। उस कोठ-
सी कोठरी में हम जैसे लोग ही मुख टेक कर सोने वाले ही
सो सकते थे, केवल सुमित प्रकाश उपलब्ध वाली वायु को

हमारे जीवन की पवित्रतम घड़ियां उन में बीती थीं। यदि अत्युक्ति न हो तो हमने वास्तविक जीवन के सत्य दर्शन यहीं किये थे -- । खैर, हम मुक्त कर दिये गये। हैदराबाद स्टेशन पर, दूसरे पर, ६ मास बाद भाई श्यामलाल के पुनः दर्शन हुए, विजय के उल्लास और आत्मीय जनों की प्राप्ति के कारण अन्तर में एक प्रसन्नता थी। मैं उसे शब्दों में व्यक्त न कर सका। मैं बीमार था अधिक नहीं बोल सकता था। मैंने कहा श्यामलाल तुम तो बहुत ही कमज़ोर हो गये हो उसने कहा था - अरे भाई! तुम्हारे चले जाने पर मैं यहां अकेला रह गया था, मुझे इन्होंने बहुत मारा, उसने अपनी मार के निशान दिखलाए और कहा - कमज़ोरी तो कुछ दिनों में स्वयं दूर हो जायगी। भाई जी वे घटनाएं याद करके कि किस प्रकार स्वयं दे कर के मुझे उसका बिछौना था संकोच होता है, मैं अपने को केवल कृतज्ञ ही कह सकता हूं। हम कोल्हापुर पहुंचे। मुझे हस्पताल में भेज दिया गया। भाई श्यामलाल अपनी कमज़ोरी की हालत में भी रोज़ सवेरे शाम तीन मील पैदल चल कर मुझ से मिलने आते थे। यहां पर मेरे शीघ्र अच्छा होने की कोई आशा नहीं थी, गुरुकुल से तार

आशा था कि तुम शीघ्र आ जाओगे, मेरे लिए अधिक ठहरना व्यर्थ था। सबने चलने की तैयारी की। मुझे वह दृश्य अच्छी तरह याद है जब भाई रामनाथ ने चलते हुए कहा था - सतीश! जल्दी अच्छा होकर गुरुकुल आना अभी तो और कई परीक्षाएं देनी हैं। उस समय की आकृति आंखों के सामने स्पष्ट है - सिर पर मशीन से कटे हुए छोटे 2 बाल थे, गलकट कुर्ता था और खद्दर पैरों में पजामा था, यह मेरे लिए उनकी अन्तिम झांकी थी। सब लड़के उस समय नमस्ते करके हंसते हुए यह वचन देकर कि हम गुरुकुल चलकर फिर मिलेंगे विदा हो गये, जब तक मुझे दीखते रहे मैं उन्हें देखता रहा, उनके हस्पताल को पार करके ओझल हो जाने के बाद मैं भी अपने तकिये में मुंह छिपा कर पड़ गया।

अब मैं अच्छा होकर देहली पहुंचा, वहां पहुंचते ही दुःखद समाचार प्राप्त हुआ, सहसा विश्वास नहीं हुआ, यह तो होना ही था, मनुष्य अपनी हानि की बात पर एक दम विश्वास नहीं करता है। मैंने सोचा उसने मुझे कहा था कि अभी बहुत परीक्षाएं -

देती हैं। क्या परमात्मा ने हम सब में उसी को योग्य समझा कि वह उनके पास रहे? मेरा ध्यान खिंचा. एक चित्र खिंच आया कि विद्युतगृह निगमबोध घाट में उसकी चिता शव करती हुई जल रही है। और उसके अभिभावक इस कार्य को कितनी वेदना से कर रहे हैं। सन्ध्या को उस सुदूर एकान्त घर में आज दीया कैसे जलेगा? उस घर का दीया तो आज पीछे छूट गया है दूर बहुत -- दूर, ऊपर गया, मैंने ऊपर देखा — 'प्रभो! उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करना'

आज आँसू सूखते जा रहे हैं परन्तु उसकी दर्दभरी याद अन्तर में एक गहरी वेदना भर जाती है। उन पुरानी सब बातों की सत्ता अब केवल स्वप्न रूप में ही रह गई है। क्या कभी भुलाया जा सकता है?

— o —

ले. श्री. आनन्द ११

रामनाथ, कभी २ सचमुच तुम्हें याद करके रुलाई आ जाती है। तुम अपने आयुष्य के कितने छोटे से वय:खंड में, संसार से किनारा कर गये; हाय!

उस रात को एक सपना आया। उसमें मैंने देखा, हमारा दिवंगत वर्गबंधु हमारे नज़दीक आया हुआ है; पहले से भी ज़्यादह खुश बाश, पहले से भी ज़्यादह मोटा ताज़ा, पहले से भी ज़्यादह दीप्तिमान्!

मैंने उसे देखते ही, जाने किन कोमल भावनाओं से भरे हृदय से संबोधन किया— 'रामनाथ...!' और तत्काल रो पड़ा।

आज भी उस रात वाले सपने में, रामनाथ के मुख से उभरते हुए २ के दृढ़-ता से भरे वचन मेरे कानों में गूँज से रहे हैं — 'सोओ मत, काम करो!"

रामनाथ! मेरी जन्मभूमि के वांस्ते अपनी जवानी से भरी ज़िन्दगी को कुर्बान करने वाले मेरे वर्गबंधु रामनाथ! क्या इन्हीं उपर्युक्त आदेश वचनों में तुम्हारा अशेष-जीवन प्रतिबिंबित नहीं हो रहा ?

देव, तुम्हारा शुभ सम्पन्न करे.

देव, तुम्हारा शुभ सम्पन्न करे.

देव, तुम्हारा शुभ सम्पन्न करे.

यश की एक समिधा

रामनाथ

श्री सत्यवीरजी एकादश

करीब चार साल बात पुरानी बात है। उस समय रामनाथ ९म श्रेणी में पढता था। गुजरात के मुख्य नगर ~~अहमद~~ ~~अहम~~। अहमदाबाद में असारवा नाम का उपनगर है। नाहीं बहुत दूर है और नाहीं बिलकुल पास ही, हां इतना अवश्य है कि उस गांव से प्रतिदिन कुछ मजदूर अहमदाबाद की राक्षसी मिलों में काम करने जाया करते थे। हां, तो उस असारवा उपनगर की बगीची के पास एक वटवृक्ष है। उसके नीचे एक मीठे जल का कूआं जहां कि सभी जाति की स्त्रियां पानी भर सकतीं हैं। जहां तक कि अस्पृश्य कहलाने वाले लोगों का भी पानी भरने का उतना ही अधिकार है जितना कि सवर्णों का।

हां तो लगभग सायंकाल का समय था। हिन्दु और मुसलमान हरिजन और चमार सभी वर्गों की स्त्रियां कुएं पर पानी भर रहीं थीं। उनमें से एक स्त्री कुछ दूसरे से अधिक स्वच्छ मालूम पड़ती थी। वह थी उस गांव के मुखिया की पुत्रवधु। जैसा कि गुजरात में रिवाज़ है पानी भरते भरते उसके कलश पर किसी मुसलमान स्त्री के छींटे पड़ गए। जैसे सोडियम पर पानी डालते ही आग भड़क उठती है बस इतनी सी बात पर एक महाभारत ठन गया। उसने इसी बात को घर जाकर कुछ कहा बस फिर क्या था उस का देवर भागा २ वहां आ पहुंचा उधर से कुछ मुसलमान भी लाठियां और कुल्हाड़े लिए हुए आ पहुंचे। उधर स्त्रियों में गाली रूपी शास्त्रार्थों से युद्ध ठना और इधर निर्दय मुसलमान निःशस्त्रों से खूब हाथ साफ़ करने लगे। थोड़ी ही देर में पुलिस आ पहुंची और मामला ठंडा पड़ गया। यह बताने से पहिले कि उसके विषय में क्या हुआ, कुछ उसके वंश के बारे में भी जानले।

उसी असारवा नाम के गांव में ही एक संपन्न कुल में रामनाथ का जन्म हुआ। उसके पिता का नाम मोतीलाल और

माता का नाम था पार्वती। यह प्रायः कम ही देखने में आता है कि एक ही पिता की सब संताने स्वभाव में एक ही हों। परं इस परिवार के सब भाइयों का स्वभाव एक ही जैसा था। एक से एक बढ़ कर साहसी था। रामनाथ उन सब में छोटा था। इतना छोटा होते हुए भी उसका साहस किसी वीर योद्धा से बढ़ कर ही था।

२०.

अहमदाबाद के Civil अस्पताल में एक रोगी पड़ा हुआ है जिसके सिर पर गहरी चोट है जिसे देखते ही आदमी का दिल भर आता है। उसके सिरहाने बैठी हुई उसकी माता जी रो रहीं हैं। एक अजीब क्रन्दन हो रहा है। परन्तु उस घायल के मुंह से आह तक नहीं अब भी वह होश में है और वह पुलिस को अपना बयान दे रहा है। डाक्टर भी अवाक् है। वह कह रहा है आज तक कोई ऐसा घायल इस हॉसपिटल में नहीं आया जिसे इतनी चोट लगी हो और उसके मुंह से उफ़ तक भी न निकले। धन्य उस वीर को ऐसे वीरों की उस भारतमाता को आवश्यकता है। और तभी भारत स्वतंत्र होगा। यह थी डाक्टर की उस घायल के विषय में सम्मति। वह था रामनाथ का बड़ा भाई। यद्यपि वह आजकल इस संसा

में नहीं है परन्तु धन्य है उस वीर को जिसकी ने अपनी मामी की रक्षा के लिए जीवन दे डाला।

3.

इधर रामनाथ विद्याभ्यास के लिए आ पहुँचा है। उसे एक लाठी की चोट थी जो शीघ्र ठीक होगई और वह भी पूर्ववत् विद्याभ्यास में लग गया। पर उसके दिल में मुसलमानों के प्रति आग भड़क रही थी। जो कि किसी के खून की प्यासी थी। वह आग तो शनैः शनैः बुझ गई परन्तु अपने पीछे एक अमिट प्रभाव छोड़ गई जो कि अब तक भी उसके हृदय को प्रभावित करती रही।

रामनाथ एक पतले से बदन का उन्नतभाल का नवयुवक था। उसके चेहरे से एक अपूर्व साहस झलकता था। ऐसे कई मौके पर जब कि मोटे ताज़े शरीर खड़े मुंह ताका करते थे रामनाथ एकदम लपक कर भिड़ जाता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार लंकाविजय में उससे बड़े हट्टे कट्टे शरीर वाले किसी को पकड़ने का साहस न करते थे रामनाथ कूदता फांदता किसी से भिड़ जाता था। उस समय सभी के मुंह से निकल रहा था रामनाथ है तो पतला पर है साहसी। उसमें हरेक काम को करने में उत्साह

दिखाई पड़ता था क्या खेल में क्या विद्याध्ययन में। यही नहीं जिस प्रकार वह स्वयं उत्साही था उसी प्रकार वह दूसरों को भी उत्साह दिलाता था। अभी ताज़ी ही बात है उसने मेरे पास एक खत भेजा था जिसमें कि मुझे पढ़ने के लिए उत्साह दिया गया था। मेरे पास आज वह पत्र नहीं अन्यथा जरूर प्रकाशित करवाता। मैंने उसका उत्तर भी लिख छोड़ा था। इसी ख्याल से कि चलो का-गड़ी जाकर तो मिलना ही है। परन्तु यहां आकर न मिल सका। उसे तो उसके दिल की आग हैदराबाद खींच ले गई थी। साहस मनुष्य के द्वारा कैसे २ पवित्र काम करवाता है। रामनाथ वहां की एक पवित्र समिधा बना था।

रामनाथ और अन्य सत्याग्रही भाईयों का जिन्होंने कि इस महान् यज्ञ में अपनी आहुति दे दी है उन्होंने आर्य जाति के उज्ज्वल यश में से हमारे लिए एक पवित्र वायुमंडल तैयार कर दिया है। अब इस वायुमंडल को स्वच्छ रखने का काम हमारा है। यद्यपि रामनाथ आज हमारे बीच नहीं है। हम परमप्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे। इति शम्।

अज्ञात दिशा की ओर

ब्र. रणवीर १३

हाँ, यदि मैं भूल नहीं करता तो उस दिन रविवार का दिन था। कुछ ब्रह्मचारी महाविद्यालय आश्रम के पिछले आंगन में तिर्यक्दण्ड खेल रहे थे, कुछ घूमने का प्रोग्राम बना रहे थे - मतलब इतना ही है - सर्वत्र चहल-पहल थी। चहल-पहल क्यों न होती! क्योंकि छः दिन के घोर परिश्रम के पश्चात् एक छुट्टी आती है। आखिर परमात्मा भी एक दिन का अवकाश लेता है। किन्तु अपने राम ने तो खेल को दूर एक कोने में रख दिया था। खेलना आता, तब तो खेलते भी। उन्होंने लंगोट- उपरना - साबुनादि संभाला और स्नानागार की ओर मटकते हुए चल पड़े। अपने राम ब्रह्मचारियों को खेलते हुए मन ही मन झुंझलाने लगे और लगे अपने माता-पिता को कोसने। किसे मालूम था कि आज कोई आने वाला है। अपने

राम ने दिखाने के लिये जल-क्रीड़ा ही आरम्भ की। स्नान कर चुकने के बाद अपने राम ने राह ली और महाविद्यालय आश्रम की ओर चल पड़ा। न जाने दिल में क्या आया और पीछे मुड़कर देखा, देखा कि एक तांगा आ रहा था। न जाने आज क्यों अपने राम अड़ गये। ऐसा प्रतीत होता था कि सहसा उनके दिल के तारों को किसी ने बलात् अपनी ओर खींच लिया हो। पग उठाने की कोशिश करता किन्तु उठकर फिर वापिस अपने स्थान पर लौट आता। अपने राम बड़े ही विस्मय में पड़े और इधर-उधर ताकने लगे। उस समय अपने राम की हालत उस तोते के पिंजरे जैसी थी जो कि उड़ना चाहता हुआ भी उड़ नहीं सकता। चूंकि वह अपने आप को पिंजरे में विद्यमान लकड़ी का बन्दी समझने लगता है। आखिर मामला क्या है?

— इतने में ही वह तांगा निकट आ पहुँचा और महाविद्यालय-आश्रम के पीछे खड़ा हो गया। खेल पूर्ववत् जारी था। तांगे को रुकता देखकर मैंने बड़े गौर से उसकी ओर देखा। एक मेरे जैसा विद्यार्थी- कद साधारण- रंग सांवला- बड़ी 2 आंखें- और चेहरे पर मुसकान थी, हाथ में सूटकेस और बिस्तरा लिये नीचे उतरा। समीप आकर उसने खेलते एक विद्यार्थी से एकादश श्रेणी के रहने के कमरे

पूछे। उस विद्यार्थी ने - जो कि शायद उस समय एकादश श्रेणी में पढ़ता था - मेरी ओर संकेत करके कुछ कहा। यद्यपि मैंने उसे पहले कभी न देखा था तो भी इतना अवश्य जानता था वह भी मेरे ही जैसा और मेरी श्रेणी का एक विद्यार्थी है। मैं उसके पास पहुँचा और उसने मृदु-मुसकान के साथ पूछा - एकादश श्रेणी के कमरे कौन से हैं। अपने राम ने उसके हाथ से सूटकेस ले लिया और पीछे आने का संकेत करके एकादश श्रेणी की ओर चल पड़ा। रास्ते में नाम-स्थानादि पूछते हुए एकादश श्रेणी के बड़े दरवाज़े में हम दोनों ने प्रवेश किया। मैं मन ही मन बहुत खुश हो रहा था कि - "अब हमारी श्रेणी महाविद्यालय की तीनों श्रेणियों से बड़ी है" - किन्तु किसे मालूम था कि वह नवागन्तुक एक दिन हमारी संख्याओं में एक की कमी कर देगा। साथ ही उसे खिलाड़ी जानकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। अस्तु।

वह मैं ही था जिसका परिचय सबसे पहले हुआ था। उसे अपनी श्रेणी के प्रारम्भ से लेकर सब कमरे दिखाता हुआ सूपियरों के कमरे में ले गया। उसने मुझ से कहा कि स्वामी! आप ने अपना कमरा तो दिखाया नहीं! मैं उसे अपने कमरे में ले गया और अपना स्थान निर्देश करके शौच-स्नानादि के लिये पूछा। वह थोड़ा सा मुस्कराया।

उसके मुस्कराने के कारण को न जानते हुए मैंने शौचालय की ओर निर्देश किया और अपनी राह ली।

यद्यपि देखने में वह बिलकुल साधारण सा प्रतीत होता था किन्तु तो भी किसे मालूम था - गोदड़ी में लाल छिपे हुए हैं। उसका एक महान उद्देश था; उसमें उत्साह और लगन थी। हैदराबाद में होने वाले अमानुषिक अत्याचारों को सुनकर वह बिजली की तरह कड़कड़ाता था। हा दैव! तुमने उसके भाई को भी उसके देखते २ बलात् छीन लिया। मैंने उसे कभी गुस्सा होते नहीं देखा। वह एक निर्भीक - शान्त खिलाड़ी था।

हैदराबाद-सत्याग्रह में जाते हुए उससे मैंने कई बार पूछा - "क्या तुम भी सत्याग्रह में जा रहे हो"? वह मुस्कराते हुए सिर हिला देता। किन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ। जब हमारे सत्याग्रही भाइयों को मालाएँ पहनाई गईं - उससे प्रथमक्षण तक विश्वास न होता था। जाते समय वह मुझे रसायन की पुस्तकें और घड़ी देता गया। मेरे जीवन और स्व. भाई रामनाथ के जीवन का एक-एक क्षण जुड़ा हुआ था। यद्यपि विषय में हम दो और एक अन्य तीन ही थे।

चलते समय उसने कहा कि अब विजयी होकर लौटेंगे। किन्तु किसे मालूम था कि वह हैदराबाद सत्याग्रह के महाकुण्ड में एक ऐसी समिधा का काम देगा; जिसकी ज्वाला से सारा

आर्यजगत् प्रकाश पावेगा। अन्तिम समय तक उसके चेहरे की मृदु मुस्कान और निर्भिकता टपकती रही। उसकी निर्भिकता एक उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगा- जेल में उसने एक व्यक्तिगत नियम बनाया था कि काम करने से पहले 'वन्दे मातरम्' का गीत अवश्य गाया करूंगा। इसी गीत पर एक अन्य सत्याग्रही को २८ बेंतों का दण्ड मिला था। एक दिन उसके इस गाने को सुनकर जेल-सुपरिन्टैंडेंट ने कहा- तुम अपना गाना बन्द करदो; अन्यथा मैं तुम्हें 'कोल्हू' में भिजवा दूंगा। 'कोल्हू' की मुशक्कत एक बहुत कठिन मुशक्कत मानी जाती है। उसने निर्भिकता-पूर्वक उत्तर दिया - "चाहे तुम मुझे कठिन से कठिन भी मुशक्कत क्यों न दे दो किन्तु मेरा गाना नहीं रुक सकता।" जेल-सुपरिन्टैंडेंट के मन में न जाने क्या आया - वह चुपचाप वहां से चला गया। ऐसी एक घटना ही नहीं - किन्तु कई हैं। उसका सारा जीवन ही संघर्षमय था।

वह शारीरिक यन्त्रणाओं को कुछ भी नहीं गिनता था। जब वह जेल से छूटा तो उसके शरीर पर कई गहरे घाव थे। इन यन्त्रणाओं को वह फूलों की भान्ति मुस्कराते हुए लेता था। यह उसकी कठिन परीक्षा थी जिसमें कि उत्तीर्ण होकर वह परमगति को प्राप्त हुआ।

गुरुकुल के माने हुए खिलाड़ियों में से

वह एक था। उसकी खेल बड़ी ही थी। हम उसका ~~अभिनन्दन~~ आलिंगन करने के लिये दौड़े किन्तु वह अदृश्य हो गया। यद्यपि वह राम-'नाथ' था किन्तु हमें अनाथ कर के न जाने कहां जा छिपा।

चल; रामनाथ

- श्री "निरज"

आ जाते हो तुम याद मुझे, भाई, रह रह कर बार बार !

जब अरुण वर्ण लेकर संध्या

पश्चिम में ढलने लगती है !

जाने कैसी मुख मुद्रा में

होती मुग्धा सी लगती है !

जब दिन भर चर कर जंगल से

लौटा करती भैंसें गाएँ,

पूरब में नभ के तारों को चमकाता आता अन्धकार !

आ जाते हो तुम याद मुझे, भाई, रह रह कर बार बार !

था यही समय जब लौटा

करते थे तुम भी तो जंगल से,

नयनों में नूतन दृश्य लिए

कानन के सुमधुर मंगल से,

तब तो इन उत्सुक नयनों से

अविराम प्रतीक्षा करता था —

अब बिना तुम्हारे, एकान्तों में रोने लगता ज़ार ज़ार!

आ जाते हो तुम याद मुझे, भाई, रह रह कर बार बार!

२ -

उषा से पहिले जब नभ में
सारे तारे छिप जाते हैं !
पक्षी गण तरुओं पर बैठे
मृदु सुमधुर गायन गाते हैं !
मिल जाता छुट्टी पढ़ने से
जब दिवस भ्रमण का होता है —
"चल रामनाथ, चल रामनाथ" मेरा तन मन उठता पुकार
आ जाते हो तुम याद मुझे, भाई, रह रह कर बार बार

- ५ -

मैं कई बार, हां कई बार
अपने को दोषी पाता हूँ।
जब मधुर तुम्हारी स्नेह मूर्ति
को भूल ज़रा सा जाता हूँ।
पर बहुत शीघ्र, पर बहुत शीघ्र
उस आधी विस्मृत सी स्मृति को —
मानस में ला कर रख देता, प्रत्येक शून्य आदित्य-वार।
आ जाते हो तुम मुझे याद, रह रह कर भाई बार-बार।

तुम अड़े आन के लिए और
तुमने निर्दय व्यवहार सहे !
उन नीच निकृष्ट अभागों के
हाथों सब अत्याचार सहे !
है काँप काँप उठता अन्तर
यह सोच सोच कर कभी कभी —
कैसे उस कोमलतम तन पर करते होंगे कायर प्रहार
आ जाते हो तुम याद मुझे, भाई रह रह कर बार-बार

कैसे कैसे आघात अधम
तुमको तिल भर दहला न सके!
तुम चले गए, तुम से वे पर
बस 'क्षमा' शब्द कहला न सके!
तुम धन्य वीर! तुमने सहर्ष
इस आर्य धर्म की वेदी पर
बुद्ध बिना कीर्ति का दाम लिए यौवन जीवन सब दिया वार!
आ जाते हो तुम याद मुझे, भाई, रह रह कर बार-बार!

७

हैं नीच यवन, ये शस्त्रहीन
वीरों पर करते हैं प्रहार !
जाने ये कितने आर्यजाति
के रत्नों को ये चुके मार !
पर बन्धु ! तुम्हारी हत्या का
मैं यवनों से बदला लूंगा,
वैसे तो रुकने नहीं लगी मेरी यह अविरल अश्रु-धार !
तुम आ जाते हो याद मुझे, भाई, रह रह कर बार-बार ,

अभिनय

— श्रीकुमार

-१-

विस्तृत जल सागर ।

सद्योजात एक जलद-खण्ड - सुख से, आराम से मँडराता हुआ । इधर उधर उसके और भी साथी-बादल झूम रहे हैं । पर वह उन सब से अलग । ऊपर, विस्तृत व्योम-मण्डल को उड़ चला । पता नहीं क्यों ?

x x x x x

- २ -

हाय, आसमान ने उसे बन्दी कर लिया ।

सारी स्वच्छन्दता छिन गई ।

उसकी वह पहिले की अव्याहत गति बन्द हो गई ।

पराधीनता के मारे न ऊपर उड़ सकता है न नीचे ।

मध्य व्योम में स्थिर, आलसी निष्कार्य और उदास ।

सोया सा पड़ा हुआ है ।

पवन का उस पर शासन है ।

इधर से झोंका आया - इधर हो गया.

उधर से झोंका आया - उधर हो गया.

जैसे अपना जीवन हो ही न ।

x x x x

एक दिन जलद-खण्ड की बुलाहट हुई !

वह भावी से अनजान न था ।

गति में वही स्वच्छन्द मादकता ।

कड़ कड़ विद्युत ने उस पर कोड़ों की बौछार की ।

बड़ी गर्जना के साथ विद्युत ने प्रहार किया —

पर, वह शान्त स्थिर, चुप ।

हाँ, और साथी-बादल गरज भी पड़े, रो भी पड़े ।

पुनः उसके कोमल नग्न पृष्ठ पर घातक आघात —

उसने अपना सर्वस्व लुटा दिया ।

संसार की आँखें खिंच गईं — होंठ फड़क पड़े ।

नदियों का जल उछल उछल कर बदला लेने को चल पड़ा ।

× × × ×

- ४ -

यह है एक अभिनय —

किसका ?

रा.

म

नो

थ

का ।

जो नित्य गगन-मण्डल में खेला जाता है ।

— ०—

तीन चक्के की नई मोटरकार

तीन चक्कों वाली एक नई मोटरकार अमेरिका में बनाई गई है। इसका आकार बच्चों के खेलने वाली मोटर से कुछ ही बड़ा है। देखने से तो मालूम होता है कि अन्य मोटरकारों की भांति इसमें भी आगे की ओर इंजन लगा होता है पर वास्तव में इसके आगे नहीं, पीछे इंजन लगा होता है जो एक ही चक्के पर चलता है। पर इंजन 9।। हार्स-पावर का होता है। सामने के दोनों पहिये इतने फासले से लगे हुए हैं कि मोटर की Body का चौड़ी होने पर भी कुछ न जाय। छोटी होने पर भी इस मोटर में आधुनिक मोटरकारों की प्रायः सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। एक आदमी इसमें आसानी से बैठ कर आराम से चलाया जा सकता है।

उद्धृत —

क्या इसमें भी सच्चाई थी?

ब्र. सुरेन्द्रनाथ १३

वही वृक्ष था और वही डाली। इस डाली पर बैठी मतवाली कोयल मीठे और पंचम स्वर से राग अलाप रही थी और बीच २ में अपने राग की मीठी तान छेड़कर प्राणियों के हृदय में गुदगुदी सी पैदा कर देती थी।

बसन्त का समय था, उसने आते ही अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया था और शराबियों को अपने में मस्त बना दिया था. क्या किसी को परवाह थी. सब अपने ही त्यौहार मना रहे थे। क्या पता था कि कल बजने वाला बिगुल इस रंग में भंग भी कर सकता है। परन्तु एक दिन बिगुल बजा और उसने वहां के हृदय में वह जोश की लहर भर दी कि सारे के सारे हाथ पैर मारते हुए उसी की लहर में बह गये और उसी लहर में जिसका पता नहीं कि वह कहां ले जाकर पटक देगी तथा कहां जाकर उसका अन्त बतायेगी अथवा किस किनारे पर ले जाकर पटक देगी? किनारे पर पटक कर भी वह उसका पीछा न छोड़ेगी? क्या इसमें भी कुछ सच्चाई है?

× × × × × × × × × × × × × × × ×

वर्षा का समय था, आकाश से बादल बरस रहे थे, और खेतों की सारी अशान्ति शायद पानी बन चू रही थी। आकाश भावुक था और शायद कवियों की सारी उक्तियों को झूठा चरितार्थ करता जाता था।

सबमें खुशी का रंग था, क्योंकि अब अशान्ति न थी और न खेतों की गर्मी व गर्द गुबार न था।

सभी लौटे थे, शायद समुद्र के उस पार से और उसकी गहराई नापकर। स्वयं बादल भी उनके आने की खुशी में इतने उमड़े कि बेचारे बस दिन भर बरस पड़े। धूप का आलम थी, कवियों को मौज थी। कह दिया कि "आकाश आया, पर तुम नहीं आये।" पर वह क्या? वे तो सभी लौटे हैं। क्या इसमें भी कुछ सच्चाई थी?

× × × × × × × × × × × × ×

चारों ओर से बधाइयों की वर्षा हो रही थी, सब फूले न समाते थे कि आज गये हुए लौट आये हैं - इन बधाई की झड़ियों का उत्तर देने के लिये सेनानी खड़ा होता है - और वे चन्द शब्दों में अपना समुद्र के तैरने का वर्णन कर रहा था, कि तरंगों ने उन्हें कहां ले जा पटका, इधर पटका, उधर दे मारा। परन्तु आज वह अपने १४ वीरों के साथ आज विजयी होकर पुनः यहां आया है और माता को उसके १४ वीरों को सौंपता है। परन्तु क्या उसने सब १४ के १४ लौटा दिये। क्या इसमें भी कुछ सच्चाई थी?

× × × × × × × × × × × × ×

श्री. दयाशंकर जी
उपस्नातक

सन् १९७३ वि. मास ज्येष्ठ ता. १२ कृष्ण -

यहाँ को एक अद्भुत आत्मा का इस जगत् में जन्म हुआ, जो कि आई और चली भी गई मगर हम उससे कुछ भी लाभ न उठा सके। किंवदन्ती भी यही है कि "बड़े आदमी दीर्घ जीवि नहीं होते", यह बात कुछ अंश सत्य ही प्रतीत होती है। बड़ी २ आत्मायें कुछ काल तक ही आती हैं मगर वे उतने ही समय में एक बड़ी भारी लहर उत्पन्न कर जाती हैं। ऐसी उन्नत आत्माओं का आना तथा चला जाना अनिश्चित ही होता है पता ही नहीं लगता कि कब आई? और कब गई? संसा. सच्चे जीवित रहना तो यही है। यह क्या कि ८०-९० वर्ष तक तो जी रहे हैं मगर उनके जीने का किसी को पता ही नहीं कि किस कोने में विद्यमान है।

सज्जनो! ऐसी ही एक बड़ी आत्मा हमारे बीच में भी अवतरित हुई थी, यदि हमको याद होगी जो कि कुछ काल के लिए हमें दर्शन देकर अचानक हमें ही छोड़कर चली गई! अहा! कितना बड़ा हमारा अभाग्य था

कि हमने साधारण समझकर और साधारण व्यक्तियों का सा वर्ताव करते थे; मगर उनका पूर्ण स्वरूप तो उनके चले-जाने के बाद भी हम नहीं जान सके। उनके चले जाने के बाद अब भाई! उसे याद कर २ के रोने अथवा दुःख करने से क्या फायदा? होना तो हमारा ही है कि हम उसे उनकी विद्यमानता में न जान सके।

एक और देखा से यदि कहूँ तो ...

सज्जनो! सचमुच आत्मा निकली बड़ी होशियार, क्योंकि जिसका नमक खाया उसे ही आत्मा ने लूट कर चली गई न कि कुछ देकर। आत्मा जिस घर में रहती थी, जिस घर का अन्न खाती थी उस घर के मालिक से दूर कर गई; यदि हमें अपने जाने की इत्तला देकर जाती तो शायद उस उन्नत आत्मा से बहुत कुछ लाभ उठा सकते थे, मगर यह उनको यह उचित ही न लगा न जाने क्यों? शायद अभी हमें अभी इतने इस योग्य ही न समझा हो, बात भी ठीक थी हम उस समय सोरहे थे जिससे हमें सोते हुओं की नींद को खराब करना उचित न समझा। खैर, जो कुछ भी हो मगर वह यह तो जरूर है कि वह हमें लूट कर ही गई है न कि कुछ भी देकर गई है। भाइयो! अब वह भाग्यशालि आत्मा तो हमारे बीच में है नहीं और हम उनके उन्नत

कार्यों से परिचित होना आवश्यक है मगर ~~मार्गदर्शक~~
मार्गदर्शक किसी के उपलब्ध न होने से अन्धेरे में ही
लाठी चलानी पड़ती, और क्या किया जाय? ~~किससे~~
किससे उनके बारे में पूछा जाय? और किसे उनका पथ-
प्रदर्शक बनाया जाय?

अब तक मैंने 'आत्मा' ही शब्द
प्रयोग किया है जिससे प्रश्न हो सकता है कि- आखिर
यह आत्मा है कौनसी? उसका भौतिक नाम क्या है?
यों तो आत्मा तो सब में ही होती है, तो क्या सबकी
आत्मा को समझें? नहीं उस आत्मा का भौतिक नाम था
श्री रामनाथ! इनका जन्म 'उत्तरसंडा' (अहमदाबाद) नामक गांव में हुआ था, इनके पिता का नाम
श्री रणछोड़भाई; मोतीभाई था, इनकी माता का
नाम मणिबेन था, इनके ८ भाई बहिन थे, जिनमें से
इनका एक बड़ा भाई इनके समान ही हरिजनोद्धार
कार्य करते हुए परमपद को प्राप्त हुआ था।

रामनाथ, मेरे साथ लगभग ४-
वर्ष तक रहे किन्तु इन चार वर्षों में मैंने कभी यह
अनुभव नहीं किया कि उन्होंने किसी से अशिष्ट-
व्यवहार, लड़ाई वगैरह भी हो।

क्योंकि छोटी बातों को ध्यान मे रखने तथा उनके मनन और आचरण मे लाने से ही उन्नत हुआ जा सकता है अत: मैं रामनाथ के विषय मे छोटी २ बाते ही यहां रक्खूंगा, जिससे हमे पता लगेगा कि बाल्यकाल मे यह कोई एक महान् पुरुष होगा —

उनका स्वभाव इतना नरम था कि आपसे सब रूपा के विद्यार्थीगण सुपरिचित हैं मुझे कुछ विशेष कहने या लिखने की जरूरत नहीं प्रतीत होती किन्तु मैं उन बातों को लिखे बगैर भी नहीं रह सकता जिन बातों ने मेरे दिल मे स्थान पा लिया है —

सर्वप्रथम मै उनके स्वभाव के विषय मे लिखने चला हूं — उनका स्वभाव इतना मिलनसार था कि — जब वे हॉकी खेलने जाते थे तो कुछ विद्यार्थी उनसे इसलिए चिड़ते थे कि वे उनको गेंद आगे Carry करके नहीं ले जाने देते थे और बीच मे ही छिन लेते थे जिससे विद्यार्थी चिड़ करके जान-बूझकर उनको पैर मे जोर से Hockey मार देते थे किन्तु मैंने

सिर्फ संस्कृत वाली पढ़ाई पढ़कर क्या करोगे?
कहीं बाहर अंग्रेजी पढ़ो जिससे अच्छी नौकरी
तो कर सको"। उस समय वे कहते है कि "मेरी
इच्छा यह है कि मैं देश मे वैदिकधर्म का प्रचार
करूं और देश की मेरे से जितनी सेवा करूंगा-
यदि परमात्मा ने चाहा तो ये मेरी इच्छायें
जरूर पूर्ण होगी"।

इसीप्रकार जो दूसरी महत्वाकांक्षा
थी और जिसमें वे अपने दूसरे साथियों सहित
सफल भी हुए वोह थी 'स्वातन्त्र्य के लिए सत्या-
ग्रह मे हैदराबाद जाना" जिसमें (जेलमें) आप
और आपने १८ १५ साथियों सहित ६ मास जेल
भी आये थे। बाद, वहां से आने ही एक दो मास
बाद इस भौतिक देह को छोड़ दिया। न मालूम
परमात्मा को क्या। आपकी यही एक इच्छा
पूर्ण करनी थी, और, फिर भी इसप्रकार के
मरण को हम शुभ से मृत्यु हुई। सो इसलिए कह

सकता है कि मृत्यु के समय आपके मन की कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रही है।

इनके पूज्य पिताजी से जब मैं मिला तो उन्होंने मुझे कहा कि - रामनाथ को गुरुकुल से इतना प्रेम और इतनी लगन थी कि बीमारी में भी यह unconsciously यही शब्द कहता था कि "पिताजी! मैं अब अच्छा हो गया हूँ, मुझे अब गुरुकुल भेज दीजिए" यही नहीं मुझे उन्होंने मुझे यह भी कहा कि मैंने मृत्यु से कोई 2-3 दिन पूर्व रामनाथ से पूछा कि रामनाथ! बेटा! कोई तेरे मन में इच्छा रह गई हो तो हमें कह दे हो सकेगा तो हम पूरी करेंगे। तब यह कहते हैं कि "पिताजी अब कोई इच्छा मेरे मन में नहीं है सिर्फ यही है कि मेरा गुरुकुल जाना रह जायेगा" बस, भाइयो! यही थे अन्तिम शब्द श्री अमर बालक रामनाथ के" इससे पता लगता है कि गुरुकुल के प्रति की लगन थी। अन्त में हम सब और परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा इनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति दे तथा उनके समस्त परिवार को शान्ति दे।"

लेखक वीरों के अपनी शान में आंच न आने दी - वह कर्तव्यनिष्ठा, वही हिन्दुस्तान प्रेम - परीक्षक के सब प्रयत्न विफल गए। परीक्षक ने अपनी भट्टी बुझा दी और उस में कुन्दन अपनी जिन्द से निखरकर उभरे - आखिर वे शुद्ध कुन्दन के टुकड़े थे।

परीक्षक ने उन टुकड़ों को बखेर दिया - जनता उन टुकड़ों को उठाने के लिए प्रयत्नशील हुई। कुछ क्षण में ही वे टुकड़े जनता के हृदयों में जगमगा रहे थे। लेकिन एक टुकड़ा - उन टुकड़ों का ही एक साथी - जनता के उन निर्मम हाथों से छूटके निष्ठुर मिट्टी में मिल गया।

उसी निखरे कुन्दन कण वीर शहीद रामनाथ की पुण्य स्मृति में उनके घर कोहर का "स्मृति अंक" निकालने का प्रयत्न किया है। समय की कमी, सामग्री के अभाव में भी जो कुछ बन पड़ा है वह हिन्दुस्तान पाठकों के सामने है, आशा है पाठक इसके उच्च प्रयत्न का उचित मूल्य देंगे।